भाषाशास्त्र की रूपरेखा

लेखक—

डा० उदयनारायण तिवारी एम० ए०, डी० लिट्०

प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिन्दी-विभाग, जबलपुर विश्वविद्यालय

जबलपुर (मध्यप्रदेश)

समर्पण

जिन महानुभावों की सहायता एवं प्रेरणा से वर्णनात्मक भाषाशास्त्र के
अध्ययन एवं अनुशीलन का मार्ग प्रशस्त हुआ

अमेरिका के उन्हीं

राकेफेलर फाउन्डेशन के श्री गिलपैट्रिक, पेन्सिलवैनिया विश्वविद्यालय के भाषा-
शास्त्र के प्रोफेसर डा० जैलिग हैरिस, डा० हेनिग्स वाल्ड एवं डा० लिस्कर,
कार्नेल विश्वविद्यालय के डा० फेअर बैंक्स, हार्टफोर्ट सेमिनरी के
डा० ग्लीसन तथा केलिफ़ोर्निया विश्वविद्यालय (बर्कले) के
डा० मेरी हास, डा० जान जे० गुम्पर्ज़ एवं डा० शिप्ले को
सस्नेह समर्पित।

दो शब्द

यद्यपि प्राचीन काल में हमारे देश में संस्कृत व्याकरण का सूक्ष्म और शास्त्रीय अध्ययन हुआ था और भारत के प्राचीन वैयाकरण पाणिनि, पतंजलि तथा कात्यायन ने भाषा सम्बन्धी अनेक ऐसे तत्वों का अन्वेषण किया था जिससे आज के भाषाशास्त्री भी प्रेरणा प्राप्त कर रहे हैं तथापि वैज्ञानिक रूप में इस देश में भाषाशास्त्र का अध्ययन बीक्स, हार्नले, ग्रियर्सन, ट्रम्प, काल्डवेल, ब्लाख एवं टर्नर की कृतियों से प्रारम्भ हुआ। यूरप के विद्वानों की पद्धति का अनुसरण करते हुए रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर, सुनीति कुमार चटर्जी, तारपुरवाला आदि विद्वानों ने आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं एवं भाषाशास्त्र का गंभीर अध्ययन किया। स्वर्गीय डा० ए० सी० बुलनर के प्रयत्न और उद्योग से सन् १९२८ ई० में 'लिंग्विस्टिक सोसाइटी ऑफ़ इण्डिया' की स्थापना हुई। तब से प्राच्य विद्या सम्मेलन (ओरियण्टल कान्फ्रेन्स) के अधिवेशनों में लिंग्विस्टिक सोसाइटी का भी अधिवेशन होता है। यद्यपि भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों में भाषा सम्बन्धी शोध एवं अध्ययन-अध्यापन का कार्य थोड़ा बहुत होता रहा तथापि इस ओर विश्वविद्यालयों का विशेष रूप से ध्यान आकर्षित न हो सका और कलकत्ता विश्वविद्यालय को छोड़कर कहीं भी भाषाशास्त्र के अध्ययन-अध्यापन का विभाग न खुल सका। यह आश्चर्य की बात है कि जहाँ यूरप के पैरिस, लन्दन, ऑक्सफ़र्ड, केम्ब्रिज तथा जर्मनी के विविध विश्वविद्यालयों में १९ वीं शताब्दि के प्रारम्भ से ही भाषाशास्त्र के 'चेयर' की स्थापना हो चुकी थी वहाँ उन्हीं के आदर्श पर बने हुए भारतीय विश्वविद्यालयों में इस शास्त्र के लिए कोई स्थान न था।

सन् १९४७ ई० में अंग्रेजों की दासता से भारत स्वतंत्र हुआ। इस अवसर पर आशा थी कि विश्वविद्यालयों में भारतीय भाषाओं के अध्ययन की नवीन प्रणाली का प्रादुर्भाव होगा किन्तु यह आशा दुराशा के रूप में परिणत होकर रह गई। सौभाग्य से डेकेन कालेज पूना के भाषा-शास्त्र के विद्वान् डा० सुमित्र मंगेश कत्रे का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। वास्तव में आधुनिक युग में भाषाशास्त्र को प्रगति देने में जिन विद्वानों ने योग दिया है, उनमें डा० कत्रे का स्थान सर्वोच्च है। सन् १९५३ ई० के मई मास में उन्होंने भारत के विविध राज्यों के

कुछ चुने हुए भाषाशास्त्रियों एवं शिक्षा विशारदों की सभा पूना के डेकेन कालेज में बुलाई। इसका सभापतित्व लन्दन विश्वविद्यालय के "प्राच्य एवं अफ्रीकी विभाग" के अध्यक्ष एवं संचालक डा० सर राल्फ़ लिली टर्नर ने किया था और इसके व्यय का भार अमेरिका के 'राकेफेलर फाउण्डेशन' ने वहन किया था।

इस सभा में भाषाशास्त्र के अध्ययन को प्रगति देने के लिए कई प्रस्ताव स्वीकृत हुए थे जिनमें से एक यह भी था कि भारतीय विश्वविद्यालयों के युवक प्राध्यापकों, प्राध्यापिकाओं एवं छात्र-छात्राओं को भाषाशास्त्र की आधुनिकतम प्रणालियों से परिचित कराया जाय। डा० कत्रे के उद्योग से इस सभा में अमेरिका के 'राकेफेलर फाउण्डेशन' के प्रतिनिधि श्री गिलपैट्रिक भी उपस्थित थे और उन्होंने इस कार्य के लिए भारत की 'लिंग्विस्टिक सोसाइटी' को प्रभूत धन राशि भी प्रदान किया था। भाषाशास्त्र के विद्वान् एवं प्रेमी 'राकेफेलर फाउंडेशन' एवं उसके अधिकारियों की इस उदारता के लिये सदैव कृतज्ञ एवं ऋणी रहेंगे। इस धन-राशि से सन् १९५४ से १९५९ तक पूना के डेकेन कालेज तथा भारत के अन्य स्थानों में भाषाशास्त्र के ग्रीष्म एवं शरत्कालीन अध्यापन-सत्र चलते रहे। इन सत्रों के प्रशिक्षण का भार यूरप अमेरिका तथा भारत के कतिपय चुने हुए भाषाविदों पर था। अमेरिका से जो भाषाशास्त्री यहाँ अध्यापन के लिए आए उनमें डा० फ़ेयर बैंक्स, डा० ग्लीसन, डा० ह्वेलिंग्स वाल्ड, डा० एमेन्यू, डा० गुम्पर्ज़, डा० फरग्युसन, डा० विलियम ब्राइट, डा० डीमक, लन्दन के डा० टर्नर, डा० बर्टेनपेज तथा हालैण्ड की कुमारी डा० जोर्गेन्सन के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन्हीं सत्रों में सर्व प्रथम वर्णात्मक भाषाशास्त्र (Descriptive Linguistics) का अध्यापन प्रारम्भ हुआ था। इन सत्रों ने भाषाशास्त्र के अध्ययन-अध्यापन का एक उच्च स्तर स्थापित किया तथा एक ऐसे वातावरण का निर्माण किया जिससे प्रेरणा प्राप्त करके विश्वविद्यालयों के बड़े-बूढ़े प्राध्यापक भी अपनी ज्ञान-पिपासा की तृप्ति के लिये वर्णनात्मक भाषाशास्त्र की कक्षाओं में उपस्थित होते थे। कक्षाओं की समाप्ति के पश्चात् आलोचना प्रत्यालोचना भी कम नहीं होती थी। वर्णनात्मक भाषाशास्त्र भारत के लिये एकदम नया था। उसकी प्रणाली भी पूर्णतः नवीन थी, अतएव आरम्भ में उसके प्रति शंकालु होना कोई अप्रत्याशित बात न थी। इसी वातावरण में सन् १९५६ के मई मास में मुझे डेकेन कालेज में हिन्दी भाषा के उद्गम एवं विकास पर व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया गया। मैंने अवसर से लाभ उठाकर स्वयं डा० फेयरबैंक्स एवं डा० फर्ग्युसन की कक्षाओं में वर्णनात्मक भाषाशास्त्र का अध्ययन प्रारम्भ किया।

कतिपय भाषणों के श्रवण एवं मनन के पश्चात् मैंने यह स्पष्ट अनुभव किया कि वर्णनात्मक भाषाशास्त्र की प्रणाली में ऐसे अनेक नवीन तत्व है जिनको ग्रहण करना परम आवश्यक है। तभी से मैं वर्णनात्मक भाषाशास्त्र के अध्ययन में प्रवृत्त हुआ। इसके बाद सन् १९५९-६० मे मुझे एक वर्ष भारत के ज्येष्ठ (सीनियर) भाषाशास्त्री के रूप मे अमेरिका में भाषाशास्त्र के अध्ययन एवं अनुसन्धान का सुअवसर मिला। इस अवधि में, लगभग छः महीने, अमेरिका के पेन्सिलवैनिया—विश्वविद्यालय में डा० ज़ैलिग हैरिस एवं डा० ह्वेनिग्स वाल्ड का सत्संग प्राप्त हुआ और शेष समय बर्कले स्थित केलिफोर्निया में डा० मेरी हॉस, डा० एमेन्यू, डा० गुम्पर्ज़ एवं डा० शिप्ले के साथ व्यतीत हुआ। इसी सिलसिले में मुझे वाशिंगटन एवं न्यूयार्क में अमेरिका की लिंग्विस्टिक सोसाइटी एवं साउथ एशिया की सभाओं में भी भाग लेने का अवसर मिला जहाँ प्राहा विचार शैली के विद्वान् रोमन याकोब्सन तथा अमेरिका के अन्य चोटी के भाषाशास्त्रियों के निबन्ध पाठ एवं भाषाशास्त्र विषयक वाद-विवाद सुनने का सुअसवर भी प्राप्त हुआ। इस वर्ष अमेरिका के ग्रीष्मकालीन भाषाशास्त्र का सत्र मिशिगन में हुआ था जहाँ फ्रांस के प्रसिद्ध भाषाशास्त्री डा० मार्तिने के तत्वावधान में भी मुझे अध्ययन करने का अवसर मिला। इन सभी विद्वानों एवं सहयोगियों के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

अमेरिका से भारत लौटने पर मैं अपने पुराने स्थान प्रयाग विश्वविद्यालय में आ गया, जहाँ लगभग दो वर्षों तक मुझे स्नातक कक्षाओं में वर्णनात्मक भाषाशास्त्र पढ़ाना पड़ा। कक्षा में भाषण का माध्यम हिन्दी थी अतएव मैं अपने भाषणों को धीरे-धीरे हिन्दी में तैयार करने लगा। इसी समय मेरे पी० एच० डी० के दो शोध छात्रों, डा० महावीर सरन जैन एवं श्री दिनेशप्रसाद शुक्ल की यह राय हुई कि वर्णनात्मक भाषाशास्त्र के विभिन्न भाषणों को पुस्तक रूप मे प्रकाशित किया जाय। उसी के परिणाम स्वरूप 'भाषाशास्त्र की रूपरेखा' का प्रणयन हुआ।

यहाँ दो शब्द, मुझे हिन्दी-क्षेत्र में, भाषा शास्त्र के अध्ययन-अध्यापन की प्रगति के सम्बन्ध में भी कहना है। यह अत्यन्त खेद की बात है कि अब तक के भाषाशास्त्रीय सत्रों से हिन्दी-क्षेत्र के बहुत कम प्राध्यापक एवं छात्र लाभ उठा पाये हैं। इसका कारण यह नही है कि इन सत्रों के संचालकों की अहिन्दी भाषी क्षेत्रो पर विशेष कृपा रही है अपितु इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि हिन्दी भाषी क्षेत्र के नवयुवक प्राध्यापकों एवं छात्रों में भाषाशास्त्र के अध्ययन के लिए अभी तक वास्तविक प्रेम एवं उत्साह का प्रादुर्भाव नहीं हो सका है। जहाँ अहिंदी भाषी

क्षेत्रों में इधर कुछ वर्षों में ही भाषाशास्त्र के अध्ययन के लिये अहमदाबाद, अन्नामलाई, बड़ौदा, धारवाड़, ट्रावनकोर, वाल्टेयर एवं पूना में केन्द्र एवं अलग-अलग विभाग स्थापित हो गये हैं, वहाँ दिल्ली, राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश एवं बिहार में केवल आगरा एवं सागर में ही दो केन्द्र खुल पाये हैं। इसके अनेक कारण हैं। सच बात तो यह है कि हिन्दी-क्षेत्र में गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाड, बंगाल आदि की भाँति भाषा को लेकर किसी प्रकार की एकता का एकान्त अभाव है। एक दूसरी कठिनाई यह भी है कि इस क्षेत्र के अधिकांश हिन्दी प्राध्यापकों तथा छात्रों का संस्कृत, मध्यकालीन प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं के अध्ययन से कोई सम्बन्ध-सम्पर्क नहीं है। वस्तुतः भारोपीय परिवार के भाषाशास्त्र के अध्ययन का मेरुदण्ड ये प्राचीन भाषाएँ ही हैं। योरप में अठारहवीं शताब्दि में भाषाशास्त्र के अध्ययन की जो प्रवृत्ति चली थी उसका मुख्य कारण संस्कृत का अध्ययन ही था। हिन्दी की अपेक्षा अँग्रेज़ी का साहित्य कई गुना विशाल है; फिर भी योरप तथा अमेरिका के अँग्रेजी के प्राध्यापकों के लिये ग्रीक तथा लैटिन जैसी प्राचीन भाषाओं एवं फ्रेंच जर्मन तथा रूसी जैसी अर्वाचीन भाषाओं का ज्ञान अनिवार्य है। किन्तु हिन्दी के प्राध्यापक होने के लिए न तो यहाँ किसी प्राचीन भाषा का अध्ययन आवश्यक है न ही किसी अन्य प्रादेशिक भाषा का ही। हिन्दी-क्षेत्र में भाषाशास्त्र के अध्ययन की उपेक्षा का एक कारण यह भी है कि जहाँ अहिंदी क्षेत्र के छात्रों और प्राध्यापकों को संस्कृत के अतिरिक्त पड़ोस की दो एक और भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य हो जाता है, वहाँ हिन्दी-क्षेत्र के छात्र हिन्दी के अतिरिक्त पड़ोस की किसी अन्य भाषा का ज्ञान प्राप्त करने का किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं करते। ये कटु सत्य हैं और इन्हें स्वीकार करने में हमें किसी प्रकार का संकोच नहीं होना चाहिये।

इस समय जहाँ तक भाषाशास्त्र के अध्ययन-अध्यापन का प्रश्न है अहिंदी-भाषी-क्षेत्रों से हिंदी-भाषी क्षेत्र बहुत पीछे हो गये हैं। हिन्दी-क्षेत्र में भाषाशास्त्र के नाम पर आज छात्रों को जो सैद्धान्तिक ज्ञान दिया जा रहा है, वह बासी और अशुद्ध है। यह आवश्यक है कि हम इस कार्य में भाषाशास्त्र के प्रशिक्षित युवकों का सहयोग प्राप्त करें। यहाँ यह भी निवेदन कर देना आवश्यक है कि हमारे विश्वविद्यालयों में ऐतिहासिक एवं वर्णनात्मक दोनों प्रकार के भाषाशास्त्रीय अध्ययन-अध्यापन की आवश्यकता है। यह अध्ययन वास्तव में प्रतिद्वन्द्वी न होकर एक दूसरे के पूरक हैं। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि वर्णनात्मक भाषाशास्त्र की पद्धति पाणिनीय व्याकरण के समान ही किंचित जटिल एवं दुरूह है

किन्तु एक बार उसे सम्यक् रूप से समझ लेने पर आगे का मार्ग सरल हो जाता है।

पुस्तक के आरम्भ के दस अध्यायों में मैंने भाषाशास्त्र के आधुनिक सिद्धांतों के सम्बन्ध में सामग्री देने का प्रयत्न किया है और इसके बाद परिशिष्ट में डा० कैलाशचन्द्र भाटिया, डा० महावीर शरण जैन तथा श्री दिनेशप्रसाद शुक्ल के—वर्णनात्मक पद्धति पर लिखे गए भाषा सम्बन्धी लेख संगृहीत हैं। ये सभी निबन्ध वर्णनात्मक पद्धति के नियमों का अनुसरण करते हुए लिखे गये हैं। तथा हिन्दी की विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। मैंने "हिन्दी के ध्वनिग्राम" शीर्षक लेख सर्वप्रथम 'हिन्दोस्तानी' में लिखा था। मुझे प्रसन्नता है कि मेरे इन छात्रों ने गहराई से अध्ययन करके वर्णनात्मक भाषाशास्त्र के अध्ययन के मार्ग को और भी प्रशस्त किया है। ये वास्तव में मेरी बधाई और आशीर्वाद के पात्र हैं।

वस्तुतः ज्ञान की स्थिर सीमा नहीं है और प्रत्येक नई पीढ़ी को पिछली पीढ़ी से आगे बढ़ना ही चाहिये। पुस्तक के प्रूफ संशोधन में जबलपुर विश्वविद्यालय के मेरे दो शोध-छात्रों—श्री रामशंकर मिश्र एम० ए० तथा श्री विश्वनाथ सिंह एम० ए० से विशेष सहायता मिली है। इन दोनों शोध छात्रों ने अनुक्रमणिका प्रस्तुत करके पुस्तक के वैज्ञानिक मूल्य को और भी बढ़ा दिया है। ये दोनों ही मेरे विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। बहुत प्रयत्न करने पर भी इस पुस्तक में प्रूफ सम्बन्धी कतिपय अशुद्धियाँ रह गई हैं। उदाहरणार्थ पृष्ठ २० पर संस्कृत रूप 'गनस्' नहीं अपितु 'जनस्' होना चाहिए।

पुस्तक में ब्रजभाषा सम्बाक रेखा सम्बन्धी —मानचित्र डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' से प्राप्त हुआ है जिसके लिए मैं उनका विशेष आभारी हूँ। अन्त में भारती-भंडार के संचालक पं० वाचस्पति पाठक तथा लीडर प्रेस के प्रधान व्यवस्थापक श्री बिन्दाप्रसाद ठाकुर के प्रति भी मैं विशेष रूप से आभार प्रकट करता हूँ जिनके अथक प्रयासों के परिणाम स्वरूप ही यह पुस्तक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हो रही है।

उदयनारायण तिवारी

भाषा एवं शोध संस्थान
जबलपुर विश्वविद्यालय
शहीद-स्मारक-भवन
राइट-टाउन, जबलपुर

महाशिवरात्रि : सम्वत् २०१९
दिनांक २२ फरवरी सन् १९६३ ई०

अनुक्रम

		द्वयोष्ठ्य	दन्त्योष्ठ्य	दन्त्यवर्त्स्य	मूर्धन्य	तालुवर्त्स्य	वर्त्स्य तालव्य	तालव्य	कण्ठ्य	अलिजिह्व	उपालिजिह्व	काकल्य
व्यंजन	स्पर्श	प ब		त द	ट ड			कें गें	क ग	क़ ग़		?
	नासिक्य	म	मृ	न	ण				ङ·	ङ०		
	पार्श्विक सघर्षी			ल ल								
	पार्श्विकसंघर्षहीन			ल	ळ			लॅं				
	लुंठित			र					रु			
	उत्क्षिप्त			ड़	ड़				रु			
	संघर्षी	प ब	फ़ व	थ द / स ज / ɽ	ष ज़	श झ़	श य़	य य़	ख़ ग़	ख़ ग़	ह ʕ	ह़ ह
	सघर्षहीन सप्रवाह तथा अर्द्धस्वर	ꝑ	व	ɹ				य				
स्वर								अग्र मध्य	पश्च			
	संवृत	(ई ऊ उ)						ई इ ई उ	ऊ ऊ			
	अर्द्धसंवृत	(ओ)						ए ए	ओ ओ			
	अर्द्धविवृत	(ऐं)						ऐं ऐं अं	ऑ ऑ			
	विवृत	(आ)						आ ˘	आ			

		Bi labial	Labio dental	Dental and Alveolar	Retro flex	Palato alveolar	Alveolo Palatal	Palatal	Velar	Uvular	Pharyngal	Glottal
CONSONANTS	Plosive	p b		t d	t d			c ɟ	k g	q ɢ		ʔ
	Nasal	m	ɱ	n	ɳ			n	ŋ	ɴ		
	Lateral Fricative			ɬ ɮ								
	Lateral Non Fricative			l	ɭ			ʎ				
	Rolled			r						ʀ		
	Flapped			ɾ	ɽ					ʀ		
	Fricative	ɸ β	f v	θ ð	s z	ɹ	ʂ ʐ	ʃ ʒ	ɕ ʑ	ç ʝ	x ɣ	χ ʁ	ħ ʕ	h ɦ
	Frictionless Continuants and Semi Vowels	w ɥ		ɹ				j (ɥ)	(w)	ʁ		
VOWELS								Front	Central Back			
	Close	(y ʉ u)						i y	ɨ ʉ ɯ u			
	Half Close	(ø o)						e ø	ə ɤ o			
	Half Open	(œ ɔ)						ɛ œ	ʌ ɔ			
	Open	(ɒ)						æ a	ɐ ɑ ɒ			

व्यंजन — उच्चारण स्थान

उच्चारण विधि		द्वयोष्ठ्य	दन्त्योष्ठ्य	दन्त्य	वर्त्स्य	मूर्द्धन्य	वर्त्स्य-तालव्य	तालव्य	कंठ्य	अलिजिह्वीय	उपालिजिह्वीय	स्वरयंत्रमुखी
स्पर्श	अघोष	प		त	ट़	ट		क़	क	क		?
	सघोष	ब		द	ड़	ड		ग़	ग	ग		
महाप्राण	अघोष	फ		थ		ठ			ख	•		
	सघोष	भ		ध	•	ढ			घ			
स्पर्श-संघर्षी	अघोष	प फ़		त थ़	ट़ स(त़)		ट़ श (च)					
	सघोष	ब व़		द द़	ड़ ज़		ड़ झ़ (ज)					
महाप्राण	अघोष						छ					
	सघोष						झ					
पार्श्विक-संघर्षी	अघोष				ट़ ल							
	सघोष				ड़ ल़							
संघर्षी	अघोष	प़	फ़	थ़	स	ष	श	श़	ख़	ख़	ह़	ह़
	सघोष	ब़	व़	द़	ज़, ऱ	ज़	झ़	य़	ग़	ग़	९	ह
अनुनासिक	सघोष	म	म		न	ण			ङ	ङ०		
	महाप्राण सघोष	म्ह			न्ह							
पार्श्विक	सघोष				ल	ळ०		ल़				
	महाप्राण सघोष				ल्ह							
लुंठित	सघोष				र							
	महाप्राण सघोष				र, ह					ऱ		
उत्क्षिप्त	सघोष				ड़	ड़				ऱ०		
	महाप्राण सघोष					ढ़						
सप्रवाह अर्द्ध स्वर	सघोष	व़	व		ऱ			य				

नोट :- सब ध्वनियाँ सस्वर हैं, शुद्ध ध्वनि लिखने के लिये चिह्न के बाद (ˎ) प्रयोग कीजिये जैसे - [प्ˎ]

		Bilabial	dental	dental	Alveolar	Retroflex	Alveolo Palatal	Palatal Velar	Back Velar	Uvular	Pharyngal	Glottal
Stops Unaspirated	vl.	p		ṱ	t	ṭ		k̭	k ḳ		ḳ	ʔ
	vd.	b		ḓ	d	ḍ		g̭	g g̣ (G)			
Aspirated	vl.	p^h (p‘)			t^h (t‘)				$\widehat{k^h}$ (k‘)			
	vd.	$\widehat{b^h}$ (b‘)			d^h (d‘)				g^h (g‘)			
Affricated	vl.	p ᵽ		tθ̭	ts (¢)		tš (č)		kx			
	vd.	b ƀ	o	dđ̭	dz (z)		dž (ǰ)		g ǥ			
Laterally released	vl.				tl (ƛ)							
	vd.				dl (λ)							
Fricatives	vl.	ᵽ	f	θ	s	ṣ	š	x̭	x ẋ			h
	vd.	ƀ	v	đ	z	ẓ	ž	ǥ̭	ǥ ǥ			ḧ
Nasals	vl.	M			N		Ñ		N			
	vd.	m			n	ṇ	ñ		n			
Laterals	vl.				ɬ (L)		$ɬ^y$					
	vd.				l	ḷ	l^y					
Semivowels	vl.	W						Y				
	vd.	w				.		y				
Flap	vl.				ř̲							
	vd.				ř	ṛ̌						
Trill	vl.	p̃			r̲̃							
	vd.	b̃			r̃					r̃		

स्वर विभाजन की अमेरिकन पद्धति

उच्च	I	ü=y	ɨ	u̇	ï=ɯ̣	u
निम्नतर उच्च	I	Ü	Ɨ	U̇	Ï	U
उच्चतर मध्य	e	ö=ø	ė	ȯ	ë=ɤ	o
मध्य	E	Ω̈	Ė=ə	Ω̇	Ë	Ω
निम्नतर मध्य	ɛ	ɔ̈=œ	ɛ̇	ɔ̇	ɛ̈=ʌ	ɔ
उच्चतर निम्न	æ	ω̈	æ̇	ω̇	æ̈	ω
निम्न	a	ɒ̈	ȧ	ɒ̇	ä=ɑ	ɒ

१

भाषा और भाषाशास्त्र

१. १० भाषा की परिभाषा एवं स्वरूप

संसार के प्रत्येक प्राणी के लिये भाषा का विशेष महत्व है। जैसे-जैसे प्राणियों का विकास हुआ भाषा का विकास भी उसी के साथ-साथ होता गया। चाहे वह पशु-पक्षियों की भाषा हो, चाहे मानव की, सभी प्राणी भिन्न-भिन्न भाषाओं का प्रयोग करते हैं। इन भाषाओं के प्रयोग का मुख्य उद्देश्य भावों और इच्छाओं को प्रकट करना ही होता है। मनुष्य तो एक सामाजिक प्राणी है। बिना समाज के उसका रहना असम्भव है। भाषा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा उसका समाज से सम्बन्ध स्थापित होता है। कहना न होगा कि मनुष्य अपने विचारों, भावों तथा इच्छाओं को, दूसरे व्यक्तियों पर, भली-भाँति, केवल भाषा के माध्यम से ही प्रकट कर सकता है। वस्तुतः भाषा मानव जीवन के साथ इतनी घुल-मिल गई है कि भाषा के महत्व, उसके स्वरूप एवं परिभाषा पर हम लोगों का शीघ्र ध्यान नहीं जाता है।

साधारण बोलचाल में 'भाषा' शब्द का अर्थ लिखित भाषा होता है। साधारणतः मनुष्य भाषा तथा लेखनकला को प्रायः एक ही समझ लेते हैं। किन्तु इस विषय में यह बात विचारणीय है कि क्या भाषा और लेखनकला में कोई अन्तर नहीं है और क्या ये दोनों एक ही वस्तु के दो भिन्न नाम हैं ? यदि इस प्रश्न पर हम वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करें तो ज्ञात होगा कि भाषा और लेखनकला दो भिन्न-भिन्न वस्तुएँ हैं। लेखनकला का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। अधिक से अधिक सात हजार वर्षों का ही इसका इतिहास है। इसकी अपेक्षा भाषा का इतिहास बहुत प्राचीन है। सम्भवतः मानव के विकास में भाषा का विकास सर्वप्रथम रहा होगा क्योंकि संसार में आज ऐसी कोई भी जाति नहीं है जिसकी कोई न कोई भाषा न हो किन्तु ऐसी अनेक जातियाँ आज भी वर्तमान हैं जो लेखनकला से अनभिज्ञ हैं। लेखनकला तो वस्तुतः शिक्षित मनुष्यों की भाषा का ही प्रतिनिधित्व करती है।

भाषा तथा लेखनकला में अन्तर स्पष्ट कर लेने के पश्चात् भाषा की परिभाषा को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझ लेना चाहिए। यद्यपि 'भाषा' की कोई निश्चित् परिभाषा देना कठिन है, किन्तु कतिपय प्रमुख भाषाविदों की परिभाषाएँ नीचे दी जा रही हैं जिनके आधार पर भाषा के स्वरूप के विषय में हमें यत्किंचित ज्ञान हो जायेगा।

"ध्वन्यात्मक-शब्दों द्वारा विचारों का प्रकटीकरण ही भाषा है।"—स्वीट

"ध्वन्यात्मक-शब्दों द्वारा हृद्‌गत भावों तथा विचारों का प्रकटीकरण ही भाषा है।"—गुणे

"मनुष्य ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा अपना विचार प्रकट करता है। मानव-मस्तिष्क वस्तुतः विचार प्रकट करने के लिए ऐसे शब्दों का निरन्तर उपयोग करता है। इसप्रकार के कार्य-कलाप को ही भाषा की संज्ञा दी जाती है।"
—जेस्परसन

"भाषा एक प्रकार का चिह्न है। चिह्न से तात्पर्य उन प्रतीकों से है जिनके द्वारा मनुष्य अपना विचार दूसरों पर प्रकट करता है। ये प्रतीक भी कई प्रकार के होते हैं। जैसे नेत्रग्राह्य, श्रोत्रग्राह्य एवं स्पर्शग्राह्य। वस्तुतः भाषा की दृष्टि से श्रोत्रग्राह्य प्रतीक ही सर्वश्रेष्ठ हैं।"—वान्द्रिए

"जिन ध्वनि-चिह्नों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार विनिमय करता है, उसे भाषा कहते हैं।"—बाबूराम सक्सेना

"अर्थवान कण्ठोद्‌गीर्ण ध्वनि समष्टि ही भाषा है।"—सुकुमार सेन।

उपर्युक्त सभी उदाहरणों में भाषा की परिभाषा देने का प्रयास किया गया है, किन्तु किसी भी परिभाषा से वस्तुतः भाषा का वास्तविक स्वरूप प्रकट नहीं हो पाता। नीचे भाषा की परिभाषा पर कई दृष्टियों से विचार किया जाता है।

भाषा ध्वनियों का समूह है

यदि किसी शिक्षित मनुष्य से पूछा जाय तो वह भाषा की इसी रूप में परिभाषा देगा। यद्यपि इस प्रकार की परिभाषा देना ठीक है किन्तु यह परिभाषा अतिव्याप्ति दोष से युक्त है, क्योंकि मनुष्य के अतिरिक्त अन्य प्राणी भी ध्वनि के द्वारा ही अपने विचार व्यक्त करते हैं। विचारों की यह अभिव्यक्ति बहुत कुछ मनुष्य के भावों की अभिव्यक्ति के ही समान होती है। इसके अतिरिक्त ऐसे भी प्राणी हैं जो कि ध्वनियों का प्रयोग नहीं करते। उदाहरण के लिये गूँगे, बहरों की भाषा को लिया जा सकता है जो कि बिना ध्वनि-समूहों का प्रयोग किये ही अपने विचारों को प्रकट करते हैं; किन्तु इन ध्वनियों का सम्बन्ध 'भाषा' के साथ

नहीं जोड़ना चाहिए। केवल मनुष्य के ध्वनि-अवयवों से निकली हुई ध्वनि ही भाषाशास्त्र के अन्तर्गत आती है।

वस्तुतः ध्वनि-समष्टि तथा वस्तु में कोई सम्बन्ध नहीं होता। उदाहरण स्वरूप गाय शब्द को लिया जा सकता है। गाय शब्द में "ग् + आ + य् + अ" ध्वनियाँ हैं किन्तु गाय-वस्तु तथा इन ध्वनियों में कोई सम्बन्ध नहीं है। कुछ लोगों का ऐसा मत है कि एक ऐसा युग रहा होगा जब कि ध्वनियों तथा उससे बोधित होनेवाली वस्तुओं का सम्बन्ध रहा होगा, अर्थात् ध्वनियों के आधार पर ही शब्द-निर्माण होता रहा होगा। यह विचार सर्वथा सत्य तो नहीं ही कहा जा सकता किन्तु अंशतः सत्य तो है ही, क्योंकि प्रत्येक भाषा में अनुकरणमूलक शब्द थोड़े-बहुत तो होते ही हैं। जैसे लकड़ी के जलने की आवाज चट-चट से 'चटचटाना', बाँसों के समूह का हवा के तेज झोकों, भर-भर से, 'भरभराना' आदि शब्द अनुकरण-मूलक ही हैं। किन्तु ऐसे शब्दों की संख्या किसी भी भाषा में अल्प ही होती है।

भाषा स्वच्छन्द पद्धति है

भाषा की स्वच्छन्दता का अर्थ केवल यही है कि भाषा अर्जित वस्तु है। अर्थात् मनुष्य अपने पूर्वजों एवं अपने समाज के द्वारा ही भाषा को सीखता है। मनुष्य जहाँ पर रहेगा उसी स्थान की भाषा को वह सीख लेगा। यदि उत्तरप्रदेश का निवासी जाकर अमरीका में रहने लगे तो उसके बालक वहीं की भाषा को अपना लेंगे, क्योंकि बालक अपने आस-पास के समाज से ही भाषा सीखता है। यदि उसे समाज से दूर कहीं किसी एकान्त स्थान में रख दिया जाय तो वह किसी भी भाषा को सीखने में समर्थ नहीं हो सकेगा। इसीलिये भाषा को समाज-सापेक्ष्य कहते हैं; किन्तु संसार के कुछ ऐसे भी प्राणी हैं जिन्हें भाषा सीखने के लिये समाज की आवश्यकता नहीं होती। पशु-पक्षियों की भाषा समाज-सापेक्ष्य न होकर स्वच्छन्द एवं स्वाभाविक होती है। यदि मनुष्य की भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाय तो ज्ञात होगा कि वह भी अपनी एक विशेष अवस्था में इसीप्रकार की भाषा का प्रयोग करता है। बच्चा जब पैदा होता है तो वह उस समय जो "केहें-केहें" करता है, यह भाषा स्वच्छन्द एवं स्वाभाविक ही कहलायेगी, क्योंकि इसके लिये उसे कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता किन्तु इसप्रकार की भाषा का अध्ययन भाषाशास्त्र की सीमा के परे है।

भाषा क्रमबद्ध वस्तु है

भाषा की क्रमबद्धता की मुख्य बात यह है कि प्रत्येक भाषा के गठन का एक विशेष क्रम होता है जिसके आधार पर अन्य विचारों को भी प्रकट किया जा

सकता है। हम किसी भी भाषा के गठन के विपरीत नहीं जा सकते। हिन्दी में राम ..... खाता है। इस रिक्त स्थान (........) पर केवल जातिवाचक संज्ञा को ही रखा जा सकता है, अन्य प्रकार की संज्ञाओं को हम नहीं रख सकते, क्योंकि एक वचन की क्रिया के साथ दो व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का प्रयोग हिन्दी भाषा की गठन के प्रतिकूल है।

भाषा की क्रमबद्धता के विषय में दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि हम उसके किसी भी वाक्य के क्रमबद्ध शब्दों को उसीप्रकार के अन्य शब्दों द्वारा स्थानान्तरण भी कर सकते हैं। यही स्थानान्तरण की प्रक्रिया मनुष्य को अन्य जीवित प्राणियों से पृथक् करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि यद्यपि पशु-पक्षी भी सार्थक शब्दों का प्रयोग करते हैं किन्तु वे किसी शब्द के स्थान पर कोई दूसरा शब्द नहीं रख सकते। यह शक्ति केवल मनुष्य में ही होती है। मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो शब्द-निर्माण कर सकता है। उदाहरण के लिए —राम पानी पीता है—इस वाक्य में पानी शब्द के स्थान पर मनुष्य दूध, रस, सोम आदि उसीप्रकार के अनेक शब्दों का प्रयोग कर सकता है; किन्तु मानवेतर प्राणी ऐसा करने में समर्थ नहीं हैं।

भाषा प्रतीकों का समूह है

भाषा प्रतीकों का समूह है। इसके सभी प्रतीक सार्थक होते है। भाषा के प्रतीकों तथा भावाभिव्यक्ति के अन्य प्रतीकों में अन्तर होता है। इसे एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। राम और मोहन दोनों घूमने जा रहे है। मार्ग में पके हुए आम को देखकर मोहन ने कहा—"भाई, भूख लगी है आम खाऊँगा"। राम ने वृक्ष से फल तोड़कर मोहन को खाने के लिये दे दिया।

यदि उपर्युक्त व्यापार का सतर्कता के साथ विश्लेषण किया जाय तो निम्न-लिखित कार्य-कारण-परम्परा उपलब्ध होगी—

(१) मोहन के मुख से कतिपय ध्वनि उच्चरित होने के पूर्व की घटना थी— मोहन का वृक्ष पर आम देखना तथा उसकी क्षुधा की अनुभूति।

(२) इस उत्तेजना के फलस्वरूप मोहन का राम के प्रति निवेदन।

(३) मोहन का निवेदन सुनकर राम के मन में भी अनुरूप उत्तेजना का संचार होना।

(४) राम के मन में उस उत्तेजना की प्रतिक्रिया अर्थात् वृक्ष से फल तोड़कर मोहन को देना।

ऊपर के उदाहरण में मोहन यदि मानवेतर प्राणी होता तो भाषा के अभाव

में अपनी उत्तेजना राम पर संक्रमित न कर पाता, अपनी उत्तेजना के फलस्वरूप वह स्वयं वृक्ष पर चढ़कर फल तोड़ने का प्रयत्न करता। जर्मन वैज्ञानिक के० वी० फ्रिश ने मधुमक्खियों के सामाजिक जीवन के सम्बन्ध में अनेक अनुसंधान किये हैं। एक कागज को मधु में भिगोकर उसने मधुमक्खियों के छत्ते के पास रख दिया। कई घंटों के पश्चात् मधुमक्खियों को इसका पता लगा; किन्तु इसके पश्चात् कार्य शीघ्रता पूर्वक होने लगा। मधुमक्खियाँ इस कागज से शीघ्रता से मधु ले जाकर अपने छत्ते में जमा करने लगीं और धीरे-धीरे वे अपने साथ अन्य मक्खियाँ भी लाने लगीं। इससे यह स्पष्ट है कि पहली मक्खी ने अन्य मक्खियों को सूचना दे दी। यह सूचना उसने कैसे दी—यह विचारणीय है। पहली मक्खी ने छत्ते में मधु रखकर नाचना आरम्भ किया। इसके कारण अन्य मक्खियाँ भी उत्तेजित हुई। वे उस मक्खी के चारों ओर एकत्र हो गईं और नाचने वाली मक्खी को अपने शुण्ड से स्पर्श करने लगीं। उसी समय उस मक्खी ने नाचना बन्द कर दिया और वह उड़ गई। उसके चारों ओर फैली हुई अन्य मक्खियाँ भी उड़ गईं और कालान्तर में वे भी मधु को ले आकर अपने छत्ते में जमा करने लगीं।

इस सम्बन्ध में इस बात को स्मरण रखना चाहिए कि एक व्यक्ति की उत्तेजना को दूसरे व्यक्ति के मन में संचारित करके प्रतिक्रिया उत्पन्न करना ही भाषा का एकमात्र लक्षण नहीं है। जिसप्रकार भाषा के माध्यम द्वारा एक व्यक्ति अपने मुखोद्गीर्ण ध्वनिप्रवाह को दूसरे व्यक्ति के कर्णकुहर में प्रविष्ट करके उत्तेजना उत्पन्न करता है, उसीप्रकार इंगित द्वारा भी पहला व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के मन में उत्तेजना उत्पन्न कर सकता है, किन्तु इंगित द्वारा भाषा का कार्य अत्यल्प मात्रा में ही चलता है। इंगित भाषा नहीं है अपितु वह भाषा का प्रतिनिधि मात्र है।

गृहपालित पशु-पक्षी कभी-कभी पालक अथवा चालक के इशारे पर कार्य करते हैं। अनेक इतर प्राणी भी मुखोच्चरित ध्वनि की सहायता से अपनी जाति के अन्य प्राणियों में प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं। किन्तु इन पशु-पक्षियों की बोली भाषा नहीं है, क्योंकि भाषा का प्रधान लक्षण प्रतीकद्योतकता इसके द्वारा सम्पन्न नही हो पाता। इतर प्राणियों के बोलने से उनकी जाति के अन्य प्राणियों में जो प्रतिक्रिया होती है वह यंत्रवत् तथा अज्ञान रूप में होती है, किन्तु मनुष्य के कण्ठ से निकली हुई ध्वनि वस्तुतः सज्ञान प्रतिक्रिया का परिणाम होती है। विशेष अर्थ द्योतित करने के लिए मनुष्य विशेष ध्वनि-समष्टि (शब्द) का व्यवहार करता है। भाषा की विशेष ध्वनि-समष्टि के साथ विशेष अर्थ का अटूट सम्बन्ध होता है। इतर प्राणियों की ध्वनि में इसप्रकार का सम्बन्ध नहीं होता।

भाषा अपने में पूर्ण होती है

भाषा की पूर्णता का अर्थ यह कदापि नहीं है कि प्रत्येक भाव को व्यक्त करने के लिये इसमें भिन्न-भिन्न शब्द होते हैं, अपितु भाषा की पूर्णता का अर्थ यह है कि प्रत्येक भाषा अपने समाज के भावों को व्यक्त करने में समर्थ होती है। अनेक मिशनरियों ने वन्य जातियों तथा आदिवासियों की भाषा का सर्वेक्षण करके यह परिणाम निकाला है कि उनकी भाषाएँ अपूर्ण हैं। किन्तु आधुनिक भाषाविद् इसे अवैज्ञानिक एवं असत्य मानते हैं। सच तो यह है कि प्रत्येक भाषा की शब्दावली उस भाषा के बोलने वालों के प्राकृतिक वातावरण पर आधारित होती है। यही कारण है कि स्कीमो भाषा में संस्कृत की अपेक्षा दर्शन-शास्त्र की शब्दावली कम है, किन्तु इसके विपरीत भिन्न-भिन्न प्रकार के बर्फ़ों के लिये उनकी भाषा में अनेक ऐसे शब्द है जो कि संस्कृत में उपलब्ध नहीं है। इससे यह भी पता लगता है कि उनके जीवन में बर्फ़ की अपेक्षा दर्शन का कम महत्व है।

उपर्युक्त विचारों को संक्षेप में हम निम्नलिखित रूप में कह सकते हैं, जिससे कि भाषा की परिभाषा एवं उसके स्वरूप का यत्किंचित बोध हो सकता है:—

भाषा मनुष्य के प्रतीकात्मक कार्यों का प्राथमिक एवं बहुविस्तृत रूप है। इसके प्रतीक ध्वनि-अवयवों से उत्पन्न ध्वनि अथवा ध्वनि-समूहों से बने होते हैं एवं विभिन्न वर्गों तथा आकारों में इसप्रकार सजाए हुए रहते हैं कि उनका एक संयुक्त एवं सुडौल आकार (ढाँचा) बन जाता है। भाषा का अस्तित्व प्रतीकों में होता है। इसके सभी प्रतीक सार्थक होते हैं किन्तु इन प्रतीकों तथा इन प्रतीकों से बोधित-वस्तुओं का सम्बन्ध समाज-सापेक्ष्य एवं स्वच्छन्द होता है। ये प्रतीक एक व्यक्ति की उत्तेजना को दूसरे व्यक्ति के मन में संचारित करके प्रतिक्रिया उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं। यद्यपि इस प्रतिक्रिया को तत्काल उत्पन्न होने से रोका भी जा सकता है। भाषा का आकार (ढाँचा) इस प्रकार का होता है कि जिसके द्वारा किसी भाषा का बोलने वाला अपने भावों, इच्छाओं एवं अनुभवों को दूसरे मनुष्य पर अभिव्यक्त कर सकता है। सारांश यह है कि प्रत्येक भाषा किसी संस्कृति को अभिव्यक्त करती है तथा अपने वातावरण के अनुसार होती है।

१.११ भाषाशास्त्र का विषय

भाषाशास्त्र का विषय भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करना है। इस अध्ययन की सीमा के अन्तर्गत मानव कण्ठ से निसृत वाणी, प्राचीन तथा अर्वाचीन संस्कृत एवं असंस्कृत, विद्वान एवं निरक्षर, सभी के भाषा के रूपों का समा-

वेश होता है। भाषाशास्त्री, इसके लिये सबसे पहले भाषा की गठन की जानकारी प्राप्त करता है। मोटे तौर पर उसके अध्ययन की निम्नलिखित सीमा होती है :—

(क) वह संसार की सभी भाषाओं की व्याख्या करता है तथा उनके उद्गम और विकास का भी अनुसन्धान करता हैं। वह ऐतिहासिक दृष्टि से भाषा का अध्ययन करता है। इसके लिये उसे एक ही परिवार की विभिन्न भाषाओं का अध्ययन करना पड़ता है। इसके फलस्वरूप उसे ऐसी सामग्री उपलब्ध होती है जिनकी सहायता से वह किसी विशेष परिवार की मूल भाषा का पुनः निर्माण करता है। भारोपीय भाषा का पुनः निर्माण उसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

(ख) वह विभिन्न परिवार की भाषाओं का भी अध्ययन करता है और उसके आधार पर वह भाषा सम्बन्धी उन सामान्य नियमों को भी खोज निकालती है जो सार्वभौम रूप से सभी भाषाओं पर लागू होते हैं।

(ग) वह अपने अध्ययन की सीमा को भी निर्धारित करता है और उसकी रूपरेखा को भी स्पष्ट करता है।

१.१२ भाषाशास्त्र की सीमाएँ

भाषा का सामाजिक दायित्व है। भाषा मानव जीवन की प्रमुख एवं सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है। इस कारण उसका सम्बन्ध सम्पूर्ण मानवता से है। किन्तु भाषा-शास्त्री जिस रूप में भाषा का विश्लेषण एवं विवेचन करता है उसके कारण उसका क्षेत्र बहुत कुछ सीमित एवं संकुचित हो जाता है। यह सत्य है कि काव्य-शास्त्री, दार्शनिक, धर्मशास्त्री, तथा आलोचक आदि सभी का सम्बन्ध भाषा से है किन्तु भाषा-शास्त्री का भाषा से सम्बन्ध इन समस्त शास्त्रियों से किंचित भिन्न रूप में है। यह बात निःसंदिग्ध है कि अन्य शास्त्र वाले भाषाशास्त्रियों के भाषा विश्लेषण से लाभ उठा सकते हैं। भाषाशास्त्री भाषा विषयक अपनी अध्ययन की सीमाओं को जिस रूप में निर्दिष्ट करता है, वे इसप्रकार हैं—

(१) सर्वप्रथम भाषाशास्त्री को इस बात में अभिरुचि नहीं होती कि किस प्रकार के विचारों का प्रेषण हो रहा है। उसके अध्ययन का मुख्य विषय विचार नहीं, अपितु वह माध्यम है जिसके द्वारा विचारों का परिवहन होता है। इसके लिये उसे अपने अध्ययन की सीमा का निर्धारण करना पड़ता है। इसका कारण यह है कि यदि वह विचार-तत्वों के प्रति आकृष्ट हो जावे तो उसे मानव के सम्पूर्ण ज्ञान के साथ सम्बन्ध स्थापित करना पड़ेगा।

(२) भाषाशास्त्री की इस विषय में बिल्कुल रुचि नहीं होती कि कोई व्यक्ति 'क्या कह रहा है', अथवा 'क्या कहना चाहता हैं'? वास्तव में उसकी रुचि

का विषय यह होता है कि जो कुछ कहा जा रहा है उसका रूप क्या है ?

(३) भाषा-शास्त्री के अध्ययन की सीमाएँ उसके द्वारा स्वीकृत भाषा की परिभाषा के कारण भी संकुचित हो, जाती हैं क्योंकि पारस्परिक विचारों के आदान प्रदान के लिए कई माध्यम अपनाये जाते हैं जिनमें झंडी, लिखित प्रतीक, एवं मूक संकेत उल्लेखनीय हैं। भाषाशास्त्री इन समस्त प्रकार के माध्यमों को अपने क्षेत्र के बाहर मानता है। उसका सीमा-क्षेत्र केवल मानव वागेन्द्रियों से उद्भूत सार्थक ध्वनियों के अध्ययन तक ही है।

भाषाशास्त्री को कभी-कभी केवल लेख्य के आधार पर ही भाषा का अध्ययन करना होता है। वह दैनिक जीवन में व्यवहृत होने वाली भाषा का अध्ययन तो उसकी ध्वन्यात्मक विशेषता के आधार पर करता है किन्तु कभी-कभी उसे लेख्य के आधार पर प्राचीन मृत भाषा का अध्ययन करना पड़ता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि ऐसे अध्ययन के समय में भी वह यह जानने का प्रयत्न करता है कि वह भाषा किस रूप में बोली जाती होगी।

(४) भाषा वस्तुतः समाज-सापेक्ष्य वस्तु है अतएव भाषाशास्त्री उसके आदर्श रूप के अनुसंधान में प्रवृत्त नहीं होता। वह इस बात की कभी भी चिन्ता नहीं करता कि कोई बात किस रूप में कही जानी चाहिए या किस व्याकरणीय रूप का किस प्रकार प्रयोग करना चाहिए, अथवा किसी शब्द विशेष को किस रूप में उच्चरित करना चाहिए? उसकी खोज एवं अध्ययन का विषय इस बात का विश्लेषण करना होता है कि कोई वक्ता किसी भाषा को किस रूप में उच्चरित करता है अथवा किसी भाषा-समुदाय का उच्चारण किस रूप में होता है। वह मानव के उच्चारों के यथार्थ रूप का विवेचन करता है। भाषा किस रूप में है, यही उसकी सीमा है और उसे किस रूप में होना चाहिये यह उसकी सीमा के बाहर की वस्तु है।

जब भाषाशास्त्री भाषा में किसीप्रकार के मानदण्ड (स्टैण्डर्ड) की चर्चा करता है तब उसका केवल इतना ही तात्पर्य होता है कि किसी भाषीय-पद्धति के अन्तर्गत विचारों के आदान प्रदान करते समय किसप्रकार से स्थिरता तथा विशिष्टता लायी जाय।

कुछ लोग ऐसा सोच सकते हैं कि भाषाशास्त्री ऊपर के सीमा-प्रतिबन्ध को लगाकर अपने अध्ययन-क्षेत्र को बहुत संकुचित कर देता है किन्तु इसप्रकार की विचारधारा में कोई तथ्य नहीं है। सच तो यह है कि भाषाशास्त्री के लिये केवल कथ्य भाषा के माध्यम के रूप में भाषा-प्रणाली का अध्ययन ही इतना जटिल

एवं गम्भीर है कि इस प्रतिबन्ध-सीमा में भी अध्ययन की व्यापकता की असीम सम्भावनाएँ हैं।

१.१३ भाषाविज्ञान तथा भाषाशास्त्र

आधुनिक युग विशेषज्ञता का है। आज मानव-ज्ञान की प्रत्येक शाखा-प्रशाखा का सूक्ष्म एवं गहरा अध्ययन हो रहा है। मनुष्य के व्यक्तिगत दैनिक जीवन में ही नहीं अपितु सामाजिक जीवन में भी भाषा का महत्त्व स्वयंसिद्ध है। इस महत्त्व के परिणाम स्वरूप ही १९ वीं शताब्दि में, भाषाविज्ञान अध्ययन का एक अलग विषय बन गया और यूरप के अनेक विद्वान् इसके गम्भीर अध्ययन में प्रवृत्त हुए।

अँग्रेजी में इस विज्ञान के कई नाम—'फिलॉलोजी', 'सायंस आव लेंग्वेज' 'कम्पैरेटिव फिलॉलोजी'—प्रचलित हैं। फ्रान्स में इसे लोग 'लिंग्विस्तिक' तथा जर्मनी में 'स्प्राख़ विशेन शैफ़्ट'' नाम से अभिहित करते हैं।

इस देश में अँग्रेजी के प्रचार एवं प्रसार के कारण ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी अनेक विषयों का नामकरण भी अंग्रेज़ी के आधार पर ही हुआ है। हिन्दी में आज इस विज्ञान के लिए 'भाषाविज्ञान', 'भाषाशास्त्र', 'तुलनात्मक भाषाविज्ञान', तथा 'तुलनात्मक भाषाशास्त्र' आदि अनेक नाम प्रचलित हैं। इनमें 'भाषाविज्ञान' नाम तो स्पष्ट रूप से 'सायंस आव लेंग्वेज' का अनुवाद है।

यहाँ यह बात स्पष्टतया समझ लेनी चाहिए कि जहाँ तक इस विज्ञान से सम्बन्ध है, हिन्दी में 'विज्ञान' एवं 'शास्त्र', दोनों, शब्द पर्याय रूप में ही प्रयुक्त हुए हैं। इसप्रकार 'भाषाविज्ञान' तथा 'भाषाशास्त्र' एवं 'तुलनात्मक भाषाविज्ञान' और 'तुलनात्मक भाषाशास्त्र' में कोई अन्तर नहीं है। ठीक इसी पर्याय रूप में, किसी समय में, यूरप में, 'फिलॉलोजी' तथा 'लिंग्विस्टिक' शब्द भी लिए गये थे। इनमें 'फिलॉलोजी' का व्यवहार, विशेषरूप से इंगलैंड के भाषाविद् करते थे।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् अमरीका के अनेक भाषाशास्त्रियों—बोआज़, सापियर, तथा ब्लूमफील्ड आदि—ने भाषा के अध्ययन-मार्ग में नवीन मोड़ दी। इन प्रसिद्ध भाषाशास्त्रियों ने जीवित भाषा या बोली के अध्ययन पर अधिक बल दिया। इसी कारण से यहाँ 'भाषाविज्ञान (Philology) तथा भाषाशास्त्र (Linguistics) दो पृथक विषय बन गये। आज तो ये दोनों शब्द भिन्न रूप एवं अर्थ में, प्रयुक्त किए जाने लगे हैं। अमरीका में फिलॉलोजी (भाषाविज्ञान) शब्द का व्यवहार प्राचीन भाषा तथा साहित्य एवं

शिलालेखों की भाषा के अध्ययन के सन्दर्भ में किया जाता है। दूसरे शब्दों में भाषाविज्ञान के अन्तर्गत प्राचीन भाषा-सामग्री का विश्लेषण किया जाता है और लिंग्युस्टिक्स (भाषाशास्त्र) के अन्तर्गत आधुनिक जीवित भाषाओं एवं बोलियों का अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। इसके अन्तर्गत केवल कथ्य भाषा की ही व्याख्या की जाती है। साहित्य की लिखित भाषा-सामग्री की व्याख्या प्रस्तुत करना इस विषय की सीमा के बाहर है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि लिंग्युस्टिक्स भाषा का यथातथ्य रूप अध्ययन करता है, आदर्श रूप नहीं।

आज हिन्दी में भी 'फिलॉलोजी' तथा लिंग्युस्टिक्स के लिए पृथक-पृथक शब्दों की आवश्यकता है। उपर्युक्त अमरीकी भाषाशास्त्रियों के दृष्टिकोण के आधार पर ही हिन्दी में भी क्रमशः 'भाषाविज्ञान' तथा 'भाषाशास्त्र' शब्द व्यवहृत किये जाने लगे हैं। इसप्रकार आज हिन्दी में भी ये दोनों पर्याय रूप में व्यवहृत न होकर भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त किये जाने लगे हैं।

१.१४ भाषाशास्त्र के विभिन्न रूप

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं भाषाशास्त्र के अन्तर्गत भाषा का सामान्य अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। भाषा का भी वैज्ञानिक विश्लेषण कई रूपों में किया जा सकता है। आधुनिकतम भाषाशास्त्र के अन्तर्गत किसी भाषा का वैज्ञानिक विश्लेषण निम्नलिखित रूपों में किया जाता है—

(१) वर्णनात्मक
(२) समकालिक
(३) ऐतिहासिक
(४) तुलनात्मक
(५) गठनात्मक

इन उपर्युक्त विश्लेषण पद्धतियों को मोटेतौर पर हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—

(१) समकालिक
(२) ऐतिहासिक

इन दोनों के भेद-प्रभेदों को समझ लेना बहुत आवश्यक है क्योंकि इनको भलीभाँति समझे बिना अनेक अशुद्धियों की सम्भावनाएँ हैं।

'समकालिक' (Synchronic) इस शब्द का प्रयोग अन्य सामाजिक शास्त्रों के सन्दर्भ में भी होता है। नृ–विज्ञान के सन्दर्भ में तो इसका तात्पर्य किसी विशेष समय के कार्यों अथवा समस्याओं से होता है। दूसरे शब्दों

में इतिहास से इसका कोई सम्पर्क एवं सम्बन्ध नहीं होता है।

ऐतिहासिक (Diachronic) शब्द भी समकालिक की ही भाँति अन्य शास्त्रों के सन्दर्भ में प्रयुक्त किया जाता है। वहाँ इसका 'अर्थ समय द्वारा उद्भूत परिवर्तन की समस्याओं का अध्ययन करना' होता है।

भाषाशास्त्र के सन्दर्भ में भाषा का अध्ययन करते समय उसके समकालिक स्वरूप को वर्णनात्मक भाषाशास्त्र या व्याख्यात्मक भाषाशास्त्र के नाम से-अभिहित किया जाता है तथा उसके ऐतिहासिक सन्दर्भ के अध्ययन को ऐतिहासिक भाषाशास्त्र के नाम से अभिहित करते हैं। 'ऐतिहासिक' भाषाशास्त्र--नामकरण सर्वथा शुद्ध एवं मान्य है क्योंकि कोई भी इतिहास समय से सम्बन्धित परिवर्तनों का वर्णन करता है। किन्तु 'वर्णनात्मक' भाषाशास्त्र नामकरण अपेक्षाकृत कम मान्य है क्योंकि परिभाषतः भाषाशास्त्र के समस्त स्वरूप एवं विश्लेषण मूलतः वर्णनात्मक होते हैं। इसीलिए 'वर्णनात्मक' नामकरण से भ्रम की अनेक सम्भावनाएँ है। इसके लिए 'समकालिक भाषाशास्त्र' नामकरण अधिक उपयुक्त है। इसके सम्बन्ध में आगे विचार किया जायगा।

१.१५ समकालिक

भाषाशास्त्र के इस स्वरूप के अन्तर्गत जीवित बोलियों का अध्ययन किया जाता है। इसकी अध्ययन पद्धति पूर्णतया विवरणात्मक (व्याख्यात्मक) होती है इसीलिये अनेक भाषाशास्त्री वर्णनात्मक को समकालिक के पर्याय के रूप में ग्रहण करने के पक्ष में हैं। भाषाशास्त्र के इस स्वरूप का अध्ययन अत्यधिक महत्त्व-पूर्ण है क्योंकि इसी के आधार पर भाषा का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन सम्भव है। वस्तुस्थिति यह है कि जब तक हम किसी भाषा विशेष की विभिन्न अवस्थाओं से परिचित न हों जायँ तब तक उसका ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन किया ही नहीं जा सकता।

समकालिक भाषाशास्त्र के अध्ययन का उद्भव ग्रीस, रोम एवं भारत में हुआ था। यहाँ पर भाषा के अध्ययन में ऐतिहासिक पक्ष पर बल न देकर उसके विवरणात्मक अथवा समकालिक पक्ष पर ही ध्यान केन्द्रित करके भाषाओं का अध्ययन किया गया था। थ्रैक्स, डिस्कोलस एवं इरोडियन आदि ग्रीक वैयाकरणों ने ग्रीक भाषा का विवरणात्मक व्याकरण प्रस्तुत किया था।

भाषा के अध्ययन क्षेत्र में, भारत ने ईसा की पाँचवी शताब्दि पूर्व में एक अद्भुत एवं चिरस्मरणीय दिशा की ओर मोड़ दिया। यह अध्ययन ग्रीक भाषा-शास्त्रियों से सर्वथा भिन्न एवं मौलिक था। महर्षि पाणिनि ने भाषा का अध्ययन

पूर्णतया वर्णनात्मक रूप में प्रस्तुत करके, विश्व के भाषा-अध्ययन में अपना नाम अमर कर दिया। आधुनिक युग में आज भी पाणिनि के समकक्ष का कोई भी विवरणात्मक भाषा-अध्ययन नहीं रखा जा सकता। उन्हीं की पद्धति का अनुसरण आज अमरीका के भाषाशास्त्री कर रहे हैं। महर्षि पाणिनि के अतिरिक्त भाषा के अध्ययन-मार्ग को प्रशस्त करने वालों में कात्यायन तथा पतंजलि का नाम चिरस्मरणीय रहेगा।

आधुनिक युग में वर्णनात्मक भाषाशास्त्र का अध्ययन वस्तुतः १९वीं शताब्दि से प्रारम्भ होता है। बीसवीं शताब्दि के प्रथम चरण में 'भाषा' की आधारभूत एवं महत्वपूर्ण इकाई 'ध्वनिग्राम' को मान्यता मिली। अमरीका के प्रसिद्ध भाषा-शास्त्री ब्लूमफील्ड की पुस्तक 'लैंग्वेज' (१९३२) के प्रकाशन से वर्णनात्मक भाषाशास्त्र अपनी यथार्थ विकास की दिशा की ओर उन्मुख हुआ जिसकी परि-णति 'हैरिस' के महानग्रन्थ 'मेथड्स इन स्ट्रक्चरल लिंग्युस्टिक्स' में वर्णित भाषा-पद्धति में हुई।

१.१६ ऐतिहासिक भाषाशास्त्र

किसी भाषा की विभिन्न अवस्थाओं का जब हम काल क्रमानुसार अध्ययन करते हैं तो अध्ययन का यह स्वरूप ऐतिहासिक भाषाशास्त्र के अन्तर्गत आता है। संसार में एकमात्र सत्य, परिवर्तन है। कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जो कि सर्वदा एक रूपमय रहे। भाषा के विषय में भी यह कहा जा सकता है। काल क्रमानु-सार एक स्थान की भाषा भी परिवर्तित होती रहती है। यह परिवर्तन भाषा में निरन्तर होता रहता है, भले ही उसको जानना कठिन हो। एक अवधि के पश्चात् यही अन्तर स्पष्टरूप से देखा जा सकता है। भाषा के इस परिवर्तन को 'भाषा-विकास' के नाम से अभिहित किया जाता है। इस विकास-अवस्था का वर्णन प्रस्तुत करना ऐतिहासिक भाषाशास्त्र के अन्तर्गत आता है।

ऐतिहासिक भाषाशास्त्र का प्रारम्भ उस समय हुआ था जब कि योरोप वालों को संस्कृत का ज्ञान हुआ। उन्होंने देखा कि ग्रीक, लैटिन आदि का संस्कृत से घनिष्ट सम्बन्ध है। आज तक इस क्षेत्र में बहुत अधिक कार्य हुआ है। इस विषय को आगे 'भाषा विकास की अवस्थाएँ' नामक प्रकरण में विस्तार से प्रस्तुत किया जायगा।

१.१७ तुलनात्मक भाषाशास्त्र

इस भाषाशास्त्र के अन्तर्गत दो या दो से अधिक भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। इसी आधार पर भाषा अध्ययन के इस शास्त्र

को 'तुलनात्मक भाषाशास्त्र' के नाम से अभिहित किया जाता है। यह अध्ययन समकालिक एवं ऐतिहासिक भाषा सामग्री के आधार पर प्रस्तुत किया जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह कि इस शास्त्र के अन्तर्गत एक ही समय की कम से कम दो भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन, अथवा एक ही भाषा के विभिन्न कालों की सामग्री का अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है। इस अध्ययन के आधार पर ही भाषाओं के बीच वंशानुगत अथवा पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। ऐतिहासिक भाषाशास्त्र के लिए यह आवश्यक सा है। इसी की सहायता से ही ऐतिहासिक विकास की अनेक धूमिल एवं अस्पष्ट कड़ियों को स्पष्ट किया जा सकता है। बिना इसकी सहायता से ऐतिहासिक अध्ययन का प्रस्तुत करना सम्भव ही नहीं है। इसीलिए बहुत दिनों तक भाषाविज्ञान के लिए 'तुलनात्मक भाषाविज्ञान' का नाम पर्याय रूप में प्रचलित रहा है। किन्तु आजकल इसको पृथक शास्त्र ही माना जाता है, क्योंकि इस शास्त्र की अपनी विशेष 'टेकनीक' है।

१.१८ गठनात्मक भाषाशास्त्र

इधर जब से 'ज़ैलिग हैरिस' की पुस्तक 'मेथेड्स इन स्ट्रक्चरल लिंग्युस्टिक्स' प्रकाश में आयी है, एक अन्य भाषाशास्त्र का नाम लिया जाने लगा है। इसे आधुनिक भाषाशास्त्री 'गठनात्मक-भाषाशास्त्र' के नाम से पुकारते हैं। वस्तुतः इसको भाषा के अध्ययन का गणित कहा जा सकता है। इसे विवरणात्मक भाषाशास्त्र के अन्तर्गत ही लिया जा सकता है किन्तु इसकी कुछ नवीन 'टेकनीक' के कारण इसे भी एक शास्त्र के नाम से अभिहित करने लगे हैं। इसके नियम गणित के समान ही सार्वभौम हों इसके लिए आज भी अमरीका के भाषाशास्त्री लगे हुए हैं। उनका स्वप्न उस समय साकार हो उठेगा जबकि एक यंत्र के द्वारा संसार की किसी भी भाषा को विश्व की अन्य किसी भाषा में अनूदित किया जा सकेगा तथा यंत्र के द्वारा ही भाषाओं का व्याकरण भी लिखा जाने लगेगा। वह समय वस्तुतः भाषा के अध्ययन के चरम उत्कर्ष का होगा।

१.१९ भाषाशास्त्र की शाखाएँ

वस्तुतः भाषाविद् का कार्य संसार की भाषाओं एवं बोलियों का अध्ययन प्रस्तुत करना है। भाषा का अध्ययन चाहे वह वर्णनात्मक, ऐतिहासिक अथवा तुलनात्मक हो, उसे विश्लेषणात्मक रूप में ही प्रस्तुत करना पड़ता है। यदि हम भाषा का अध्ययन करना चाहें तो ज्ञात होगा कि वह वाक्यों का समूह है। वाक्यों का अध्ययन करें तो ज्ञात होगा कि वह कुछ सार्थक शब्दों का समूह है। इन

सार्थक शब्दों का विश्लेषण करें तो 'ध्वनिग्राम' की प्राप्ति होती है जिनका अन्तिम विश्लेषण 'ध्वनि' रूप में किया जा सकता है। भाषा एक मिश्रित प्रणाली है। भाषा रूपी मकान का ढाँचा कई पृथक किन्तु फिर भी एक वस्तु रूप से निर्मित होता है। किसी भी भाषा का अध्ययन सुगमता के लिए इन्हीं चार वस्तुओं—ध्वनि, ध्वनिग्राम, पद, वाक्य—के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इसीलिए इसको भाषाशास्त्री, ध्वनिशास्त्र ध्वनिग्रामशास्त्र, पदरचनाशास्त्र तथा वाक्य-रचनाशास्त्र कहते हैं। इन चारों से भाषा का कार्य अर्थ-उद्बोधन होता है। अतः उसको अर्थउद्बोधनशास्त्र के नाम से अभिहित किया जाता है। ये समस्त शाखाएँ एक दूसरे से पृथक किन्तु फिर भी सम्बन्धित होती हैं। यहाँ पर संक्षेप में प्रत्येक शाखा का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

१.२० ध्वनिशास्त्र

इस शाखा के अन्तर्गत वाग्ध्वनियों का अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। भाषा के निर्माण में ध्वनि को आधारभूत सामग्री कहा जा सकता है। इसीलिए इस शाखा को बहुत अधिक महत्व दिया जाता है। जितना विस्तृत, विशद एवं वैज्ञानिक अध्ययन इस शाखा का किया जा रहा है उतना किसी अन्य शाखा का नहीं। इसकी अनेक शाखाएँ हैं जिनमें 'ध्वनि लहरी शाखा' का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

सामान्यतः इस शाखा के अन्तर्गत किसी भाषा की ध्वनियों का अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। ध्वनियों को दो वर्गों में—स्वर एवं व्यंजन-रूप में—अध्ययन करने के अतिरिक्त इस शाखा के अन्तर्गत ध्वनियों के अन्य गुणों—बलाघात, सुर लहर, मात्रा—का भी विवेचन किया जाता है।

१.२१ ध्वनिग्रामशास्त्र

यह भाषाशास्त्र की वह शाखा है जिसके अन्तर्गत किसी भी भाषा के सार्थक तत्वों—ध्वनिग्रामों-का अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। वस्तुतः किसी भाषा की न्यूनतम सार्थ इकाई ध्वनि न होकर ध्वनिग्राम ही होते हैं जिनको ध्वन्यात्मक समानता तथा परिपूरक वितरण के आधार पर छाँटा जाता है।

इस शाखा के अन्तर्गत ध्वनिग्रामों के क्रम तथा उनके वितरण आदि का अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। इस शाखा का पृथक अस्तित्व बीसवीं शताब्दि से ही माना जाने लगा है। इसके पूर्व ध्वनिविज्ञान के अन्तर्गत ही इसका भी अध्ययन प्रस्तुत किया जाता था।

१.२२ पदरचनाशास्त्र

यह भाषाशास्त्र की वह शाखा है जिसके अन्तर्गत पदग्रामों को छाँटने की विधि, उनका शब्दों में क्रम, गठन एवं विभिन्न व्याकरणीय रूपों में परिवर्तित रूप का अध्ययन किया जाता है।

१.२३ वाक्यरचनाशास्त्र

इस शाखा के अन्तर्गत शब्दों का वाक्यों में प्रयोग एवं उनके द्वारा विभिन्न प्रकार के निर्मित रूपों (वाक्यों) का अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।

पदरचना एवं वाक्यरचनाशास्त्र का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है क्योंकि किसी भाषा के गठन सम्बन्धी रूपवाक्य रचना पद्धति पर निर्भर करते हैं। इसीलिए पद रचना एवं वाक्यरचना––इन दोनों का अध्ययन साथ-साथ किया जाता है। कभी-कभी इनका अध्ययन एक ही शाखा के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जाता है। संसार की ऐसी अनेक भाषाएँ है जिसका कि अध्ययन करते समय उसमें पदरचना-पद्धति तथा वाक्यरचना-पद्धति के मध्य किसी विभाजक रेखा को खींचना कठिन हो जाता है।

इस शाखा का अध्ययन स्वतंत्र रूप से अभी अधिक नहीं हो पाया है। हिन्दी-क्षेत्र में तो इसका अध्ययन अभी अछूता सा है।

१.२४ अर्थउद्‌बोधनशास्त्र (Semantics)

इस शाखा के अन्तर्गत 'वाक्य' के द्वारा उद्‌बोधित अर्थ का अध्ययन होता है। वस्तुतः उपर्युक्त रूपों––ध्वनि, ध्वनिग्राम, पदग्राम, वाक्य––का महत्व उसी समय होता है जबकि उनसे एक अर्थ प्रकट हो। अतः इस अर्थ का अध्ययन करना आवश्यक है। भाषाशास्त्र की जिस शाखा में 'अर्थ' पर विचार किया जाता है उसे अर्थउद्‌बोधनशास्त्र कहते हैं।

किसी भी शब्द या वाक्य का सर्वदा एक ही अर्थ नहीं रहता। समय के साथ साथ अर्थ में भी परिवर्तन होता रहता है इसीलिए आधुनिक भाषाशास्त्री इस शाखा को विशेष महत्व नहीं देते।

इन शाखाओं के अतिरिक्त भाषाशास्त्र की कुछ अन्य गौण शाखाएँ भी मानी जाती है जिनमें–सन्धिविचारशास्त्र तथा कोश रचनाशास्त्र मुख्य हैं। कुछ लोग व्युत्पत्तिशास्त्र को भी एक स्वतंत्र शाखा मानते हैं।

१.२५ सन्धिविचारशास्त्र

कभी-कभी दो पदों के सन्निकर्ष में आने पर उनके ध्वनिग्रामीय आकारों में

परिवर्तन हो जाता है। इसप्रकार के ध्वनिग्रामीय परिवर्तित रूपों का अध्ययन प्रस्तुत करने वाली शाखा सन्धिविचारशास्त्र कहलाती है। वस्तुतः इस शाखा का अध्ययन पहले 'रूपरचनाशास्त्र' के अन्तर्गत ही किया जाता था, किन्तु आधुनिक भाषाशास्त्री सर्वथा पृथक रूप में इसका अध्ययन प्रस्तुत करने लगे हैं; अतः इसे पृथक शाखा का नाम ही दे दिया गया है।

१.२६ कोशरचनाशास्त्र

इस शाखा के अन्तर्गत भाषा-पद्धति के समस्त अर्थवान् तत्वों को वर्णों के अनुसार सूचीबद्ध किया जाता है। इस शाखा के अन्तर्गत आजकल परम्परागत कोशों की तरह केवल शब्दों को ही नहीं, पदग्रामों को भी सूचीबद्ध किया जाता है।

इसके अन्तर्गत किसी भाषा के बलाघात एवं सुरलहर के ढाँचे का भी अध्ययन करना चाहिए——चाहे वह अर्थतत्व के साथ हो अथवा उसके प्रतिबन्धित अर्थ रहित।

इस शाखा को एक प्रकार से अर्थविज्ञान के अन्तर्गत रखा जा सकता है। यद्यपि इसकी अपनी 'टेकनीक' है।

१. २७ भाषा-अध्ययन के विकास की अवस्थायें

वर्तमान रूप में भाषाविज्ञान अथवा भाषाशास्त्र यूरोप एवं अमेरिका की देन है। इसका निर्माण वस्तुतः संसार की विविध भाषाओं से प्राप्त तथ्यों के आधार पर हुआ है। इसके विकास की निम्नलिखित पाँच अवस्थायें हैं:——

भाषाशास्त्र का उद्भव

भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन का आरम्भ भारत, ग्रीक एवं रोम के व्याकरण-शास्त्रियों के अध्ययन से होता है।

भारत में इसका सूत्रपात वेदों के अध्ययन के साथ होता है। समय की प्रगति के साथ-साथ वैदिकभाषा जैसे दुरूह एवं जटिल होती गयी, वैसे-वैसे इस बात की आवश्यकता प्रतीत होने लगी कि उसे सरल एवं बोधगम्य बनाने के लिए उसका पद-पाठ तैयार किया जाय।पद-पाठ में सन्धि-विच्छेद आदि की आवश्यकता प्रतीत हुई। यह अध्ययन विशुद्ध रूप से भाषा का अध्ययन था।

आगे चलकर जब वेद की भाषा दुरूह एवं जटिल होने लगी तथा कई जातियों के मिश्रण से जब भाषा में व्यत्यय होने लगा तो पाणिनि ने भाषा का संस्कार करके उसे संस्कृत बनाया एवं सूत्रशैली में अष्टाध्यायी की रचना की।

उच्च सांस्कृतिक दृष्टि से संसार की पाँच भाषायें---प्राचीन चीनी, संस्कृत, अरबी, ग्रीक तथा लेटिन---श्रेष्ठ मानी जाती है। यूरोप की आधुनिक भाषाओं के व्याकरण में, वाक्य को आठ भागों---संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रिया-विशेषण, उपसर्ग, संयोजक, विस्मयादिसूचक---में वर्गीकृत करने की पद्धति वस्तुतः ग्रीक से लैटिन द्वारा होते हुए आयी है। पहले यूरोप के लोगों को इस बात का अभिमान था कि ग्रीक लोग दर्शन से लेकर भाषा तक के चिन्तन मे सर्वश्रेष्ठ रहे हैं किन्तु इधर जब से अमेरिका के विद्वानों ने भाषाशास्त्र का सूक्ष्म एवं गहरा अध्ययन प्रारम्भ किया है, तब से यह स्पष्ट हो गया है कि कम से कम भाषा के क्षेत्र में जितना सूक्ष्म एवं गम्भीर चिन्तन प्राचीन भारत में हुआ है उतना अन्यत्र नहीं हुआ है। संस्कृत व्याकरण के क्षेत्र में पाणिनि, कात्यायन एवं पतजलि सर्वोपरि माने जाते हैं तथा 'मुनित्रय' के नाम से विख्यात हैं। पाणिनि के पूर्व के अनेक वैयाकरणों के नाम तो मिलते हैं किन्तु उनकी कृतियाँ आज उपलब्ध नही है। किन्तु पाणिनि के सर्वांगीण अध्ययन को देखकर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उनके बहुत पहले ही व्याकरण की शास्त्र रूप में प्रतिष्ठा हो चुकी होगी। आज के भाषाशास्त्री इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि आधुनिक भाषाओं के विश्लेषण के लिए जिस प्रक्रिया की आवश्यकता है उसकी पूर्ण परिणति तो भारत में ईसा के जन्म से पाँच सौ वर्ष पूर्व, पाणिनि की कृति अष्टाध्यायी, में हो चुकी थी। इस बात का अनुभव करके आज का भाषाशास्त्री महर्षि पाणिनि के प्रति नतमस्तक हो जाता है और भावातिरेक से उसके हृदय से श्रद्धासम्वलित उद्गार निकल पड़ते है। इस शताब्दि के भाषाशास्त्री स्वर्गीय ब्लूमफील्ड ने अपनी पुस्तक में कई स्थानों पर इसप्रकार के उद्गार प्रकट किये हैं---

'.....(वास्तव में) वह भारत देश था जहाँ ऐसे ज्ञान का उदय हुआ जो यूरोप के लोगों में भाषा सम्बन्धी विचारधारा में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित करने वाला था......जिसप्रकार आज हमारे देश के विभिन्न वर्गों की भाषाओं में अन्तर है, उसीप्रकार (प्राचीनकाल मे) हिन्दुओं में भी विभिन्न सामाजिक स्तर के लोगों की भाषाओं में अन्तर था। उस समय कुछ ऐसी परिस्थिति आ गई थी कि उच्चवर्ग के लोग निम्नवर्ग के लोगों की भाषा को अपनाने के लिये बाध्य हो रहे थे। ऐसी स्थिति में हिन्दू वैयाकरणों का ध्यान वैदिक भाषा की ओर से उच्चवर्ग के लोगों की ओर गया और वे उस भाषा के नियम उपनियम वनाने में प्रवृत हुए जिसे आज संस्कृत कहते हैं। समय की प्रगति

से इस भाषा के व्यवस्थित व्याकरण एवं कोश का निर्माण हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि पाणिनि के व्याकरण के पूर्व वैयाकरणों की कई पीढ़ियाँ गुजर गई होंगी। पाणिनि के व्याकरण की रचना ३५० ई० पू०—२५० ई० पू० में हुई होगी। यह व्याकरण वस्तुतः मानव-ज्ञान का सर्वोत्कृष्ट प्रतीक है। इसमें वैयाकरण ने अपनी भाषा के शब्दरूपों, क्रियारूपों, एवं शब्द-निर्माण सम्बन्धी सूक्ष्मातिसूक्ष्म नियम दिए हैं। आज तक संसार की किसी भी भाषा का इतना पूर्ण विवरण उपलब्ध नहीं है। आगे चलकर ब्राह्मण संस्कृति से ओत-प्रोत संस्कृत भारत की साहित्यिक एवं राजभाषा बनी; उसका आंशिक कारण पाणिनि का व्याकरण भी था। जब भारत में संस्कृत किसी की मातृभाषा नहीं रह गई, उसके बहुत दिनों बाद तक इसी व्याकरण के कारण यह विद्वान् वर्ग तथा धर्म की भाषा बनी रही। यदि यूरोप के विद्वानों को संस्कृत के विवरणात्मक व्याकरण की भाँति ही ग्रीक एवं लैटिन के व्याकरण उपलब्ध होते तो भारोपीय भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन आज की अपेक्षा कहीं अधिक तीव्र गति एवं शुद्ध रूप में होता'।

अपने सन् १९४० ई० के दिसम्बर के एक लेख में, प्रसिद्ध भाषाशास्त्री स्वर्गीय श्री बैंजामिन ली हूर्फ़ भाषाशास्त्र के विषय में अपने विचार प्रकट करते हुए, पाणिनि के सम्बन्ध में लिखते हैं:—" . . .जहाँ तक हमें ज्ञात है, आज के रूप में ही, ईसा से कई शताब्दि पूर्व, पाणिनि ने इस विज्ञान का शिलान्यास किया था। पाणिनि ने उस युग में वह ज्ञान प्राप्त कर लिया था जो हमें आज उपलब्ध हुआ है। (संस्कृत) भाषा के वर्णन अथवा संस्कृत भाषा को नियमबद्ध करने के लिए पाणिनि के सूत्र बीजगणित के जटिल सूत्रों (फार्मूलों) की भाँति हैं। ग्रीक लोगों ने वस्तुतः इस विज्ञान (भाषाशास्त्र) की अधोगति कर रखी थी। इनकी कृतियों से ज्ञात होता है कि वैज्ञानिक विचारक के रूप में, हिन्दुओं के मुकाबले में, ये (ग्रीक लोग) कितने अधिक निम्नस्तर के थे (और) उनकी भ्रान्तिपूर्ण विचारधारा का प्रभाव प्रायः दो सहस्त्र वर्षों तक चलता रहा। (वास्तव में) १९ वीं शताब्दि के प्रारम्भ से, जब से पश्चिम ने पाणिनि को प्राप्त किया है तभी से आधुनिक वैज्ञानिक भाषाशास्त्र का प्रारम्भ होता है।"

यूरोप में भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन का आरम्भ ग्रीक व्याकरणशास्त्रियों से होता है। थ्रैक्स, डिस्कोलस, एवं इरोडियन आदि ग्रीक व्याकरणशास्त्रियों ने ग्रीक व्याकरणों की रचना की। इनके अध्ययनों पर धर्म, दर्शन तथा तर्कशास्त्र की स्पष्ट छाप है। वे पाणिनि की भाँति विवरणात्मक नहीं हैं। पाणिनि ने जिस संस्कृत का व्याकरण लिखा था वह उस युग की सजीव भाषा थी। जिसप्रकार

आधुनिक भाषाओं में सामाजिक स्तर के अनुसार यत्किंचित भेद है, उसीप्रकार पाणिनि-काल की संस्कृत में भी रहा होगा। पाणिनि ने उस युग के ब्राह्मण गुरुकुलों में प्रचलित शिष्ट उदीच्य (पश्चिमी पंजाबी) भाषा को लेकर उसका विवरणात्मक व्याकरण तैयार कर दिया। ग्रीक लोगों के व्याकरण सम्बन्धी अध्ययन अवैज्ञानिक थे। इनका एकमात्र उद्देश्य शुद्धरूपों का अवबोध कराना था। इसका क्षेत्र भी सीमित था तथा यह भाषीय-तत्वों के निरीक्षण पर आधारित न था। (२) ....इसके विकास की दूसरी अवस्था 'फिलॉलोजी' है। प्राचीन काल में मिश्र देश के सिकन्दरिया में भी भाषा-विज्ञानियों का एक संस्थान था किन्तु यहाँ 'फिलॉलोजी' से उस वैज्ञानिक आन्दोलन से तात्पर्य है जिसका समारम्भ फ्रेडरिक औगुस्ट वुल्फ़ द्वारा सन् १७७७ में हुआ था और जो आज भी किसी न किसी रूप में चल रहा है। इस आन्दोलन का एक मात्र उद्देश्य भाषा का अध्ययन ही नहीं है। पुराने भाषाविज्ञानियों ने प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों का संशोधन, सम्पादन एवं उनकी व्याख्या भी प्रस्तुत की। इसका एक परिणाम यह हुआ कि लोगों के अध्ययन की अभिरुचि साहित्य के इतिहास तथा रस्म-रिवाजों की जानकारी की ओर भी बढ़ी। इन भाषाविज्ञानियों ने अपने अध्ययन के सिद्धान्त भी स्थिर किये और उनके अनुसार ही उन्होंने आलोचनाएँ भी कीं। जब वे भाषा सम्बन्धी कार्य करते थे तो मुख्यरूप से उनका उद्देश्य विभिन्न युगों के प्राचीन ग्रन्थों की भाषा का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना होता था। यह कार्य वे प्राचीन ग्रन्थों की भाषा के निर्धारण के लिए करते थे। प्राचीन एवं लुप्तप्राय भाषाओं में लिखित शिलालेखों का अध्ययन भी उनका एक विषय था। निस्सन्देह इसप्रकार के अध्ययन के परिणामस्वरूप ही ऐतिहासिक भाषाविज्ञान (Historical Lingiustics) अस्तित्व में आया। इस अध्ययन की सब से बड़ी त्रुटि यह थी कि अध्येताओं का ध्यान केवल प्राचीन भाषाओं––ग्रीक एवं लैटिन––की ओर ही था और जीवन्त भाषाओं के अध्ययन से ये लोग पूर्णतया विरत थे।"

भाषाविज्ञान अथवा भाषाशास्त्र कीतीसरी अवस्था वह है जब विद्वानों को यह अवबोध हुआ कि भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन भी हो सकता है। इस अध्ययन ने तुलनात्मक भाषाशास्त्र को जन्म दिया। सन् १८१६ में, सर्वप्रथम, फ्रेंज बॉप्प ने संस्कृत, जर्मन, ग्रीक, लैटिन, आदि का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया; किन्तु यहाँ यह उल्लेखनीय है कि बॉप्प प्रथम व्यक्ति न थे जिन्होंने इन भाषाओं की तुलना के आधार पर यह निश्चित किया था कि ये एक परिवार की हैं। बॉप्प से बहुत पहले अंग्रेज प्राच्य भाषाविद् विलियम जोन्स (मृत्यु, सन्

१७९४) इस तथ्य की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित कर चुके थे। किन्तु यहाँ यह भी बात याद रखने योग्य है कि जोन्स के कतिपय वक्तव्यों से यह स्पष्ट सिद्ध नहीं होता कि सन् १८१६ से पूर्व ही विद्वानों को भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन का महत्त्व भलीभाँति अवगत हो चुका था। संस्कृत का सम्बन्ध यूरप तथा एशिया की कतिपय भाषाओं से है, इस अनुसन्धान का श्रेय, यद्यपि बॉप्प को नही दिया जा सकता तथापि इसमें तनिक भी सन्देह नही कि बॉप्प ही वह प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने यह अनुभव किया था कि एक वंश की भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन स्वतंत्र विज्ञान का विषय बन सकता है। एक वंश की किसी भाषा के रूपों का उसी वंश की दूसरी भाषाओं के रूपों से तुलना करके महत्त्वपूर्ण तथ्यों को प्रकाश में लाने का कार्य सब से पहले बॉप्प ने ही किया।

इसमें सन्देह है कि संस्कृत के ज्ञान के अभाव में भी बॉप्प अपने तुलनात्मक विज्ञान को इतनी शीघ्रता से प्रादुर्भूत एवं अग्रसर कर पाते। लैटिन तथा ग्रीक के अतिरिक्त, यूरप में संस्कृत के आगमन से बॉप्प का अध्ययन-क्षेत्र विस्तृत एवं सुदृढ़ हो गया। यह सौभाग्य की बात है कि तुलनात्मक अध्ययन को दृढ़तम बनाने की पूर्ण एवं अपूर्व क्षमता संस्कृत में थी। इसे स्पष्ट करने के लिए लैटिन के गेनुस (genus) शब्द की रूप तालिका को उदाहरणार्थ लिया जा सकता है। जब हम इसके रूपों (genus, generis, genere, genera, generum, आदि) की ग्रीक के (genos, geneos, genei, genea, geneon आदि) से तुलना करते है तो कुछ भी स्पष्ट नही होता। किन्तु जब हम इन शब्दरूपों से सम्बन्धित संस्कृत के रूपों (ganas, ganasas, ganasi, ganasu, ganasam आदि) को देखते हैं तो नूतन प्रकाश मिलता है। ग्रीक तथा लैटिन रूपों में अत्यधिक साम्य है। यदि थोड़ी देर के लिए हम यह बात स्वीकार कर लें कि 'गनस्' (ganas) ही प्राचीन रूप है (क्योंकि इसे स्वीकार करने से व्याख्या में सरलता होती है) तो हमें यह मानना पड़ेगा कि ग्रीक में स्वरमध्यग 'स्' का लोप हो गया होगा। दूसरी बात यह भी स्पष्ट दिखाई देगी कि इन्ही दशाओं में, लैटिन में, 'स्' का 'र' में परिवर्तन हो गया होगा। व्याकरण की दृष्टि से संस्कृत शब्द-रूपावली से 'गनस्' (ganas) रूप प्राप्त होता है। वास्तव में यह एक ऐसी मूल इकाई है जो निश्चित् एवं स्थिर है। लैटिन तथा ग्रीक में भी वही रूप उपलब्ध होते हैं जो संस्कृत में; किन्तु संस्कृत के रूप निस्सन्देह प्राचीन हैं। यहाँ संस्कृत-रूप इसलिए महत्त्वपूर्ण तथा शिक्षाप्रद है कि इसमें भारोपीय के "—स्"

सुरक्षित हैं। यह सत्य है कि भारोपीय के कई वैशिष्ट्य संस्कृत में सुरक्षित नहीं रह पाये हैं। उदाहरणार्थ इसकी स्वर-पद्धति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। किन्तु सामान्यतया जो मूल तत्त्व संस्कृत में सुरक्षित है वे अनुसन्धान के लिये अतिशय मूल्यवान् हैं और इनके द्वारा अन्य भाषाओं के रूपों की गुत्थियाँ सुलझती हैं तथा उनके अध्ययन में सहायता मिलती है।

बॉप्प ने भाषाविज्ञान के अध्ययन में जो योगदान किया उसे अन्य भाषा-शास्त्रियों ने आगे बढ़ाया। इस सम्बन्ध में याकोब ग्रिम्म का नाम उल्लेखनीय है। आप जर्मन भाषा के अध्ययन के प्रवर्त्तक थे और आपकी कृति "द्वायश ग्रामॉटिक" का प्रकाशन सन् १८२२ –१८३६ में हुआ था। इसी श्रेणी में पॉट, कुहन, बेन्फे, औफ्रेख आदि जर्मन विद्वान् भी है जिन्होंने अपनी कृतियों द्वारा भाषा शास्त्र तथा तुलनात्मक पुराणविद्या (Comparative Mythology) के सम्बन्ध में प्रभूत सामग्री उपलब्ध की।

इस स्कूल के तीन प्रतिनिधियों—मैक्समूलर, जी० कुर्टिउस तथा औगुस्ट श्लाइख़र—के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन्होंने तुलनात्मक अध्ययन को कई प्रकार से अग्रसर किया। मैक्समूलर ने अपने भाषणों द्वारा इसे लोक-प्रिय बनाया। उनके ये भाषण "लेसन्स इन् द् सायन्स आव लैंग्वेज" के रूप में सन् १८६१ में प्रकाशित हुए थे। मैक्समूलर में सब से बड़ी त्रुटि यह थी कि उनका ध्यान वैज्ञानिकता की ओर कम था। कुर्टिउस विशिष्ट भाषाशास्त्री थे। वे प्रथम विद्वान् थे जिन्होंने तुलनात्मक एवं क्लासिकल फिलॉलोजी में समन्वय स्थापित किया। यह कार्य आपने अपनी कृति "ग्रुण्डत्सुगे डेर ग्रिशिशेन एटिमो-लोगी (Grundzuge der griechischen Etymologie) के प्रकाशन (सन् १८६१–६२) से सम्पन्न किया। उन्होंने बॉप्प द्वारा संस्थापित विज्ञान को व्यवस्थित किया। अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा कुर्टिउस की यह कृति इसलिये महत्त्वपूर्ण है कि स्थूल रूप में, इस में, तुलनात्मक भाषाशास्त्र की रूपरेखा उपलब्ध हो जाती है और भारोपीय भाषाशास्त्र की यह प्रथम पुस्तक है।

किन्तु यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि यद्यपि तुलनात्मक भाषाशास्त्रियों ने नवीन प्रकार के अध्ययन का सूत्रपात किया तथापि वैज्ञानिक दृष्टि से वे वास्तविक भाषाशास्त्र की स्थापना में सफल न हो सके। उनकी सबसे बड़ी त्रुटि यह थी कि भारोपीय भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के समय न तो वे अर्थ पर ध्यान देते थे और न उपलब्ध सामग्री के पारस्परिक सम्बन्ध की ओर ही उनका ध्यान था। उनकी प्रणाली कोरी तुलनात्मक थी और उसमें ऐतिहासिक दृष्टिकोण

का सर्वथा अभाव था। इसमें सन्देह नहीं कि प्राचीन भाषा के पुनर्निर्माण के लिये तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है किन्तु केवल तुलना ही पर्याप्त नही है। इन विद्वानों में एक त्रुटि यह भी थी कि वे भाषा के विकास को उसी रूप में लेते थे जिस रूप में कोई प्रकृतिवादी दो पौधों के विकास को लेता है। उदाहरणार्थ उस युग के प्रसिद्ध भाषाशास्त्री श्लाइख़र को लिया जा सकता है। श्लाइख़र की ऐतिहासिक प्रणाली में दृढ़ आस्था है और प्राग्भारोपीय के अध्ययन का उसका आग्रह भी ठीक है किन्तु यह विचित्र बात है कि वह नितान्त सहज भाव से यह स्वीकार कर लेता है कि ग्रीक के "ए" तथा "ओ" स्वरक्रम के दो ग्रेड हैं। इसे श्लाइख़र ने संस्कृत "अ" तथा "आ" के आधार पर माना है। उसने यह कल्पना कर ली है कि ठीक संस्कृत की भाँति ही ग्रीक में भी स्वर का विकास हुआ है। किन्तु यह बात तथ्य के विपरीत है। वास्तव में प्राग्भारोपीय स्वरों का ग्रीक तथा संस्कृत में दो विभिन्न प्रकारों से विकास हुआ है।

सच बात यह है कि तुलनात्मक प्रणाली ने अनेक भ्रान्त धारणाओं को जन्म दिया था जिनका भाषा सम्बन्धी तथ्यों से कोई सम्बन्ध न था। इन धारणाओं की पुष्टि के लिये उस युग में जो नवीन पारिभाषिक शब्द बनाये गये थे तथा भाषा सम्बन्धी तथ्यों की व्याख्या के लिये जो तर्क दिये गये थे वे आज नितान्त हास्यास्पद प्रतीत होते हैं। किन्तु भाषाशास्त्र के वे आरम्भिक दिन थे और किसी भी विज्ञान के आरम्भिक जीवन में इसप्रकार की त्रुटियाँ स्वाभाविक है।

सन् १८७० के आसपास तक विद्वान् लोग उन सिद्धान्तों का पता न लगा सके जिनसे भाषाएँ अनुशासित होती हैं। इसके बाद ही इस बात का अनुभव होने लगा कि भाषाओं की पारस्परिक समानता का अध्ययन केवल एक पक्ष है और इसके द्वारा केवल प्राचीनरूपों के पुनर्निर्माण में सहायता मिलती है।

यथार्थतः भाषा-अध्ययन के क्रम में तुलनात्मक अध्ययन का समारम्भ "रोमांस" एवं 'जर्मन' भाषाओं के अध्ययन से हुआ। डीत्स (Diez) ने सन् १८३६–३८ में 'रोमांस' भाषाओं का अध्ययन अपनी कृति "ग्रामॉटिक डेर रोमानिशेन स्प्राख़ेन" (Gramatik der romanischen sprachen) में किया था।

यह अध्ययन भाषाशास्त्र को उसके वास्तविक उद्देश्य के निकट लाने में सफल हुआ। सच बात तो यह है कि 'रोमांस' के विद्वानों को जो सुविधा प्राप्त थी वह अन्य भारतीय भाषाओं के पण्डितों को सुलभ न थी। इनका लैटिन से सीधा सम्पर्क एवं सम्बन्ध था। लैटिन रोमांस भाषाओं की जननी थी और इसमें प्राचीन ग्रंथों के रूप में इतनी प्रभूत मात्रा में सामग्री विद्यमान थी कि उसके आधार पर विविध

बोलियों के उद्गम और विकास का अध्ययन सरलता से किया जा सकता था। इसप्रकार इन विद्वानों को अनुमान के बजाय भाषा सम्बन्धी वह ठोस आधार मिल गया जिससे अनुसन्धान का मार्ग प्रशस्त हो गया। जर्मन पंडितों की भी ठीक स्थिति यही थी। यद्यपि प्राचीनभाषा से उनका सीधा सम्बन्ध न था तथापि पुराने ग्रंथों में उपलब्ध पुष्कल सामग्री के कारण, अपनी भाषाओं के उद्गम एवं विकास के अध्ययन के लिये उनका भी मार्ग खुल गया। जब जर्मन विद्वान् भाषा सम्बन्धी तथ्यों के निकट आये तो उन्होंने यह स्पष्टरूप में अनुभव किया कि भारोपीय के प्रथम अध्येताओं ने जिन निष्कर्षों की उपलब्धि की थी उनसे इनके निष्कर्ष भिन्न थे।

भाषाशास्त्र को सर्वप्रथम प्रोत्साहन अमरीकी विद्वान् ह्विट्ने से मिला। उसने सन् १८७५ ई० में अपने प्रसिद्ध ग्रंथ "लाइफ़ एण्ड ग्रोथ आव लैंग्वेज" की रचना की। इसके कुछ ही समय बाद नव्यवैय्याकरणों (जुंग ग्रामाटिकर= Junggrammatikar) ने एक नवीन स्कूल की स्थापना की जिसके सभी नेता प्रायः जर्मन थे। इनमें के० ब्रुगमान (K. Brugmann), एच० ओस्टाफ (H. Osthoff), डब्ल्यू०, ब्राउने (W. Braune), इ० सिवर्स (E. Sievers), एच० पॉल (H. Paul) तथा स्लाव भाषा के पण्डित लेस्कियन (Leskien) आदि के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। इन विद्वानों ने अपनी कृतियों में तुलनात्मक अध्ययन से उपलब्ध निष्कर्षों को ऐतिहासिक अध्ययन की पृष्ठभूमि में रखकर देखा और इसप्रकार से उपलब्ध तथ्यों का स्वाभाविक रूप में अध्ययन किया। उनके अध्ययन के परिणामस्वरूप यह स्पष्ट हो गया कि भाषा कोई ऐसा पौधा नही जो स्वतंत्ररूप से विकसित एव संवर्द्धित होता है, अपितु यह वह तत्त्व है जो विभिन्न भापा समूहों के सम्मिलन से प्रादुर्भूत होता है। इसके साथ ही इस युग के विद्वानों ने इस बात का स्पष्टरूप से अनुभव किया कि पुरातन एव तुलनात्मक भाषाशास्त्रियों के अनेक निष्कर्ष अत्यधिक भ्रान्तिपूर्ण थे। इसमें सन्देह नही कि नव्य-वैय्याकरणों ने भाषाशास्त्र के उत्थान में पर्याप्त योगदान दिया किन्तु अभी भी अनेक ऐसे मूल प्रश्न थे जिनका आगे चलकर समाधान हुआ।

१.२८ भाषा-अध्ययन के विकास की अन्तिम परिणति

१९ वी शताब्दि के भाषा वैज्ञानिकों ने भाषा-शास्त्रियों के अध्ययन को प्रशस्त किया। अमेरिका के प्रसिद्ध भाषाशास्त्री स्वर्गीय ब्लूमफील्ड, १९ वी शताब्दि के अन्तिम चरण में, भाषाशास्त्र की गति-विधि पर प्रकाश डालते हुए लिखते है—

"इस युग में एक ओर, ऐतिहासिक, तुलनात्मक तथा दूसरी ओर दार्शनिक विवरणात्मक भाषा सम्बन्धी विचारधारा के समन्वय से कतिपय ऐसे सिद्धान्त सामने आये जो १९ वीं शताब्दि के भारोपीय भाषाओं के अध्येताओं को उपलब्ध न हो सके थे। इन सिद्धान्तों के हरमन पाउल की कृति में दर्शन होते है। प्रायः भाषा-सम्बन्धी सभी ऐतिहासिक अध्ययनों का आधार दो या दो से अधिक विवरणात्मक सामग्री की तुलना होती है। इन अध्ययनों की शुद्धता बस्तुतः सामग्री पर निर्भर करती है।"

१९ वी शताब्दि के अन्तिम चरण के सबसे अधिक प्रतिभाशाली भाषाशास्त्री फर्डिनेण्ड डिसासे (१८७५ से १९१३) ने भाषा के गठन सम्बन्धी अध्ययन तथा विवरणात्मक वर्णन पर विशेष बल दिया। इसी समय ध्वनिग्राम (Phoneme) का अनुसन्धान हुआ जिससे भाषा के विश्लेषण का कार्य सरल हो गया। इसके अविष्कारकर्त्ता दो रूसी भाषाशास्त्री वॉडविन डि कुर्तने तथा उनके शिष्य कुज्वेस्की थे। प्राहा विचार-शैली (Prague School) के भाषाशास्त्री—त्रुबेस्काय ने अपने नवीन अनुसन्धानों से भाषाशास्त्र को प्रगति दी एवं रोमन याकोब्सन अपने अध्ययन से आज भी भाषाशास्त्र के अनुसंधान को नवीन गति दे रहे हैं।

अमेरिका तो आज ध्वनिशास्त्र तथा गठन सम्बन्धी एवं विवरणात्मक भाषाशास्त्र के अध्ययन का विराट केन्द्र हो रहा है। यहाँ एक ओर तो बाइबिल के अनुवाद के लिए मिशनरियों ने ध्वनि एवं भाषाशास्त्र के अध्ययन-केन्द्र स्थापित कर रखे है तो दूसरी ओर यहाँ के प्रत्येक विश्वविद्यालय में भाषाशास्त्र के गम्भीर अध्ययन का कार्यक्रम चल रहा है। अमेरिका की पिछली पीढ़ी के भाषाशास्त्रियों में फ्रैन्ज़बोआ, लिओनार्ड ब्लूमफील्ड, एडवर्ड सापियर तथा बेंजामिन ली ह्वर्फ़ प्रसिद्ध है।

वर्त्तमान पीढ़ी के भाषाशास्त्रियों में पेन्सिलवानिया विश्वविद्यालय के प्रो० जैलिग हैरिस तथा केलिफोर्निया विश्वविद्यालय की कुमारी मेरी हास का स्थान बहुत ऊँचा है। मिशनरी भाषाशास्त्रियों में पाइक तथा नाइडा प्रसिद्ध हैं।

प्राहा (Prague) तथा अमेरिका के अतिरिक्त डेनमार्क में भी भाषाशास्त्र के अध्ययन का एक केन्द्र है जो 'ग्लॉस-मैटिक' विचारधारा के नाम से प्रसिद्ध है। 'ग्लॉस' ग्रीक भाषा का शब्द है जिसका अर्थ भाषा होता है। इस विचारधारा के भाषाशास्त्रियों में लुई हेमसेव, एच० जे० उदाल, एवं कुमारी जोर्गेन्सन मुख्य हैं।

सम्प्रति अमेरिका के कई विश्वविद्यालयों में भाषाशास्त्र के अध्ययन का कार्य

अत्यधिक तीव्र गति से चल रहा है, यद्यपि मुख्यरूप से इस अध्ययन का आधार विवरणात्मक भाषाशास्त्र (Descriptive Linguistics) है ।

परिशिष्ट

१.२९ भाषा और वाक्

भाषाशास्त्र के अविकल एवं मूर्त तत्त्व क्या हैं, यह प्रश्न किंचित जटिल एवं विचारणीय है। अन्य विज्ञान मूर्त्त अथवा ठोस वस्तुओं के सम्बन्ध में विचार करते है किन्तु भाषाशास्त्र के सम्बन्ध में यह बात नही है। उदाहरण के लिए "गाय्" को लिया जा सकता है। साधारण व्यक्ति के लिए "गाय्" एक मूर्त्त भाषाशास्त्रीय वस्तु है किन्तु तनिक ध्यान से विचार करने से इसका विश्लेषण तीन-चार रूपों में किया जा सकता हैं। ध्वनि की दृष्टि से हमें इसे ग्–आ–य् की समष्टि, विचार की दृष्टि से इसे एक पशु विशेष एवं व्युत्पत्ति की दृष्टि से हम इसे संस्कृत "गो" से प्रसूत रूप मान सकते है। यहाँ यह बात स्पष्टरूप से हृदयंगम करने योग्य है कि मूर्त्त रूप दृष्टिकोण को जन्म नहीं देता, अपितु दृष्टिकोण मूर्त्त रूप का उत्पादन करता है। 'गाय्' के सम्बन्ध में ऊपर के तीनों दृष्टिकोणों में से प्रथम स्थान किसका है, यह कहना नितान्त कठिन है।

यदि थोड़ी देर के लिए हम इस दृष्टिकोण के पचड़े को छोड़ भी दें तो भी हमें यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि भाषाशास्त्रीय वस्तु के दो ऐसे पारस्परिक सम्बन्धित पक्ष है जिनमें अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है।

(१) प्रत्येक उच्चरित ध्वनि अथवा अक्षर का चित्रांकन हमारे कान में होता है किन्तु उच्चारणोपयोगी अवयवों के अतिरिक्त ध्वनियों का अस्तित्व कही अन्यत्र नही है। उदाहरणार्थ हम 'प्' को ले सकते हैं। "प्" ध्वनि जब उच्चरित होती है तो इसका चित्रांकन हमारे कान में होता है किन्तु इसका उच्चारण स्थान हमारे दोनों ओठ हैं। हम 'वाक्' (स्पीच) को न तो ध्वनि मात्र कह सकते हैं और न ध्वनि को उसके उच्चारण स्थान से पृथक् कर सकते है। इसीप्रकार हम उच्चारणोपयोगी अवयवों के संचालन की व्याख्या श्रवणेन्द्रिय द्वारा ग्राह्य चित्रों के बिना नही कर सकते।

(२) किन्तु कल्पना किया कि ध्वनि एक साधारण वस्तु है : तो क्या इसे वाक् (स्पीच) की सज्ञा दी जा सकती है? नही, ध्वनि केवल विचारों का उपकरण मात्र है। इसकी स्वतः कोई सत्ता नही है। इस स्थान पर एक नवीन एवं दुर्दान्त सम्बन्ध प्रादुर्भूत हो जाता है : ध्वनि वास्तव में एक जटिल

श्रुतिविषयक वाग्जात इकाई है जो विचार युक्त होकर एक जटिल शारीरिक मनोवैज्ञानिक इकाई की सृष्टि करती है; किन्तु यह भी उसका पूर्ण चित्र नहीं है।

(३) वाक् (स्पीच) के व्यष्टि एवं समष्टि पक्ष भी हैं और इन दोनों का भी अन्योन्याश्रय संबंध है, क्योंकि एक के अभाव में दूसरे के संबंध में विचार करना असम्भव है। इसके अतिरिक्त :

(४) वाक् (स्पीच) एक स्थायी प्रणाली है, किन्तु इसके साथ ही इसमें विकासोन्मुखता भी है। यह अतीत से आगत वस्तु है, किन्तु वर्त्तमान के प्रत्येक क्षण में भी इसका अस्तित्व है। साधारणतया प्रणाली और उसके इतिहास तथा जो वर्त्तमान में है और जो अतीत में था, उसमें विभेद करना बहुत सहज प्रतीत होता है। किन्तु ये दोनों एक दूसरे से इस रूप में संपृक्त हैं कि इन्हें पृथक करना नितांत कठिन है। क्या आरम्भिक अवस्था के भाषीय तत्वों के अध्ययन से इस पर नवीन प्रकाश पड़ने की आशा है ? क्या इसप्रकार के अध्ययन का सूत्रपात बालकों की भाषा से करना उपयुक्त है ? ईन सभी प्रश्नों का उत्तर नकारात्मक है। बात यह है कि इस बात की कल्पना ही भ्रमपूर्ण है कि बालक के वाक् की जो विशेषता है वह उसकी स्थायी विशेषता से भिन्न है।

चाहे जिस ओर से विचार किया जाय समस्या का ठीक हल नजर नहीं आता। चारों ओर द्विविधा का ही सामना करना पड़ता है। जब हम समस्या के एक पक्ष पर ध्यान देते हैं तो उसका दूसरा पक्ष छूट जाता है किन्तु जब हम वाक् के सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार करते हैं तो भाषाशास्त्र के तत्व अव्यवस्थित तथा असंबद्ध वस्तुओं के ढेर प्रतीत होते हैं। दोनों प्रकार से विचार करने से, भाषाशास्त्र, मनोविज्ञान, नृविज्ञान, व्याकरण एवं भाषाविज्ञान (फिलॉलोजी) में, पारस्परिक भेद होने पर भी, इनका अन्तर स्पष्ट करना कठिन हो जाता हैं क्योंकि ये सभी विज्ञान वाक् को अपना तत्व मानते हैं।

ऊपर की कठिनाइयों से बचने का केवल एक मार्ग है और वह यह है कि प्रारम्भ से ही हम भाषा (लैंग्वेज) पर अपना ध्यान केन्द्रित करें और उसका वाक् की अन्य अभिव्यक्तियों के प्रतिमान रूप में उपयोग करें। ऊपर की सभी द्विविधाओं में भाषा ही एक ऐसी वस्तु है जिसके विषय में स्वतंत्र रीति से विचार किया जा सकता है तथा जिसकी परिभाषा भी दी जा सकती है।

अब प्रश्न उठता है कि भाषा (लैंग्वेज) है क्या ? भाषा को भ्रमवश मानव-वाक् (ह्यूमन स्पीच) नहीं समझ लेना चाहिये जिसका यह निश्चित रूप से एक अंश है और यह अंश भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। भाषा का जन्म वस्तुतः वाक् की शक्ति के समाजीकरण से हुआ है। यह उन आवश्यक मान्यताओं का समूह है जिसे समाज ने इसलिए अपना लिया है ताकि उसके भीतर का प्रत्येक व्यक्ति वाक् शक्ति का उपयोग कर सके। स्थूलरूप में वाक् का क्षेत्र व्यापक है। इसमें वैविध्य है और एक साथ ही भौतिक, शरीर एवं मनोविज्ञान से यह संपृक्त है। इसका एक ओर व्यक्ति से सम्बन्ध है तो दूसरी ओर यह समाज से भी संबद्ध है। इसे किसी विशेष इकाई में वर्गीकृत करना नितान्त दुरूह है।

इसके विपरीत भाषा एक स्वतः पूर्ण इकाई है। भाषा को वाक् से पृथक करके हम एक प्रकार की क्रमवद्धता अथवा व्यवस्था उत्पन्न करते हैं।

कतिपय विद्वान् भाषा एवं वाक् को समान महत्व देना उचित नहीं समझते। इनके मतानुसार चूँकि वाक् नैसर्गिक वस्तु है किन्तु भाषा अर्जित है और उसका आधार समाज की मान्यताएँ हैं। अतएव वाक् को ही प्रथम एवं मुख्य स्थान प्रदान करना चाहिये।

ऊपर की आपत्ति का सहज में ही समाधान किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम यह उल्लेखनीय है कि अभी तक यह बात सिद्ध नहीं है कि जो वाक् हम बोलते हैं वह पूर्णतया नैसर्गिक है। इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य के पैर पृथ्वी पर विचरण करने के लिए बनाये गए थे। किन्तु इसी रूप में मानव वागेन्द्रिय की रचना नहीं हुई थी। इस सम्बन्ध में भाषाशास्त्री भी एक मत नहीं हैं। उदाहरणार्थ प्रसिद्ध अमरीकी भाषाशास्त्री ह्विटने अन्य सामाजिक संस्थानों की भाँति भाषा को भी एक संस्थान मानता है। उसके अनुसार यह विशुद्ध संयोग की बात है कि सुविधा का ध्यान रखकर मनुष्य भाषा के लिए अपने वाग्यंत्रों का उपयोग करता है। मनुष्य के लिए यह सर्वथा सम्भव था कि वह संकेतों से ही अपना काम चलाता और श्रोत्रग्राह्य प्रतीकों के बदले नेत्रग्राह्य प्रतीकों का उपयोग करता। इसमें सन्देह नहीं कि उसके विचार अत्यधिक रूढ़िबद्ध हैं। सच बात तो यह है कि सभी बातों में भाषा अन्य संस्थानों की तरह नहीं हैं। इसके अतिरिक्त जब ह्विटने यह कहता है कि यह केवल संयोग ही था कि मनुष्य भाषा के लिए वागेन्द्रियों का प्रयोग करने लगा तो वह अतिरंजना के दूसरे छोर पर पहुँच जाता है। वास्तव में वागेन्द्रियों को थोड़ी बहुत मात्रा में, प्रकृति ने ऐसा करने को बाध्य

किया। किन्तु जहाँ तक इस प्रश्न का सैद्धान्तिक पक्ष है, ह्विटने की बात सही है। भाषा के प्रतीक के चाहे जो भी रूप हों, है वह व्यवहार सिद्ध वस्तु। इस भूमिका में उच्चारणोपयोगी अवयवों का स्थान गौण है।

ऊपर वाक् एवं भाषा का सम्बन्ध और अन्तर स्पष्ट किया गया है। सच बात तो यह है कि भाषा के द्वारा ही वाक् में एकरूपता आती है।

१.३० वाक् में भाषा का स्थान

यह अन्यत्र कहा जा चुका है कि भाषा, वाक् का एक महत्वपूर्ण अंश मात्र है। इसके लिए यह आवश्यक है कि भाषा को वाक् से पृथक करके विचार किया जाय। वाक् (बोलने) का कार्य एक चक्र में चलता है। इस चक्र को चलाने के लिये कम से कम दो व्यक्तियों की उपस्थिति आवश्यक है। कल्पना किया कि राम तथा श्याम दो व्यक्ति एक दूसरे से बातें कर रहे हैं और बात का सिलसिला राम आरम्भ करता है :
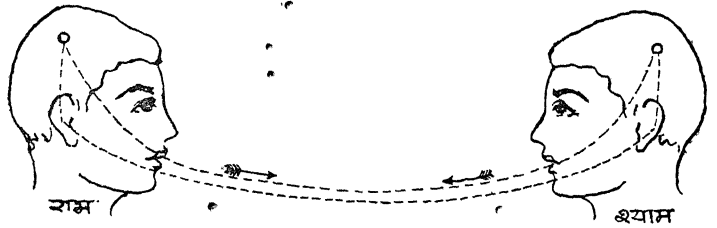
राम के मस्तिष्क में किसी वस्तु का प्रत्यय (Concept) है। वार्तालाप आरम्भ करते ही वह राम के मस्तिष्क में आ जाता है। यह विशुद्ध मनोवैज्ञानिक क्रिया है। तदुपरान्त शारीरिक क्रिया का आरम्भ होता है और राम का मस्तिष्क इस प्रत्यय को उच्चारणोपयोगी अवयवों को उच्चरित करने के लिए बाध्य करता है। राम इसका उच्चारण करता है और तब ध्वनि-लहर के रूप में यह प्रत्यय श्याम के कर्णकुहरों में पहुँचता है। यह विशुद्ध शारीरिक क्रिया है। इसके उपरान्त यह चक्र श्याम के मस्तिष्क में चलता है किन्तु उसका क्रम बिल्कुल विपरीत हो जाता है अर्थात् प्रत्यय श्याम के कर्णकुहरों से उसके मस्तिष्क में पहुँचकर मनोवैज्ञानिक क्रिया के द्वारा उसे प्रकट करता है। इसके बाद यदि श्याम कुछ कहता है तो नई बात का नया चक्र आरम्भ होता है और यह पहले की भाँति ही चलता रहता है। इसे निम्नलिखित चित्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है:—
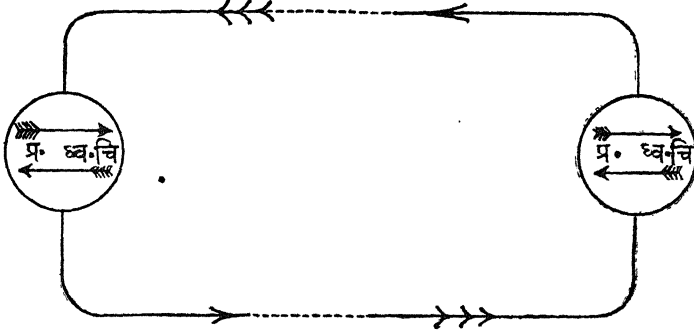
ऊपर का विश्लेषण पूर्ण नहीं कहा जा सकता। यदि हम चाहें तो इसमें उपलब्ध श्रुति विषयक विकार को पृथक कर सकते हैं और इसीप्रकार की इससे सम्बन्धित अन्य क्रियाओं का भी अध्ययन कर सकते हैं। ऊपर केवल मूल तत्व के सम्बन्ध में ही कुछ कहा गया है किन्तु चित्र के देखने से भौतिक (ध्वनि-लहरों), शारीरिक (ध्वनि निःसारण तथा आकर्णन) तथा मनोवैज्ञानिक (शब्द-चित्रों एवं प्रत्यय) भागों का भेद स्पष्ट हो जाता है। यहाँ पर यह बात न भूलनी चाहिये कि शब्द-चित्र शब्द से पृथक वस्तु है और वह उतना ही मनोवैज्ञानिक है जितना वस्तु का प्रत्यय है।

ऊपर जिस चक्र की रूपरेखा उपस्थित की गई है उसे और आगे भी विभक्त किया जा सकता है:—

(क) उसका वाह्य भाग जिसके अन्तर्गत उस ध्वनि की कम्पन आती है, जो मुँह से कान तक लहर के रूप में जाती है। इसीप्रकार इसका आभ्यंतर भाग भी है जिसके अन्तर्गत अन्य प्रक्रियायें आती हैं।

(ख) **मनोवैज्ञानिक एवं अमनोवैज्ञानिक अंश**—यहाँ अमनोवैज्ञानिक अंश के अन्तर्गत वागेन्द्रिय-जात ध्वनियों का उत्पादन एवं वे भौतिक तथ्य आयेंगे जो व्यक्तियों से पृथक हैं।

(ग) सक्रिय एवं निष्क्रिय भाग—भाषक के मस्तिष्क के संयवक केन्द्र से श्रोता के कर्णकुहर तक जो भी तत्व जाता है वह सक्रिय एवं श्रोता के कर्ण से भाषक के संयवक केन्द्र तक जो तत्व जाता है वह निष्क्रिय है।

प्र० = प्रत्यय; ध्व० चि० = ध्वनि चित्र .

(घ) अंत में चक्र के मनोवैज्ञानिक भाग में जो कुछ सक्रिय है वह विधायक (ध्व० प्र०) है और जो कुछ निष्क्रिय है वह ग्रहणशील (प्र० ध्व०) है ।

भाषा को एक प्रणाली के रूप में संगठित करने में मनुष्य की संयवक एवं संयोगक शक्तियों का भी बहुत बड़ा हाथ है । यह दोनों शक्तियाँ किस रूप में कार्य करती हैं, इसे जानने के लिए व्यक्ति के कार्य को छोड़कर समाज में प्रविष्ट करने की आवश्यकता है । बात यह है कि किसी एक बोली के बोलने वाले सभी व्यक्ति किसी वस्तु के नाम का एक ही प्रकार से उच्चारण नहीं करते किन्तु हम यह कह सकते हैं कि वे लगभग एक ही प्रकार से उच्चारण करते हैं । इसप्रकार व्यावहारिक दृष्टि से उच्चारण का एक औसत मान प्रतिष्ठापित हो जाता है और इसके परिणामस्वरूप वस्तु का अवबोध प्रत्यय के रूप में होने लगता है ।

भाषा का समाजीकरण किस प्रकार होता है ? चक्र का कौन भाग इसमें सहायक होता है, क्योंकि सभी भाग समान रूप से सहायक नहीं होते । इसके अमनोवैज्ञानिक भाग का तत्काल परित्याग किया जा सकता है । जब हम लोगों को एक ऐसी भाषा बोलते हुए सुनते हैं जिसे हम नहीं जानते तो हम केवल ध्वनि मात्र ही सुनते हैं और इसप्रकार उस भाषा के समाज से बाहर रहते हैं ।

चक्र का मनोवैज्ञानिक भाग भी पूर्णरूप से क्रियाशील नहीं रहता । कार्य का कर्ता वस्तुतः समाज नहीं अपितु व्यक्ति होता है और सदैव यह व्यक्ति ही पूर्ण का अधिकारी होता है । इस पक्ष को भाषण (Speaking) की संज्ञा दी जा सकती है । ग्रहण तथा संयोजन शक्तियों के द्वारा प्रत्यय अथवा वस्तु का चित्रात्मक रूप बोलने वालों के मस्तिष्क में अंकित हो जाता है । यह चित्र किसी एक भाषा के बोलने वाले सभी व्यक्तियों के लिये प्रायः समान होता है । इस प्रकार भाषा समाज-जात वस्तु है । इस समाज-जात वस्तु को किस रूप में रखा जाय ताकि भाषा अन्य वस्तुओं से पृथक रहे । किसी भाषा के बोलने वाले सभी व्यक्तियों के मस्तिक में जितने शब्द-चित्र एकत्र रहते हैं उन सब को हम लें तो हम सहज में उस सामाजिक बंधन को उपलब्ध कर सकते हैं जो भाषा का निर्माण करता है । भाषा, वास्तव में, इसके निरन्तर बोलने वाले समाज विशेष के द्वारा निर्मित एक भंडार है । उस समाज के प्रत्येक प्राणी के मस्तिष्क में, व्याकरणीय प्रणाली के रूप में इसका अस्तित्व रहता है । सच तो यह है कि उस भाषा के किसी एक बोलने वाले में इसके पूर्णरूप का अस्तित्व नहीं मिलता । पूर्णरूप से, समग्र समाज में ही, इसके रूप का दर्शन किया जा सकता है ।

भाषा को भाषण (Speaking) से पृथक करते हुए एक ओर हम सामा-

जिक वस्तु को व्यक्तिगत वस्तु से पृथक करते हैं तो दूसरी ओर आवश्यक वस्तु को सहायक एवं यत्किंचित आकस्मिक वस्तु से पृथक करते हैं।

१.३१ भाषा की विशेषताएँ

संक्षेप में भाषा की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

(१) वाक् के विविध तत्वों के भीतर भाषा एक पूर्ण पारिभाषिक वस्तु है। भाषा-चक्र में जहाँ श्रोत्र-ग्राह्य चित्र, प्रत्यय (Cocept) बन जाते हैं वहाँ इसका रूप सीमित हो जाता है। यह वाक् का समाजीकरण है तथा व्यष्टि से पृथक वस्तु है। किसी व्यक्ति में न तो इसे उत्पन्न और न इसे परिवर्तित करने की क्षमता है। इसका अस्तित्व इसलिये है कि एक समाज के सभी लोगों ने इसे मान्यता प्रदान की है। किसी समाज के प्रत्येक व्यक्ति को इसे आवश्यक रूप से अर्जित करना पड़ता है। बालक इसे शनैः शनैः सीखता है। यह ऐसी विशिष्ट वस्तु है कि किसी व्यक्ति की भाषण शक्ति के नष्ट हो जाने पर भी यदि वह उच्चरित ध्वनियों को समझ लेता है तो इसे अपने अधिकार में रख सकता है।

(२) भाषा, भाषण से भिन्न ऐसी वस्तु है जिसका अलग अध्ययन किया जा सकता है। यद्यपि प्राचीनकाल की मृतक भाषाएँ बोली नहीं जाती तथापि उनके भाषाशास्त्रीय तत्वों को सरलता से आत्मसात किया जा सकता है। वाक् के अन्य तत्वों को छोड़ा भी जा सकता है। वास्तव में इन तत्वों को पृथक करके ही भाषा-शास्त्र के भवन का निर्माण सम्भव है।

(३) जहाँ वाक् में विविधता है वहाँ भाषा में समरूपता है। भाषा प्रतीक की वह प्रणाली है जिसमें अर्थ एवं ध्वनिचित्रों का आवश्यक रूप से संयोग होता है तथा जिसमें प्रतीक के दोनों भाग मनोवैज्ञानिक होते हैं।

(४) भाषा भी भाषण की भाँति ही ठोस वस्तु है। यही कारण है कि इसका अध्ययन सम्भव है। भाषीय प्रतीक यद्यपि मूलतः मनोवैज्ञानिक हैं तथापि वे भावात्मक नहीं हैं। समाज द्वारा स्वीकृत भाषा के अंगीभूत सहचर वास्तविक वस्तु हैं और मस्तिष्क में उनका अस्तित्व वर्तमान रहता है। इसके अतिरिक्त भाषीय प्रतीक मूर्त्त होते हैं और परम्परागत लिखित प्रतीकों में उन्हें प्रत्यक्ष किया जा सकता है; किन्तु इसके विपरीत भाषण का पूर्ण चित्र उतारना असम्भव है। छोटे से छोटे शब्द के उच्चारण में भी उच्चारणोपयोगी अवयवों को अनन्त बार संचालित करना पड़ता है और इन्हें मूर्त्तरूप देना नितान्त कठिन है। इसके विपरीत, भाषा में, केवल ध्वनि-चित्र होते हैं, जिन्हें निश्चित चाक्षुष-चित्र में प्रदर्शित किया जा सकता है। भाषण के समय के ध्वनि-चित्रों को प्राप्त करने के लिये हमें अपने

उच्चारणोपयोगी अवयवों को जो अनेक बार संचालित करना पड़ता है, यदि उन्हें अलग कर दें अथवा छोड़ दें तो हमें ध्वनि-चित्र के रूप में एक सीमित संख्या में कतिपय ऐसे तत्व मिलेंगे जिन्हें हम ध्वनिग्राम (phoneme) की संज्ञा दे सकते हैं। इन ध्वनिग्रामों के लिये ही, प्रत्येक भाषा में, लिपि के रूप में ध्वनि-प्रतीकों का निर्माण किया जाता है। इन प्रतीकों के द्वारा ही, इस भाषा के व्याकरण एवं कोशों का निर्माण किया जाता है। भाषा वस्तुतः ध्वनि-चित्रों का भण्डार है और लेखन (लिपि) उन चित्रों का ठोस रूप है।

१.३२ भाषा तथा भाषण का भाषाशास्त्र

वाक् के अन्तर्गत भाषाविज्ञान (सायंस आव लैंग्वेज) की स्थापना करते हुए पिछले पृष्ठों में भाषाशास्त्र की पूर्ण रूपरेखा उपस्थित की गई है। वाक् के सभी तत्व जिसमें भाषण भी सम्मिलित है, इसी विज्ञान के अन्तर्गत आते हैं और इसी से भाषाशास्त्र भी इसी में समाहित हो जाता है। यहाँ उदाहरणार्थ, भाषण के लिये जो आवश्यक ध्वनि उत्पन्न की जाती है उसके सम्बन्ध में विचार किया जा सकता है। इस प्रक्रिया में भाषा से वागेन्द्रियाँ उतनी ही पृथक हैं जितनी मोर्सकोड में, बिजली के साधन, कोड से अलग होते हैं। दूसरे शब्दों में शब्दोचार (जिसके द्वारा ध्वनि-चित्र बनते है) किसी प्रकार प्रणाली को प्रभावित नही करता। हम भाषा की तुलना (संगीत की) समस्वरता से कर सकते हैं। समस्वरता गायक के गाने की विधि से सर्वथा पृथक वस्तु है। गाने के समय गायक समस्वरता उत्पन्न करने में जो भूलें करता है, उसका समस्वरता से कोई संबंध नहीं है।

शब्दोच्चार एवं भाषा दो पृथक तत्त्व है। इसके विरुद्ध ध्वन्यात्मक परिवर्तन की क्रिया की ओर ध्यान आकर्षित किया जा सकता है और यह प्रश्न उपस्थित किया जा सकता है कि क्या इन परिवर्तनों से पृथक भी कहीं भाषा का अस्तित्व है ? इस प्रश्न का सीधा उत्तर है, हाँ। यह सच है कि ध्वनि-परिवर्तन भाषा के भविष्य को प्रभावित करता है किन्तु यह परिवर्तन केवल शब्दरूप में होता है। ध्वनि-परिवर्तन जब प्रतीक की प्रणाली के रूप में भाषा को प्रभावित करता है तब वह अप्रत्यक्ष रूप में परिवर्तन की व्याख्या द्वारा ही करता है। इसमें तात्त्विक दृष्टि से ध्वनि सम्बन्धी कोई बात नही होती। ध्वन्यात्मक परिवर्तन के कारणों को निश्चित करना दिलचस्प हो सकता है। और इस सम्बन्ध में ध्वनियों के अध्ययन से सहायता मिल सकती है; किन्तु इनमें से कोई भी क्रिया आवश्यक नहीं है। भाषाविज्ञान में जो परमावश्यक है वह यह

हैं कि हम ध्वनियों के रूपान्तरण का निरीक्षण तथा उनके प्रभावों का परिकलन करे। ऊपर शब्दोच्चार के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है वह भाषण पर भी लागू होता है। भाषक के कार्यकलापों का अध्ययन अन्य विज्ञानों के द्वारा भी होना चाहिए। इन कार्यकलापों में ऐसे अनेक तत्त्व हैं जो भाषाशास्त्र की सीमा के बाहर हैं। भाषाशस्त्र तो केवल भाषा से सम्बन्धित तत्त्वों का ही अध्ययन करता है।

वस्तुतः वाक् के अध्ययन के दो भाग है। इसके प्रथम भाग में भाषा आती है जो विशुद्ध सामाजिक वस्तु है तथा जो व्यक्ति से स्वतंत्र है। यह भाग ही मुख्य है और यह पूर्णतया मनोवैज्ञानिक है। इसका दूसरा भाग गौण है और इसके अन्तर्गत वाक् का व्यक्तिगत पक्ष आता है। भाषण एवं शब्दोचार इस दूसरे भाग के ही अंश हैं। यह भाग मनोदैहिक (Psychophysical) है। निस्सन्देह इन दोनों भागों में घनिष्ट सम्बन्ध है और एक भाग दूसरे भाग पर आश्रित है। यदि भाषण को बोधगम्य तथा प्रभावशाली बनाना है तो भाषा परमावश्यक है, किन्तु भाषा की प्रतिष्ठापना के लिए भाषण आवश्यक है और ऐतिहासिक दृष्टि से भाषा के पूर्व भाषण ही आता है। कोई भी भाषक तब तक किसी शब्द-चित्र एवं उसके भाव में सामञ्जस्य कैसे उपस्थित कर सकेगा जब तक वह भाषण में उसे व्यवहार करते देख न ले? इसके अतिरिक्त हम लोग दूसरों को बोलते हुऐ सुनकर ही अपनी मातृभाषा सीखते हैं। अनन्त अनुभवों के बाद ही यह भाषा हमारे मस्तिष्क में संचित हो जाती है। सच तो यह है कि भाषण से ही भाषा विकसित होती है। दूसरों को बोलते हुए सुनकर हमारे मस्तिष्क में जो छाप पड़ती जाती है वह हमारी भाषीय वृत्तियों को बदल देती है। तब भाषा एवं भाषण में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। भाषा वस्तुतः भाषण का यंत्र एवं उसकी उपज दोनों है। किन्तु इस अन्योन्याश्रय सम्बन्ध के बावजूद भी हैं दोनों, सर्वथा दो पृथक वस्तुएँ। कोई भी भाषा उसके बोलनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क में धारणाओं के रूप में उसीप्रकार् संचित रहती है जिस-प्रकार उस भाषा के किसी कोश विशेष की प्रतियाँ उस भाषा के बोलने वाले प्रत्येक व्यक्ति के पास हों। भाषा का अस्तित्व प्रत्येक व्यक्ति में रहता है किन्तु फिर भी यह सबके लिए समान होती है। संचित करने वाले की इच्छा का प्रभाव इस पर नही पड़ता। इसके अस्तित्व को निम्नलिखित सूत्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है :—

१ + १ + १ + १.... = १

(सामुदायिक आधार पर)

इस संदर्भ में भाषण का क्या रूप है ? वास्तव में लोग जो कुछ बोलते हैं उसका यह समवेत रूप है। इसमें निम्नलिखित दो तत्त्व होते हैं--

(क) व्यक्तिगत समिश्रण जो भाषकों की इच्छा पर निर्भर करता है।

(ख) ऐच्छिक शब्दोच्चार के कार्य जो समिश्रण के लिये आवश्यक होते हैं।

इसप्रकार विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि भाषण सामुदायिक वस्तु नहीं है। इसकी अभिव्यक्ति व्यक्तिगत एवं क्षणिक होती है। भाषण वास्तव में इस कार्य का योगफल मात्र है और इसे निम्नलिखित सूत्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

(१' + १" + १''' + १------)

ऊपर जिन कारणों का उल्लेख किया गया है उनसे यह स्पष्ट हो जायेगा कि भाषा तथा भाषण के संबंध में एक ही दृष्टि से विचार करना उचित न होगा। समरूपता के अभाव में, समग्ररूप में, भाषण का अध्ययन असम्भव है। जब हम वाक् (भाषण) के सम्बन्ध में कोई सिद्धान्त निर्धारित करना चाहते हैं तो यह पहली कठिनाई हमारे सामने आती है। हमें भाषा और वाक् के अध्ययन के लिए दो विभिन्न मार्गों को अपनाना पड़ेगा। यदि दोनों के साथ भाषाशास्त्र शब्द का प्रयोग आवश्यक है तो, हमें 'भाषा का भाषाशास्त्र' तथा 'वाक् अथवा भाषण का भाषाशास्त्र' कहना ही उपयुक्त है। किन्तु इन दोनों के अन्तर को स्पष्ट समझ लेना चाहिए। यहाँ यह भी स्मरण रखने योग्य है कि "भाषा का भाषाशास्त्र" ही मुख्य है और जब हम साधारणरूप में "भाषाशास्त्र' शब्द का प्रयोग करते हैं तो हमारा तात्पर्य भाषा के भाषाशास्त्र से ही होता है।*

*डिसासे वाक् (स्पीच) और भाषा (लैंग्वेज) में स्पष्ट अन्तर मानता है। उसके मतानुसार वाक् व्यक्तिगत भाषण से सम्बंधित है और भाषा सामाजिक वस्तु है। इसप्रकार वाक् प्रकृत वस्तु है और भाषा समाज द्वारा अर्जित एवं मान्य वस्तु है। वाक् सार्थक भी हो सकता है और निरर्थक भी ; उसका अपना गठन भी हो सकता और नहीं भी ; किन्तु भाषा सदैव सार्थक ध्वनियों की क्रमबद्ध प्रणाली ही होती है। इतना अन्तर होते हुए भी वाक् तथा भाषा में काफी सम्बन्ध है। वाक् आधार है और भाषा विभिन्न वाकों की क्रमबद्ध उपज है।

१.३३ भाषाशास्त्र का विषय, विस्तार तथा अन्य शास्त्रों से उसका सम्बन्ध

भाषाशास्त्र का विषय मनुष्य द्वारा व्यवहृत सभी प्रकार की भाषाओं का अध्ययन है, चाहे वह वन्य अथवा सुसंस्कृत जाति की भाषा हो अथवा वह प्राचीन "क्लासिकल' या पतनोन्मुख युग की भाषा हो। भाषाशास्त्र के अध्ययन के लिये केवल शुद्ध एवं साहित्यिक भाषा का ही महत्व नहीं है, किन्तु मानवकंठ से निसृत अन्य प्रकार की सार्थक ध्वनियाँ भी उसके लिये उतनी ही मत्हवपूर्ण हैं। इतना ही नहीं, प्राचीन हस्तलिखित-ग्रंथ, उत्कीर्ण-शिलालेखों तथा कागजपत्रों में सुरक्षित भाषा भी उसके अध्ययन का विषय है। स्थूलरूप में भाषा का विस्तार इसप्रकार है:—

(क) सभी ज्ञात भाषाओं का वर्णनात्मक एवं ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत करना। इसके अन्तर्गत विभिन्न परिवारों की मूल एवं पुर्ननिमित भाषा का अध्ययन भी आ जाता है।

(ख) उन क्रियाओं तथा प्रतिक्रियाओं का अन्वेषण करना जो स्थायी एवं सार्वभौम रूप से सभी भाषाओं को प्रभावित करती हैं और इनके आधार पर ऐसे नियमों एवं सिद्धान्तों का निर्माण करना जिनके द्वारा भाषा सम्बन्धी ऐतिहासिक तथा अन्यप्रकार के तत्त्वों की सहज में व्याख्या की जा सके।

(ग) अपनी सीमा को निर्धारित करना तथा अपनी परिभाषा देना।

भाषाशास्त्र का अन्य विज्ञानों से घनिष्ट सम्पर्क एवं सम्बन्ध है, क्योंकि कभी वह इन विज्ञानों को तथ्य प्रदान करता है और कभी इनसे वह स्वयं तथ्य ग्रहण करता है। इन विज्ञानों तथा भाषाशास्त्र के बीच जो पार्थक्य की सूक्ष्म रेखा है उसका स्पष्टीकरण भी सदैव सम्भव नहीं है। उदाहरणार्थ भाषाशास्त्र तथा नृ-वंश-विज्ञान और प्राग्-इतिहास में जो अन्तर है उसे सावधानी से समझ लेना चाहिये। नृ-वंश-विज्ञान तथा प्राग्-इतिहास में भाषा का प्रयोग केवल प्रमाण रूप में होता है। भाषाशास्त्र तथा नृ-विज्ञान का पारस्परिक सम्बन्ध भी स्पष्टतया जान लेना चाहिए। नृ-विज्ञान वस्तुतः मानव का अध्ययन केवल नस्ल तथा जाति के दृष्टिकोण से करता है। किन्तु भाषा समाज की वस्तु है। तो क्या भाषाशास्त्र का समाजशास्त्र से तादात्म्य मानना समीचीन होगा? भाषाशास्त्र तथा सामाजिक मनोविज्ञान में क्या सम्बन्ध है? मूलतः भाषा सम्बन्धी सभी वस्तुएँ मनोवैज्ञानिक हैं फिर भी भाषाशास्त्र एवं मनोविज्ञान, ये ज्ञान की दो विभिन्न शाखायें हैं।

भाषाशास्त्र तथा शरीरविज्ञान का अन्तर स्पष्ट है। इनका पारस्परिक सम्बन्ध इस अर्थ में एक पक्षीय है कि भाषाशास्त्र के अध्ययन में शरीरविज्ञान तो सहायता प्रदान करता है किन्तु इसके बदले भाषाशास्त्र उसे कुछ अनुदान नहीं देता।

भाषाशास्त्र तथा भाषाविज्ञान के सम्बन्ध में अन्यत्र लिखा जा चुका है। उसे यहाँ दुहराना पिष्टपेषण मात्र होगा। अब अन्त में यह प्रश्न उठता है कि भाषाशास्त्र का उपयोग क्या है? इस सम्बन्ध में लोगों की धारणा स्पष्ट नहीं है। यह तो स्पष्ट ही है कि जो लोग 'टेक्स्ट' सम्बन्धी कार्य करते हैं उनके लिये भाषाशास्त्र का ज्ञान अत्यन्त उपयोगी है। पुरातन इतिहास के पंडितों तथा भाषाविज्ञानियों के लिये तो भाषाशास्त्र का ज्ञान अत्यधिक सहायक है। किन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से भाषाशास्त्र की जो उपादेयता है वह भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। व्यष्टि एवं समष्टि दोनों के जीवन में अन्य वस्तुओं की अपेक्षा भाषा का महत्व अधिक है। भाषाशास्त्र केवल कतिपय विशेषज्ञों की वस्तु है, ऐसा सोचना भारी भूल है, क्योंकि भाषा का सम्बन्ध मानव मात्र से है।

१.३४ मानवीय तथ्यों में भाषा का स्थान : प्रतीक विज्ञान और भाषाशास्त्र

ऊपर भाषा की महत्वपूर्ण विशेषताएँ दी गई हैं। वाक् सम्बन्धी तथ्यों के अन्तर्गत जब हम भाषा की सीमा निर्धारित कर लेते हैं तब हम उसे मानवीय वस्तु के रूप में वर्गीकृत कर सकते हैं किन्तु वाक् का इसप्रकार का वर्गीकरण हम नहीं कर सकते।

हम यह देख चुके हैं कि भाषा सामाजिक संस्थान है, किन्तु इसमें अनेक ऐसी विशेषताएँ मिलती हैं जो इसे अन्य संस्थानों (राजनैतिक, वैधानिक आदि संस्थानों) से पृथक करती हैं। भाषा की प्रकृति पर प्रकाश डालने के लिये यहाँ उससे सम्बन्ध रखनेवाले कतिपय नवीन तथ्य दिये जायेंगे।

भाषा प्रतीकों की प्रणाली है जिसके द्वारा विचारों का प्रकाशन होता है। इस रूप में हम इसकी तुलना लेखन प्रणाली, गूँगे, बहरों तथा अंधों की लिपियों एवं स्काउटों और फौजी सिपाहियों की झंडियों द्वारा संदेश भेजने की प्रणाली से कर सकते हैं। किन्तु यहाँ यह बात स्मरण रखने योग्य है कि अन्य सभी प्रणालियों से यह श्रेष्ठ एवं महत्वपूर्ण प्रणाली है।

एक ऐसा विज्ञान जो समाज के अन्तर्गत प्रतीकों के जीवन एवं इतिहास का

अध्ययन करता है, विचारणीय है। वास्तव में यह सामाजिक मनोविज्ञान का अंश होगा और इसकी गणना मनोविज्ञान के अन्तर्गत ही होगी। इसका नाम प्रतीकविज्ञान (ग्रीक, "सेमिआलोजी") होगा। इस विज्ञान में इस बात का अध्ययन किया जायेगा कि प्रतीक के अवयव क्या हैं तथा किन नियमों से वे अनुशासित होते हैं। चूँकि अभी तक यह विज्ञान अस्तित्व में नहीं आया है, अतएव इसकी रूपरेखा का निर्धारण कठिन है; किन्तु यह विज्ञान होना चाहिए और भविष्य के लिये इसका स्थान सुरक्षित कर देना चाहिए। भाषाशास्त्र इस प्रतीक विज्ञान (सायंस आव सेमिऑलोजी) का केवल एक अंश अथवा भाग है। प्रतीकविज्ञान के ही नियम भाषाशास्त्र में भी लागू होंगे और तब भाषाशास्त्र अपनी सीमा भलीभाँति निर्धारित कर सकेगा।

यह कार्य वास्तव में मनोवैज्ञानिकों का है कि वे प्रतीकविज्ञान का ठीक स्थान निर्धारित करें। भाषाशास्त्रियों का केवल इतना ही कार्य है कि प्रतीकात्मक तथ्यों में से वे उन तथ्यों को ढूँढ निकालें जो भाषा को एक विशिष्ट प्रणाली बनाते हैं। सच तो यह है कि प्रतीकविज्ञान से भाषाशास्त्र का सम्बन्ध स्पष्ट करके ही इसे विज्ञान की श्रेणी में रखा जा सकता है।

अन्य विज्ञानों की भाँति अब तक प्रतीकविज्ञान एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में क्यों नहीं स्वीकार किया जा सका है ? बात यह है कि भाषाशास्त्री आज भी एक व्यूह के भीतर चक्कर काट रहे हैं।* अन्य वस्तुओं की अपेक्षा भाषा ही एक ऐसी वस्तु है जो प्रतीक सम्बन्धी समस्याओं के स्पष्टीकरण के लिए आधार प्रदान करती है, किन्तु यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि भाषा के स्वतंत्ररूप में अध्ययन की आवश्यकता है। अभी तक भाषा का अध्ययन अन्य वस्तुओं के सन्दर्भ में किया गया है और इस अध्ययन का दृष्टिकोण भी विभिन्न रहा है।

भाषा के संबंध में एक दृष्टिकोण साधारण लोगों का है। यह बिल्कुल ऊपर-ऊपर का है। ये लोग भाषा को एक प्रणाली मानते हैं और उसके सम्बन्ध में किसी प्रकार की खोज अनावश्यक समझते हैं। इनके बाद एक दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिकों का है जो प्रतीक के ढाँचे का अध्ययन व्यक्तिगत रूप में करते हैं। यह ढंग सबसे सरल है किन्तु यह बहुत सीमित है। वास्तव में प्रतीक का अध्ययन सामाजिक दृष्टिकोण से आवश्यक है।

---

*ये विचार डी० सासे ने बहुत पहले व्यक्त किये थे। आधुनिक भाषाशास्त्री इस क्षेत्र में बहुत आगे बढ़ चुके हैं।

कभी-कभी सामाजिक दृष्टि से भी भाषा का अध्ययन किया जाता है। किन्तु इस अध्ययन में केवल भाषा की उन्हीं विशेषताओं पर बल दिया जाता है जिनका अन्य विज्ञानों से संबंध होता है। इसका परिणाम यह होता है कि सामान्यरूप से प्रतीकात्मक प्रणाली और विशेष रूप से भाषा की जो विशेषताएँ हैं उन पर बिल्कुल विचार नहीं हो पाता।

संक्षेप में प्रतीकात्मक प्रणाली की वे विशेषताएँ जो इसे अन्य विज्ञानों से पृथक करती हैं, भाषा में विशेषरूप से परिलक्षित होती हैं। इन विशेषताओं का अत्यल्प मात्रा में अध्ययन हुआ है। यही कारण है कि प्रतीक विज्ञान को अभी तक अपने वास्तविक अथवा अन्य रूप में स्वीकृति नहीं मिल सकी है। किन्तु यदि गहराई से विचार किया जाय तो भाषा संबंधी समस्यायें पूर्णतया प्रतीकात्मक हैं और इस महत्वपूर्ण तथ्य पर ही इस विज्ञान का विकास निर्भर है। यदि हम भाषा की वास्तविक प्रकृति की खोज करना चाहते हैं तो 'सर्व-प्रथम हमारे लिये उस तत्व की जानकारी आवश्यक है जो भाषा एवं अन्य प्रतीकात्मक प्रणालियों में समान रूप से उपस्थित हैं। जब भाषा को अन्य प्रणालियों से पृथक कर दिया जायेगा तब उसकी वे शक्तियाँ (यथा, वागेन्द्रिय आदि के कार्य) जो मुख्य एवं महत्वपूर्ण प्रतीत होती हैं, गौण हो जायेंगी। इस पद्धति से भाषाशास्त्र को अधिक शक्ति प्राप्त होगी। इसीप्रकार जब प्रतीक के सन्दर्भ में रीति-रिवाजों का भी अध्ययन किया जायेगा तो इस विज्ञान पर नवीन प्रकाश पड़ेगा और तब इस विज्ञान के नियमों के अनुसार उनकी व्याख्या करने में भी हम समर्थ हो सकेंगे।

१.३५ भाषा के आभ्यन्तर तथा वाह्यतत्व

पीछे भाषा की जो परिभाषा दी गई है तथा उसके संबंध में जो कुछ कहा गया है उससे इसकी स्थिति स्पष्ट हो गई है। इस प्रणाली से अतिरिक्त तत्वों को "वाह्य भाषाशास्त्र" (External Linguistics) कहा जा सकता है। किन्तु इस "वाह्य भाषाशास्त्र" का संबंध अनेक महत्वपूर्ण वस्तुओं से है जब हम वाक् (Speech) का अध्ययन आरम्भ करते हैं तब इन महत्वपूर्ण वस्तुओं की ओर हमारा ध्यान आकर्षित होता है।

इनमें सर्वप्रथम वह स्थल आता है जहाँ भाषाशास्त्र एवं 'मानवजाति-विज्ञान' एक दूसरे का स्पर्श करते हैं। इसके अन्तर्गत वे सभी संबंध आ जाते हैं जो भाषा के इतिहास को जाति अथवा सभ्यता के इतिहास से जोड़ते हैं। इनमें भी भाषाशास्त्र तथा 'जाति-विज्ञान' में इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि एक

का प्रभाव दूसरे पर सदैव पड़ता रहता है । एक और किसी जाति की संस्कृति उसकी भाषा को प्रभावित करती है तो दूसरी ओर राष्ट्र के निर्माण में भाषा का सबसे बड़ा हाथ होता है ।

इस शृंखला में दूसरा स्थान भाषा एवं राजनैतिक इतिहास का आता है । उदाहरण स्वरूप रोमन तथा तुर्कों की विजय जैसी महान ऐतिहासिक घटनाओं का भाषीय-तथ्यों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा है । इस विजय का एक रूप उपनिवेशन है । जब लोग नया उपनिवेश बनाते हैं तो वहाँ के वातावरण के अनुसार भाषा में भी परिवर्तन हो जाता है । इसकी पुष्टि में अनेक तथ्य उद्धृत किये जा सकते हैं । नार्वे का जब डेन्मार्क से राजनैतिक गठबन्धन हुआ तो उसने डेन्मार्क की भाषा अपनायी । आज नार्वे के लोग डेन्मार्क की भाषा से मुक्त होने का प्रयत्न कर रहे हैं । भाषा के जीवन में उसकी आन्तरिक राजनीति का कम महत्व नहीं है । कतिपय राष्ट्र राष्ट्रभाषा के रूप में कई भाषाओं का सहअस्तित्व स्वीकार करते हैं। इसका उदाहरण स्वीटजरलैण्ड है; किन्तु फ्रांस तथा अमेरिका जैसे राष्ट्र भाषीय एकता के लिये राष्ट्रभाषा के रूप में केवल एक भाषा को ही स्वीकार करते हैं । उच्चस्तरीय सभ्यता के लिए शिष्टभाषाओं को विकसित करने की आवश्यकता होती है । भौतिक, रसायन, औषधि आदि विज्ञानों के लिये नये पारिभाषिक शब्द गढ़े जाते हैं ।

अब हम अपने विचार के तीसरे विन्दु पर आते हैं । यह है भाषा का अन्य संस्थानों (चर्च, स्कूल आदि) से संबंध । इन सभी संस्थानों का भाषा के साहित्यिक विकास से घनिष्ट सम्बन्ध है । किन्तु भाषा का साहित्यिक विकास राजनैतिक इतिहास से इतना अधिक सम्बद्ध है कि इन दोनों को पृथक करना कठिन है । प्रत्यक्ष रूप में, साहित्य अपनी जो भी सीमा निर्धारित करता है, साहित्यिक भाषा उसका अतिक्रमण कर जाती है । इसीलिए इस बात की आवश्यकता है कि कचहरी, दरबार तथा राष्ट्रीय संस्थानों का भाषा पर जो प्रभाव परिलक्षित होता है उस पर विचार किया जाय । इसके अतिरिक्त साहित्यिक भाषा एवं स्थानीय बोलियों में संघर्ष का प्रश्न भी उपस्थित होता है । भाषाशास्त्री के लिये यह भी आवश्यक है कि वह पुस्तकी भाषा तथा देहाती भाषा में जो पारस्परिक सम्बन्ध है उसका भी स्पष्टीकरण करे क्योंकि प्रत्येक साहित्यिक भाषा संस्कृति की उपज होते हुए भी अन्ततोगत्वा अपने प्राकृतिक वातावरण की बोलचाल की भाषा से पृथक हो जाती है ।

ऊपर के विचार का अन्तिम विन्दु यह है कि वे सभी तत्व जो भाषा के

भौगोलिक प्रसार एवं बोलियों के विखण्डन से सम्बन्धित हैं "वाह्य भाषाशास्त्र" के विषय हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यहाँ आभ्यन्तरिक एवं वाह्य भाषाशास्त्र का प्रभेद विचित्र सा प्रतीत होता है, क्योंकि भौगोलिक तत्वों का भाषा से अति निकट का सम्बन्ध है; किन्तु यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि भौगोलिक प्रसार एवं बोली संबंधी विखण्डन, भाषा के आभ्यन्तरिक तत्वों को, वास्तविक रूप में, प्रभावित नहीं करते ।

कतिपय लोगों का विचार है कि ऊपर जो समस्यायें उठाई गयी हैं उन्हें भापा के अध्ययन से पृथक नहीं किया जा सकता ।

इनके अनुसार जिसप्रकार पौधे की भीतरी बनावट पर स्थान एवं जलवायु का प्रभाव पड़ता है और इन वाह्य तत्त्वों के कारण उसमें परिवर्तन आता है उसीप्रकार भाषा-सम्बन्धी परिवर्तन जैसे वाह्य तत्व उसके व्याकरण को भी प्रभावित करते हैं। उदाहरणस्वरूप किसी भाषा में व्यवहृत पारिभाषिक एवं अन्य भाषाओं से आगत शब्दों की तब तक व्याख्या सम्भव नहीं है जब तक उनके विकास का अध्ययन न किया जाय। इन विद्वानों के अनुसार भाषा के स्वाभाविक विकास एवं साहित्यिक रूप में, उसके कृत्रिम विकास में प्रभेद करना नितान्त कठिन है। यह सर्वविदित बात है कि वा य कारणों से ही कोई सामान्य भाषा साहित्यिक भाषा का रूप धारण करती है।

यह निर्विवाद सत्य है कि भाषा के अध्ययन में बाह्य भाषीय तत्वों का अध्ययन लाभप्रद है किन्तु यह कथन कि इनके बिना भाषा की आन्तरिक बनावट को समझना ही असम्भव है, गलत बात है। यहाँ उदाहरणस्वरूप, अन्य भाषाओं से आगत शब्दों को लिया जा सकता है। यदि हम ध्यानपूर्वक विचार करें तो अन्य भाषाओं से शब्द उधार लेना भाषा के जीवन का नियत व्यापार नहीं है। आज भी एकान्त उपत्यकाओं में ऐसी बोलियाँ हैं जिन्होंने अन्य भाषाओं से एक भी शब्द उधार नहीं लिया है। तब यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या इन बोलियों अथवा भाषाओं को अ-यथार्थ मानकर भाषा कोटि से ही पृथक कर दिया जाय? इसके अतिरिक्त यहाँ यह महत्वपूर्ण बात भी याद रखने योग्य है कि जब किसी भाषा में अन्य भाषा का शब्द जाता है तो वह उसकी प्रकृति के अनुकूल उसमें घुलमिल जाता है और उधार लेने वाली भाषा की प्रणाली के अनुकूल होने से उस भाषा के साथ ही उसका भी अध्ययन किया जाता है। किसी भाषा के अध्ययन के लिए उसके विकास की परिस्थितियों का अध्ययन आवश्यक नहीं है। कतिपय भाषाओं—उदाहरणार्थ ज़ेन्द तथा पुरानी स्लाव—

के संबंध में तो हम यह भी नहीं जानते कि इनके मूल बोलने वाले कौन थे, किन्तु इससे इन भाषाओं के न तो आन्तरिक तत्वों के अध्ययन में बाधा पड़ती है और न इनमें जो परिवर्तन हुए हैं उन्हें समझने में ही किसीप्रकार की कठिनाई होती है। जो भी हो, भाषा के वाह्‌य तथा आभ्यन्तर तत्वों को पृथक रखना ही श्रेयस्कर है।

भाषा के अध्ययन में ऊपर के दोनों दृष्टिकोणों को इसलिए भी पृथक रखने की आवश्यकता है कि ये दोनों दो पृथक प्रणालियों के उत्पादक हैं। किसी भाषा के वाह्य तत्त्वों के अध्ययन का परिणाम यह होगा कि हम उस भाषा के बाहर ही भकटते रहेंगे। उससे संबंध रखने वाली बाहरी वातों का तो हमें सूक्ष्मातिसूक्ष्म ज्ञान हो जायेगा किन्तु भाषा का जो आधार है तथा वह जिस प्रणाली पर स्थित है उसे हम न जान सकेंगे। इस दृष्टि से अध्ययन करने वाले प्रत्येक व्यक्ति का अध्ययन मनमाना होगा। यदि कोई व्यक्ति केवल यही अध्ययन करना चाहता है कि किन कारणों से बोलचाल की भाषा साहित्यक भाषा बन गई तो वह उसके कारणों की सूची मात्र तैयार कर देगा।

भाषा के आभ्यन्तरिक अध्ययन का चित्र इससे सर्वथा भिन्न है। इसमें केवल सूची बनाने तथा तथ्यों को वर्गीकृत करने से काम नहीं चलेगा। भाषा एक प्रणाली है और इसमें उपलब्ध तत्वों का वर्गबन्धन इस प्रणाली के अनुसार होना चाहिए। इसे स्पष्ट करने के लिये हमें यहाँ शतरंज की खेल के साथ भाषा की तुलना करनी होगी। इसमें आभ्यन्तरिक एवं वाह्य तत्वों को हम पृथक करके देख सकेंगे। शतरंज का खेल इरान (फारस) से यूरोप गया। वास्तव में यह इस खेल का वाह्य तत्व है क्योंकि इसका इस खेल के आभ्यन्तरिक नियमों से कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि इस खेल में लकड़ी के मुहरों के बदले हाथी दाँत के मुहरे रखे जायें तो इससे इसके आन्तरिक नियमों तथा इसकी प्रणाली में कोई अन्तर नहीं आयेगा किन्तु यदि मुहरों की संख्या में वृद्धि कर दी जाय तो घोर परिवर्तन आ जायगा। हमें आभ्यन्तरिक एवं वाह्य तत्वों के भेद को सदैव दृष्टि में रखना चाहिये। प्रणाली को परिवर्तित करने वाले सभी तत्व आभ्यन्तरिक होते हैं।

१.३६ भाषा का ग्राफ़िक निरूपण

विषय के अध्ययन की आवश्यकता

भाषाशास्त्र की मूर्त्त वस्तु (भाषा) समाज की उपज है और यह बोलने वालों के मस्तिष्क में संग्रहीत रहती है, किन्तु विभिन्न भाषा समूहों की यह

उपज भी भिन्न-भिन्न होती है और इसप्रकार हमें अनेक भाषाओं का सामना करना पड़ता है। भाषाशास्त्री को तो अधिक से अधिक संख्या में भाषायें जानने की आवश्यकता है ताकि वह उनके निरीक्षण एवं तुलनात्मक अध्ययन से उन तत्वों को निर्धारित कर सके जो सभी भाषाओं में समान एवं सार्वभौम रूप में उपलब्ध हैं। किन्तु हम भाषाओं का ज्ञान प्रायः लिखावट के द्वारा प्राप्त करते हैं। यहाँ तक कि अपनी मातृभाषा तक में हम लिखित ग्रंथों का ही उपयोग करते हैं। प्राचीन भाषाओं, विशेष रूप से लुप्त भाषाओं, के अध्ययन के लिये तो प्राचीन लिखित ग्रंथों से सहायता लेना आवश्यक हो जाता है। आजकल टेपरिकार्डर मशीन के द्वारा कथ्य भाषाओं के रिकार्ड तैयार किये जाते हैं, किन्तु इन रिकार्डों में संगृहीत भाषा को भी लिखा जा सकता है।

यद्यपि लिखावट का भाषा की आभ्यंतरिक प्रणाली से कोई संबंध नहीं है तथापि भाषा के प्रतिनिधि रूप में इसका निरंतर उपयोग होता है। हम लोग किसी भी रूप में लिखावट की उपेक्षा नहीं कर सकते।

नीचे लिखावट की उपयोगिता उसकी त्रुटियों एवं उसके दोषों पर विचार किय जायगा।

१.३७ लिखावट का कथ्यभाषा पर प्रभाव

भाषा तथा लिखावट दो प्रकार की सर्वथा भिन्न प्रणालियाँ हैं ; इनमें लिखावट का मुख्य उद्देश्य भाषा का प्रतिनिधित्व करना है। वास्तव में लिखित एवं कथ्य दोनों प्रकार के शब्द भाषीय-तत्व नहीं हैं, इनमें एक मात्र कथ्य शब्द ही तत्व है, किन्तु कथ्य शब्द लिखित चित्र से इतना अधिक संबद्ध है कि इनमें दूसरे को ही अधिक महत्व मिला है। लोग उच्चरित प्रतीक के लिखित चित्र को प्रतीक से अधिक महत्व देते हैं। यह उसीप्रकार की भूल है जैसे यह सोचना कि किसी व्यक्ति के संबंध में उससे प्रत्यक्ष मिलकर जानकारी प्राप्त करने के बजाय उसके फोटो से अधिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

यह भ्रम बराबर रहा है और भाषा के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किए गए हैं उनमें यह स्पष्टरूप से दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणस्वरूप लोगों का यह विचार है कि लिखावट के अभाव में भाषा शीघ्रता से परिवर्तित होती है; यह विचार भ्रमपूर्ण है। कुछ दशाओं में लिखावट परिवर्तन की क्रिया को रोक सकती है किन्तु इसके अभाव में भाषा को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँच सकती।

लिथुआनीय भाषा प्रुशिया एवं रूस के कुछ भागों में बोली जाती है। इसका

प्राचीनतम लेख सन् १५४० का है किन्तु इतने बाद की भाषा में भी प्राग्-भारोपीय का जो वास्तविक चित्र मिलता है वह ईसा के तीन सौ वर्ष पूर्व की लैटिन में नहीं उपलब्ध होता। केवल यह एक उदाहरण ही यह स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है कि लिखावट, भाषा से कितनी स्वतंत्र वस्तु है।

भाषा की निश्चित एवं स्थिर मौखिक परम्परा होती है। यह लिखावट से सर्वथा स्वतंत्र होती है किन्तु लिखावट का हमारे ऊपर इतना अधिक प्रभाव रहता है कि हम उसे देख नही पाते। रोम एवं यूनान के मानव-कार्य अध्येताओं (Humanists) की भाँति ही आरम्भिक भाषाशास्त्री भी भाषा एवं लिखावट का प्रभेद न समझ पाये। बाप्प तक को वर्ण एवं ध्वनि का अन्तर स्पष्ट न था। उसके ग्रंथों को देखने से ऐसा लगता है कि वह भाषा एवं लिपि को अविभेद्य अथवा समवायी मानता था। बाप्प का उत्तराधिकारी प्रसिद्ध भाषाशास्त्री ग्रिम्म था। ग्रिम्म नियम से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसे भाषा एवं लिपि का भेद ज्ञात न था। आज भी विद्वान् इस भ्रम को नहीं मिटा सके हैं।

किन्तु लिखावट के इस प्रभाव की क्या व्याख्या है ?

(१) शब्द का लिखित रूप नित्य एवं स्थायी प्रतीत होता है तथा ध्वनि की अपेक्षा भाषा की एकता के इतिहास की व्याख्या यह अधिक सुचारु रूप से करता है। यद्यपि यह सर्वथा मिथ्या एकता उत्पन्न करता है किन्तु ध्वनि के वास्तविक संबंध की अपेक्षा लोग लिखावट के अवास्तविक संबंध को सरलता से ग्रहण कर लेते हैं।

(२) बहुत लोग चाक्षुष प्रभाव को श्रुतिगत प्रभाव से अधिक मानते है क्योंकि चाक्षुष वस्तुओं का प्रभाव मस्तिष्क पर बहुत दिनों तक रहता है। इसप्रकार, श्रुतिगत ध्वनियों की अपेक्षा वे चाक्षुष लिखावट को अधिक महत्व देते हैं।

(३) साहित्यिकभाषा से भी लिखावट को अनावश्यक महत्त्व मिल जाता है। साहित्यिकभाषा के व्याकरण एवं कोश होते हैं। स्कूलों में लड़के पुस्तकें पढ़ते है। भाषा नियमों से अनुशासित होती है और प्रयोग पर आधारित ये नियम लिखित होते है; इन्ही कारणों से लिखावट महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लेती है। लोग यह प्रायः भूल जाते हैं कि लिखने से बहुत पहिले उन्होंने बोलना सीखा था।

(४) जब भाषा और उसकी लिखावट में किसीप्रकार की दुविधा उपस्थित होती है तो भाषाशास्त्री के अतिरिक्त अन्य लोगों के लिये इसका समा-

धान करना कठिन हो जाता है। चूँकि समस्या के समाधान के लिये भाषा-शास्त्रियों की कोई सम्मति नहीं लेता है इसलिये लिखित रूप की विजय हो जाती है और उसे ही ठीक मान कर समस्या का समाधान कर दिया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि लिखावट को सहज में ही महत्त्व प्राप्त हो जाता है।

१.३८ लिखावट की प्रणाली

लिखावट की निम्नलिखित दो प्रणालियाँ हैं—

(१) **भाव चित्रात्मक प्रणाली**—इस प्रणाली में प्रत्येक शब्द के लिये एक प्रतीक होता है जिसका उस शब्द की ध्वनि से कोई संबंध नहीं होता। इस प्रणाली का प्रत्येक प्रतीक पूरे शब्द का प्रतिनिधि होता है। इसके परिणामस्वरूप अन्यत्र शब्द द्वारा जो भाव व्यक्त किये जाते हैं वह इस प्रणाली में प्रतीक अथवा चित्र द्वारा व्यक्त किये जाते हैं। इस प्रणाली का सर्वोत्तम उदाहरण चीनी भाषा की लिखावट है।

(२) **ध्वन्यात्मक प्रणाली**—इस प्रणाली के द्वारा किसी शब्द के उच्चारण में क्रमशः जो ध्वनियाँ लिखा जाता है। ग्रीक, रूसी तथा संस्कृत की लिखावट ध्वन्यात्मक आती हैं उन्हें है। यह लिखावट भी दो प्रकार की होती है—(१) अक्षरात्मक (Syllabic) (२) वर्णात्मक (Alphabetic) इनमें ग्रीक तथा रोमन लिपियाँ वर्णात्मक और नागरी लिपि अर्द्धवर्णात्मक है।

हमारे मस्तिष्क में लिखित शब्द उच्चरित शब्दों का स्थान ग्रहण कर लेते है। ऐसा वस्तुतः दोनों प्रणालियों में होता है।

भावचित्रात्मक प्रणाली में इसकी अधिक सम्भावना है। किसी चीनी के लिए भाव-चित्र तथा उच्चरित-शब्द, दोनों ही भाव अथवा विचार के प्रतीक हैं। उसके लिए लिखावट द्वितीय भाषा है और यदि दो शब्दों का उच्चारण एक ही है तो विचार के स्पष्टीकरण के लिये वह लिखावट का उपयोग कर सकता है। ध्वन्यात्मक प्रणाली में उच्चरित अथवा कथ्य शब्दों को मस्तिष्क में धारण करने में जो उलझन होती है वह चीनी में नहीं होती क्योंकि वहाँ शब्दचित्र तथा विचार में पूर्ण तादात्म्य होता है। एक बात और है। सभी चीनी बोलियों में चित्रात्मक प्रतीक एक ही होता है।

२

सर्वेक्षण-पद्धति

२.१० ग्रियर्सन कृत भाषासर्वेक्षण

ग्रियर्सन-कृत भाषा-सर्वेक्षण के प्रथम खण्ड के प्रथम भाग का प्रकाशन, भारत सरकार की ओर से सन् १९२७ ई० में हुआ था। यह उनके ग्यारह खण्डों में प्रकाशित भाषा से सर्वेक्षण की भूमिका है। इसमें आप लिखतेहैं—

"सर्वेक्षण का यह कार्य लगभग तीस वर्षो तक चलता रहा और अब कृतज्ञता की अनुभूति से मैं इस कार्य को समाप्त कर रहा हूँ। इस प्राक्कथन के बाद मेरी लेखनी विश्राम ले रही है। बिना किसी नम्रता प्रदर्शन के मुझे यह स्वीकार करने में संकोच नहीं है कि इस सर्वेक्षण की त्रुटियाँ अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा मुझे अधिक अवगत हैं। दूसरी ओर इस गर्वोक्ति के लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ कि इस सर्वेक्षण के रूप में भारत में जो कार्य हुआ वह संसार के किसी अन्य देश में नहीं हुआ; तथ्य की बात यही है।"

यहाँ यह बात विचारणीय है कि ग्रियर्सन ने सर्वेक्षण के लिए किस विधि का प्रयोग किया था? आप ने बाइबिल की कहानी "उड़ाऊपूत" (Prodigal son) का विभिन्न भाषाओं तथा बोलियों में अनुवाद कराया था और उनमें उपलब्ध भाषा-सामग्री के आधार पर उनका संक्षिप्त व्याकरण तैयार किया था। इसके अतिरिक्त विविध क्षेत्रों की भाषाओं के सम्बन्ध में मिशनरियों तथा अन्य विद्वानों ने जो कुछ कार्य किया था उसका भी ग्रियर्सन ने पूरा उपयोग किया था। बाइबिल की कहानी को तो उन्होंने जिलाधीशों (कलक्टरों) के पास अनूदित कराने के लिए भेज दिया था। जिलाधीशों ने इसे अपने अधीनस्थ कर्मचारियों —तहसीलदार आदि—के पास भेज दिया और अन्ततोगत्वा इसे क्षेत्रीय भाषाओं तथा बोलियों में भाषान्तर करने का कार्य पटवारियों ने सम्पन्न किया।

समस्त उपलब्ध सामग्री की पूरी जाँच-पड़ताल के बाद ही ग्रियर्सन ने उसे

अपने सर्वेक्षण का आधार बनाया था, इस सम्बन्ध में आप सर्वेक्षण की भूमिका वाले खण्ड में लिखते हैं:—

"यह कहना आवश्यक नहीं है कि भाषासर्वेक्षण का समस्त मूल्य इसकी शुद्धता पर निर्भर है। यहाँ यह प्रश्न भी पूछा जा सकता है, कि क्या 'रिकार्ड' किये गये नमूने वास्तव में उन भाषाओं के रूपों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनके वे उदाहरण हैं। इसके प्रत्युत्तर में मैं यही कहूँगा कि मेरा विश्वास है कि वे सम्पूर्णरूप से ऐसा अवश्य करते हैं। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये असाधारण उपायों का अवलम्बन किया गया है तथा संदेहप्रद स्थलों की स्पष्टता के लिये पूर्ण प्रयास किया गया है। इस सम्बन्ध में मुझे अत्यधिक पत्र व्यवहार करना पड़ा है और कभी-कभी आशा से अधिक सफलता भी मिली है। यह बात मैं स्पष्टरूप से स्वीकार करता हूँ कि यत्रतत्र कुछ त्रुटियाँ भी रह गई हैं तथा भाषा-सम्बन्धी कुछ नमूने अन्यों की अपेक्षा कम महत्त्व के हैं। समान रूप से सभी नमूने श्रेष्ठ हों, यह आदर्श की बात अवश्य हो सकती है किन्तु इसकी प्राप्ति कठिन है; फिर भी यदि हम उन स्रोतों पर विचार करें जहाँ से ये नमूने प्राप्त हुए हैं, तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि प्रत्येक दशा में इनके शुद्ध होने की ही अधिक सम्भावना है। इस सर्वेक्षण के बहुसंख्यक भाषा-सम्बन्धी नमूने या तो उन भारतीयों द्वारा तैयार किये गये हैं, जो स्वयं उन भाषाओं के बोलने वाले हैं अथवा ये उन मिशनरियों द्वारा तैयार किये गये हैं जो प्रत्येक क्षण इनके बोलने वाले अशिक्षित लोगों के निकट सम्पर्क में रहते हैं। पुनश्च अन्य नमूने मेरे ही कर्मचारियों द्वारा तैयार किये गये हैं। इनमें मेरे वे खास मित्र भी शामिल हैं जिनकी बौद्धिक श्रेष्ठता के सम्बन्ध में मुझे पूर्ण विश्वास है तथा जिन्होंने वन्य-जातियों की ऐसी भाषाओं में भी विशेषज्ञता प्राप्त की है जो बिल्कुल ही लिखी-पढ़ी नहीं जातीं। निश्चय ही इसके अपवाद भी थे। विशेषरूप से नमूने भेजने वालों में कतिपय ऐसे भी भारतीय थे जो भाषा की एकरूपता एवं शुद्धि के पक्षपाती थे। कुछ लेखक ऐसे भी थे जिन्हें निरक्षर तथा गँवार किसानों की भाषा को लिपिबद्ध करने में भी कष्ट का अनुभव होता था। उन्होंने इन नमूनों में काफी काँट-छाँट की, इनसे गँवारूपन को वहिष्कृत किया तथा इन्हें सुन्दर रूप प्रदान करने का प्रयास किया। कतिपय लोगों ने तो सुने हुए सभी ग्रामीण बर्बर शब्दों को लिखना भी अस्वीकार कर दिया और बाइबिल की "उड़ाऊ पूत" की कहानी को या तो विशुद्ध फारसी-गर्भित उर्दू अथवा संस्कृत-गर्भित बँगला में लिख भेजा। कुछ लोगों के नमूनों की तो मेरे पास भेजने के पूर्व, नियमानुसार काफी जाँच पड़ताल की गई। उनकी

भूलें पकड़ी गईं और उन्हें ठीक कर लिया गया। मेरे लिए त्रुटियों से बचने की सब से बड़ी बात यह थी कि भाषा-सम्बन्धी इन नमूनों की संख्या बहुत अधिक थी। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इन नमूनों की संख्या कई हज़ार थी तथा अधिकांश भाषाओं में चुनाव के लिए काफी गुंजायश थी। कोई भी व्यक्ति इन सब को न तो पढ़ ही सकता था और न गहराई से इनका अध्ययन ही कर सकता था। इनमें से प्रत्येक की मैंने सावधानी से जाँच-पड़ताल की। मैं इनका पूरा मूल्यांकन न कर सका और न यही जान पाया कि इनमें से कौन वास्तविक था और कौन नहीं। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मेरा यह परीक्षण सर्वथा आत्मिक था किन्तु मुझे विश्वास है कि इनमें से किसे प्रकाशित करना है, किसे नहीं, इस सम्बन्ध में, मैंने विवेक से काम लिया। सबसे बड़ी बात यह थी कि मेरे सूचकों (Informants) ने जो सामग्री भेजी थी उसे बिना जाँच किये हुए लेने के लिए मुझे बाध्य नहीं होना पड़ा और अधिकांशतः उनमें से मैंने चुनकर ही समाग्री ली। जिन भाषाओं से मैं स्वयं परिचित था तथा जिन बोलियों को मैंने शीतकाल की रात्रि में, अलाव के पास बैठकर वृद्धों तथा ग्रामीण लोगों से सुनकर ग्रहण किया था, उनके सम्बन्ध में, स्वाभाविकरूप से, मैं विशिष्ट तथा अनुकूल परिस्थिति में था। इसप्रकार से प्राप्त अनुभव भाषा-सम्बन्धी उस सामग्री के मूल्यांकन में अत्यधिक लाभदायक सिद्ध हुआ जिसे मैंने या तो पुस्तकों से प्राप्त किया था अथवा जिसका मुझे बिल्कुल ज्ञान न था।"

ऊपर का वक्तव्य डा० ग्रियर्सन ने उस समय दिया था जब भाषाशास्त्र इतना उन्नत न था। इधर गत ३५-४० वर्षों में भाषाशास्त्र के अध्ययन के क्षेत्र में अभूतपूर्व उन्नति हुई है और पहले की अपेक्षा आज यह पूर्ण विज्ञान बन गया है। इस बीच अफ्रीका एवं अमेरिका की अनेक बोलियों एवं उपबोलियों का सर्वेक्षण-कार्य सम्पन्न हुआ है और सर्वेक्षण-प्रणाली के सम्बन्ध में विद्वानों ने अपने लेखों तथा अपनी पुस्तकों में प्रभूत सामग्री भी उपलब्ध कर दी है। उन्हीं सामग्रियों के आधार पर भाषासर्वेक्षण के सम्बन्ध में आगे विचार किया जा रहा है।

२.११ आधुनिक भाषासर्वेक्षणविधि

आधुनिक सर्वेक्षण-विधि ने एक प्रकार से विज्ञान का रूप धारण कर लिया है। भाषाशास्त्र के अध्ययन-काल में कक्षा में, छात्र एवं छात्राओं को जो अभ्यास दिये जाते हैं वे ऐसे होते हैं जिन्हें वे हल कर लें। आरम्भ के कतिपय अभ्यास तो काल्पनिक होते हैं किन्तु आगे चलकर वास्तविक भाषाओं के ही अभ्यास तैयार किये जाते हैं। कभी-कभी कक्षा की आवश्यकता तथा छात्रों की योग्यता का

ध्यान रखकर इन अभ्यासों में परिवर्तन भी कर दिया जाता है। किन्तु जब अनुसन्धानकर्त्ता को वास्तव मे किसी भाषा का सर्वेक्षण करना पड़ता है तो उसे कक्षा के विपरीत वातावरण में कार्य सम्पन्न करना पड़ता है। उसे भाषा सम्बन्धी सामग्री प्राप्त करने में अनेक कठिनाइयाँ होती हैं। जब अनुसन्धानकर्त्ता अपने सूचक (Informant) से उसके आस-पास की प्रत्येक वस्तु का नाम पूछता है तो सूचक अत्यधिक आश्चर्य-चकित हो उठता है। उसके मन में बारबार यही प्रश्न उठता है कि आखिर अनुसन्धानकर्त्ता का लक्ष्य क्या है ? यदि अनुसन्धानकर्त्ता को पिछड़े हुए लोगों अथवा वन्य जातियों में काम करना पड़ा तो उसकी कठिनाइयाँ और भी बढ़ जाती है। ऐसे क्षेत्र के लोगों को कभी-कभी यह सन्देह हो जाता है कि शिक्षित अनुसन्धानकर्त्ता उनकी गोपनीय बातों का भेद जानकर कहीं उन्हें विपत्ति में डालने का षडयंत्र तो नही रच रहा है। कभी-कभी तो लोग अनुसन्धानकर्त्ता को गुप्तचर ही समझ बैठते है। ऐसी स्थिति में अनुसन्धानकर्त्ता का सब से अधिक प्रयत्न यह होता है कि वह सूचक अथवा जिन लोगों के बीच वह कार्य कर रहा है उन्हें इस बात का पूर्ण बोध करा दे कि उसका एक मात्र उद्देश्य भाषा की जानकारी प्राप्त करना है और वह शुद्ध हृदय से, केवल ज्ञानार्जन के लिए ही उस भाषा का अध्ययन कर रहा है।

ऊपर की व्यावहारिक कठिनाई के अतिरिक्त अनुसन्धानकर्त्ता को एक और भी कठिनाई होती है। वह यह है कि भाषा-सामग्री, ध्वनि, गठन तथा वाक्य-विन्यास के रूप में, विभक्त भागों में, अलग-अलग नहीं मिलती, अपितु वह समग्ररूप में मिलती है। ऐसी दशा में अनुसन्धानकर्त्ता को विभिन्न तीन धरातलों में कार्य करके भाषा-सम्बन्धी सूक्ष्म-तत्त्वों का विश्लेषण करना पड़ता है।

भाषा की व्याख्या अथवा उसके विश्लेषण के लिए सर्वेक्षण-विधि का पूर्ण-ज्ञान अपेक्षित है, किन्तु भाषाशास्त्र के अध्ययन में इसकी शिक्षा की सब से कम व्यवस्था है। प्रायः लोग यह मान बैठे हैं कि किसीप्रकार के प्रशिक्षण के बिना भी अनुसन्धानकर्त्ता भाषा का सर्वेक्षण कर लेगा, किन्तु देखा यह गया है कि अनुभव के अभाव में, इस कार्य में, अनुसन्धानकर्त्ताओं को अत्यधिक कठिनाई होती है। सच तो यह है कि अनुसन्धानकर्त्ता को भाषा-सामग्री को एकत्र करने की विविध विधियों का ज्ञान होना चाहिए। इसके साथ ही सूचक के सफल उपयोग एवं भाषा की सूक्ष्म विश्लेषण पद्धति की भी उसे पूर्ण जानकारी होनी चाहिए।

२.१२ भाषा-सामग्री एकत्र करने के मार्ग

आजकल भाषा सामग्री के एकत्र करने की मुख्यरूप से दो मार्ग प्रचलित

हैं—(१) एक भाषिक, जिसमें अनुसन्धानकर्त्ता तथा सूचक के बीच, किसी अन्य भाषा का माध्यम रूप में प्रयोग नहीं होता (२) द्वैभाषिक, जिसमें एक या एक से अधिक भाषा अथवा भाषाओं का माध्यम रूप में प्रयोग होता है। एक भाषिक मार्ग में, आरम्भ में, कतिपय विशेष नियमों का पालन करना पड़ता है किन्तु जब अनुसन्धानकर्त्ता को अनुसन्धेय भाषा का ज्ञान हो जाता है और वह उसके माध्यम से सूचक से वार्त्तालाप करने लगता है तब दोनों मार्ग एक हो जाते हैं।

२.१३ एक भाषिक मार्ग

अनेक मिशनरियों तथा अनुसन्धानकर्त्ताओं ने एकान्तिक लोगों की बोलियों तथा भाषाओं के अध्ययन के लिए एक भाषिक मार्ग को अपनाया है। आज भी कतिपय क्षेत्रों की भाषा के अध्ययन के लिए इसी मार्ग को अपनाया जा रहा है। इसका कारण यह है कि अनुसन्धेय भाषा का कोई भी व्यक्ति किसी अन्य माध्यम से पूर्णतया परिचित नहीं होता। व्यावहारिक रूप में प्रायः ऐसा होता है कि इस क्षेत्र के कतिपय लोग पास-पड़ोस की भाषा को थोड़ा-बहुत जानते हैं। अनुसन्धान-कर्त्ता, प्रायः ऐसे लोगों की सहायता से अनुसन्धेय भाषा के कतिपय शब्दों एवं वाक्यों को सीख लेता है और इसप्रकार शनैः-शनैः वह भाषा-सामग्री के एकत्र करने के कार्य में अग्रसर होता है। सम्पूर्ण रूप से एक भाषिक क्षेत्र में कार्य करते समय निम्नलिखित मार्ग का अनुगमन वांछनीय है—

(१) अनुसन्धानकर्त्ता को अनुसन्धेय भाषा-भाषिओं से मुस्कुराहट के साथ सम्भाषण का समारम्भ करना चाहिए। सहृदय मुस्कुराहट का अर्थ सभी संस्कृतियों के अनुगामी समझते हैं।

(२) अनुसन्धानकर्त्ता को किसी भी भाषा (हिन्दी, बँगला, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलुगु, कन्नड) में सम्भाषण करना चाहिए। इससे अनुसन्धेय भाषा-भाषियों को ज्ञात होगा कि अनुसन्धानकर्त्ता उनसे सम्भाषण करने के लिए उत्सुक है।

(३) अनुसन्धानकर्त्ता को मैत्रीपूर्ण इशारों का प्रयोग करना चाहिए। उसे अनुसन्धेय भाषा-भाषिओं के स्वागतार्थ अपना हाथ बढ़ाना चाहिए। इसके उत्तर में वहाँ के निवासी किस रूप में अभिवादन करते हैं, इसे भी अनुसन्धानकर्त्ता को ध्यानपूर्वक देखना चाहिए। यदि उस क्षेत्र के निवासी सिर हिलाकर अभि-वादन करें तो अनुसन्धानकर्त्ता को वैसा ही करना चाहिए, यदि वे जीभ निकाल कर तथा कान पकड़कर अभिवादन करें तो अनुसन्धानकर्त्ता को भी उसीप्रकार से अभिवादन करना चाहिए।

(४) अपनी भूलों पर अनुसन्धानकर्त्ता को तुरन्त हँसना चाहिए। इसका एक परिणाम यह होगा कि यदि अनजान में उससे कोई अनुचित बात हो गई होगी तो हँसी के कारण किसीप्रकार की ग़लतफहमी न हो सकेगी। यों भी हँसमुख व्यक्ति के प्रति ग़लतफहमी की बहुत कम गुजायश रहती है।

(५) मूल निवासियों (जिनसे भाषा सामग्री का संग्रह किया जाय) की आसपास की वस्तुओं में दिलचस्पी लेनी चाहिए। अनुसन्धानकर्त्ता को मूल निवासियों के घर तथा उनके वस्त्राभूषण की प्रशंसा करनी चाहिए।

(६) अनुसन्धानकर्त्ता को उन्हें अपनी वस्तुएँ दिखाकर उनके प्रति दिलचस्पी पैदा करनी चाहिए। यह जानते हुए भी कि मूलनिवासी अनुसन्धानकर्त्ता की भाषा को किंचित मात्र भी नही समझते, उनसे आसपास की वस्तुओं के सम्बन्ध में बातें करने का प्रयत्न करना चाहिए।

(७) उपयुक्त इशारों से, मूल निवासियों से कतिपय वस्तुओं का नाम पूछना चाहिए। वे अनुसन्धानकर्त्ता के आशय का अनुमान कर लेंगे और कुछ न कुछ उत्तर अवश्य देंगे।

(८) इसी प्रक्रिया को अन्य वस्तुओं के सम्बन्ध में भी दुहराना चाहिए। यदि प्रत्येक बार एक ही उत्तर मिले तो यह समझना चाहिए कि मूलनिवासी विभिन्न वस्तुओं का नाम न बताकर कुछ दूसरी ही बात कह रहे हैं। यह प्रसिद्ध है कि एक बार जब अनुसन्धानकर्त्ता अपनी उँगली के इशारे से वस्तुओं का नाम पूछता था तो वे विभिन्न वस्तुओं का नाम न देकर केवल उँगली का प्रतिशब्द ही अपनी भाषा में देते थे। इस कठिनाई के निवारण के लिए अनुसन्धानकर्त्ता को अपने होंठ के निचले भाग से वस्तुओं का स्पर्श करके उनका नाम पूछना चाहिए।

(९) जब मूलनिवासी प्रत्येक वस्तु के अलग-अलग नाम बतावें तो नाम पूछने के क्रम को बदल देना चाहिए। और उन वस्तुओं के नामों का स्वयं उच्चारण करके मूलवासियों की प्रतिक्रिया देखनी चाहिए। यदि मूलवासी मित्र बन गए हैं तो अनुसन्धानकर्त्ता को इस रूप में विविध वस्तुओं का नामोच्चारण करते देखकर व आश्चर्य-चकित एवं प्रसन्न होंगे।

(१०) विविध वस्तुओं के नाम पूछने की प्रक्रिया को जारी रखना चाहिए।

(११) भाषा-सामग्री प्राप्त करने की इस क्रिया में सब से महत्त्वपूर्ण काम "यह क्या है" वाक्य का पता लगाना है। जब अनुसन्धानकर्त्ता मूलवासियों को अपनी वस्तुएँ दिखा रहा हो उस समय उनकी प्रतिक्रिया सावधानी से नोट करनी

चाहिए क्योंकि इसी समय इस वाक्य के मिलने की सर्वाधिक सम्भावना है। यदि किसी प्रकार यह वाक्य मिल गया तो आगे की वस्तुओं के नाम पूछने में बहुत सरलता हो जायेगी।

(१२) मूलवासियों से प्राप्त शब्दों को एक कापी में लिखते जाना चाहिए। यह कार्य उनके समक्ष, उन्हें दिखाकर करना चाहिए ताकि उन्हें किसीप्रकार का सन्देह न हो। जब इसप्रकार शब्दों की सूची बन जाय तो मूलवासियों के प्रत्येक शब्द इशारे से दिखाकर उनके नाम का उच्चारण करना चाहिए। इसके साथ ही उन वस्तुओं को भी दिखाते जाना चाहिए। मूलवासियों के समक्ष प्रत्येक कार्य के करने का परिणाम यह होगा कि उन्हें अनुसन्धानकर्त्ता के प्रति किसीप्रकार का सन्देह न होगा और उसकी प्रतिष्ठा की अभिवद्धि होगी।

(१३) शब्दों के चुनाव में भी सावधानी से काम करने की आवश्यकता है। निम्नलिखित प्रकार के प्रश्न आरम्भ में, नहीं पूछने चाहिए:— (क) लोगों के नाम (ख) शरीर के विभिन्न अंगों के नाम (ग) धार्मिक वस्तुओं एवं कृत्यों, यथा, बलिदान, मन्दिर, ताबीज़, आदि के नाम।

(१४) अनुसन्धानकर्त्ता को विविध क्रियाओं का भी अभिनय करना चाहिए। उदाहरणस्वरूप उसे कभी-कभी चक्कर लगाना चाहिए अथवा चारों ओर घूमना चाहिए ताकि मूलवासी उसकी इस क्रिया के सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर सकें। अनुसन्धानकर्त्ता को सदैव सम्प्रज्ञानयुक्त होकर कार्य करना चाहिए। उसे अपने सम्बन्ध में मूलवासियों द्वारा व्यक्त किए गये शब्दों को सुनना चाहिए और अन्य लोगों को तद्वत् कार्य करते देखकर इन शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। यदि अनुसन्धानकर्त्ता के शब्द शुद्ध हैं तो मूलवासी प्रसन्नतापूर्वक अपनी स्वीकृति प्रदान करेंगे।

(१५) क्रिया प्रदर्शित करते समय मूलवासियों से "वह क्या कर रहा है," वाक्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि कोई पास में कुछ कार्य कर रहा है तो उससे पूछने में इस वाक्य का प्रयोग करना चाहिए।

(१६) 'कूदने, दौड़ने, खाने, सोने तथा पीने आदि शब्दों की भी जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।

(१७) हँसी खेल में, मूलवासियों के साथ, कतिपय अनुकरणात्मक शब्दों का उच्चारण करना चाहिए। यदि अनुसन्धानकर्त्ता को इस कार्य में सफलता मिले तो उसे मूलवासियों से उस कार्य के सम्बन्ध में बातें करनी चाहिए। इस ढंग से 'मैं' तथा 'तुम' सर्वनामों के प्राप्त होने की आशा है। इसीप्रकार एक

व्यक्ति से कुछ कार्य कराकर तथा दूसरे से उसके सम्बन्ध में पूछकर 'वह' सर्व-नाम प्राप्त किया जा सकता है।

(१८) 'मैं' 'तुम' तथा 'वह' के साथ क्रिया के विविध रूपों का प्रयोग करना चाहिए। यद्यपि इसमें अशुद्धियाँ होंगी किन्तु मूलवासी अनुसन्धानकर्त्ता का आशय समझ जायेंगे और उसे शुद्ध कर देंगे।

(१९) समस्त उपलब्ध पदों को सम्भावित अर्थ सहित लिख लेना चाहिए।

(२०) यथासम्भव, पदांश (Morpheme) को पृथक करने के लिये, पदों का विश्लेषण भी प्रारम्भ कर देना चाहिए।

(२१) चाहे अशुद्धि ही क्यों न हो, सभी वाक्यों, शब्दों आदि को कंठाग्र कर लेना चाहिए। अनुसन्धानकर्त्ता की सब से बड़ी योग्यता यह है कि वह शब्दों, वाक्यों आदि को जिस रूप में सुने उन्हें उसी रूप में उच्चरित भी करे। इसका एक परिणाम यह होगा कि मूलवासी उसकी सहायता के लिए सदैव तैयार रहेंगे।

(२२) जब मूलवासी अनुसन्धानकर्त्ता की भूलों पर हँसें तो उसे भी दिल खोलकर हँसना चाहिए। इससे अनुसन्धानकर्त्ता मूलवासियों में घुलमिल जायेगा और सर्वप्रिय बन जायेगा।

(२३) अनुसन्धानकर्त्ता को सदैव ऐसे स्थान पर रहना चाहिए जहाँ उसे मूलवासियों के शब्दों एवं वार्तालाप आदि को सुनने का सदैव अवसर मिले। कष्ट होने पर भी उसे मूलवासियों के बीच, गाँवों में ही, रहना चाहिए।

(२४) अनुसन्धानकर्त्ता को प्रत्येक अवसर पर बारंबार, मूलवासियों की भाषा का ही प्रयोग करना चाहिए। अनुसन्धान के आरम्भिक दिनों में यह अत्यावश्यक है। आगे चलकर यह क्रिया सर्वथा स्वाभाविक हो जाती है और तब मूलवासियों को, अनुसन्धानकर्त्ता को, भाषा सिखाने में कुछ रस नहीं मिलता।

(२५) अनुसन्धानकर्त्ता को मूलवासियों की भाषा सदैव सुननी चाहिए। यद्यपि प्रारम्भ में उसकी समझ में कुछ भी नहीं आयेगा किन्तु शनैः-शनैः उसे बारं-बार आने वाले शब्दों एवं वाक्यों का बोध होने लगेगा। भाषा सीखने के लिये उसे निरन्तर सुनना आवश्यक है।

जब अनुसन्धानकर्त्ता भाषा को यत्किंचित सीख लेता है तब एक भाषिक तथा द्वैभाषिक मार्ग का भेद मिट जाता है अतएव दोनों मार्गों के सम्बन्ध में अलग-अलग लिखना अनावश्यक है। चूँकि अनुसन्धानकर्त्ता को प्रायः द्वैभाषिक वातावरण में ही काम करना पड़ता है अतएव आगे इसी मार्ग के सम्बन्ध में निवेदन किया जायेगा।

२.१४ द्वैभाषिक मार्ग

इस मार्ग के तीन महत्त्वपूर्ण भाग है:—(क) भाषा सामग्री का रूप (ख) सामग्री एकत्र करने की विधि (ग) सूचक। प्रथम दो, (क) तथा (ख) के सम्बन्ध में विचार करने के लिए हमे ऐसे सूचक को लेना पड़ेगा जिसे अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त किसी अन्य भापा (व्यापारिक भाषा) का भी यत्किंचित ज्ञान हो। उदाहरणस्वरूप यदि कोई व्यक्ति किसी मुडा बोली का अध्ययन कर रहा हो तो उसके सूचक को अपनी मातृभापा के अतिरिक्त सीमा की व्यापारिक—बिहारी (मैथिली, मगही, भोजपुरी) हिन्दी अथवा बॅगला का थोड़ा बहुत ज्ञान होना चाहिए। किन्तु इसके साथ ही अनुसन्धानकर्त्ता को इस बात की आशा नही रखनी चाहिए कि सूचक को अपनी मातृभापा तथा पड़ोस की व्यापारिक भाषा के व्याकरण के सूक्ष्म भेद-प्रभेदों का भी ज्ञान होगा। बहुत सम्भव है कि वह पड़ोस की व्यापारिक भाषा के दो-तीन कालों (Tenses) से ही परिचित हो और केवल साधारण सम्भाषण में ही उनका प्रयोग करता हो। जो हो, अनुसन्धानकर्त्ता को सर्वेक्षण करते समय इन व्यावहारिक कठिनाइयों का सदैव ध्यान रखना चाहिए।

२.१५ सामग्री की उपलब्धि

भाषा-सामग्री भी निम्नलिखित छै रूपों में उपलब्ध होती है—

(क) सामान्य शब्द।

(ख) प्रत्यय युक्त शब्द अथवा पद।

(ग) सामान्य क्रियाशब्द।

(घ) प्रत्यययुक्त क्रियापद।

(ङ) सामान्य शब्द (पद) तथा क्रियापद का समिश्रण।

(च) कहानी (टेक्स्ट)।

प्रथम पाँच प्रकार की सामग्री सूचक से प्रश्न द्वारा प्राप्त की जाती है, किन्तु छठी प्रकार की सामग्री कहानी के रूप में सूचक स्वयं प्रस्तुत करता है।

२.१६ सामान्य शब्द

अनुसन्धानकर्त्ता को सर्वप्रथम विविध वस्तुओं के नाम जानने का प्रयत्न करना चाहिए। ये ऐसी ठोस वस्तुएँ होनी चाहिए जिनकी ओर अनुसन्धानकर्त्ता अंगुलि-निर्देश कर सके; यथा, वृक्ष, लता, पुष्प, अश्व, गाय, घर, बादल, कुत्ता, बिल्ली, आदि। लम्बे शब्दों को, आरम्भ, मे नही लेना चाहिए। जब भाषा की गठन ज्ञात हो जाय तो विश्लेषण के लिए ऐसे शब्दों को बाद मे लिया जा सकता है।

अनुसन्धानकर्त्ता को सूचक से विशेष क्षेत्र के शब्दों को एक साथ पूछना चाहिए। उदाहरणस्वरूप उसे शरीर के विभिन्न अंगों, वस्त्राभूषणों, घर की वस्तुओं, पशु-पक्षी, वनस्पति आदि समूहों के अन्तर्गत आनेवाली वस्तुओं के नाम क्रम से पूछना चाहिए। इसप्रकार के शब्दों को उपयुक्त समूहों में न लेने से एक ओर सूचक को कठिनाई होती है तो दूसरी ओर उनके व्याकरणीय विश्लेषण में भी असुविधा होती है।

एक बात और है। सूचक से उसकी संस्कृति तथा उसके वातावरण के अनुकूल ही शब्द पूछने चाहिए। यदि किसी पर्वतीय अंचल के लोग हल के स्थान पर केवल कुदाल का प्रयोग करते हों तो उनमें हल के लिए प्रतिशब्द पूछने में कोई तुक नहीं है। इसीप्रकार यदि किसी क्षेत्र के लोग ऊखल-मूसल का प्रयोग न करके केवल पत्थर के जाँते या चक्की का प्रयोग करते हैं तो उनसे ऊखल-मूसल के सम्बन्ध में पूछ-ताछ करना निरर्थक है। विभिन्न स्थानों के वस्त्राभूषणों, पालतू पशुओं तथा नित्य के व्यावहार में आने वाली वस्तुओं में इतना अधिक अन्तर होता है कि अनुसन्धानकर्त्ता को इनके सम्बन्ध में सूचक से प्रश्न पूछते समय सदैव ध्यान रखना चाहिए। इससे सहज ही में यह परिणाम निकलता है कि शब्दों की कोई भी सूची, सभी क्षेत्रों में सम्पूर्ण रूप से काम नहीं दे सकती। इस सम्बन्ध में अनुसन्धानकर्त्ता के लिए यही श्रेयस्कर है कि सूचक के साथ काम करने के पूर्व, वह क्षेत्र का ध्यान रखते हुए अपनी सूची बनावे।

प्रारम्भ में अनुसन्धानकर्त्ता को सूचक से साधारण वस्तुओं के नाम ही पूछने चाहिए। उदाहरणस्वरूप यदि वह शरीर के विभिन्न अंगों के लिये शब्द पूछ रहा हो तो उसे हाथ, हथेली उँगली, अंगूठा जैसे सूक्ष्म भेदों के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। बहुत सम्भव है कि अनुसन्धेय भाषा में इसके लिए अलग-अलग शब्द न हों और व्यर्थ में सूचक भ्रम में पड़ जाय। द्विभाषिक पद्धति में एक यह भी कठिनाई होती है कि सूचक दूसरी भाषा के सूक्ष्म भेद वाले शब्दों को नहीं समझता।

यदि किसी वस्तु के नाम बताने में सूचक को किसी प्रकार की कठिनाई हो रही हो तो तुरन्त उस वस्तु को छोड़कर अन्य वस्तु के लिए प्रतिशब्द पूछना चाहिए।

वातावरण तथा संस्कृति का ध्यान रखते हुए अनुसन्धानकर्त्ता निम्नलिखित अथवा इसीप्रकार के शब्द-समूहों को अपने प्रश्नों का आधार बना सकता है—

(क) **शरीर से भाग**—सिर, सिर के बाल, हाथ, कान, आँख, नाक, गर्दन, उँगली, पेट, पीठ, दिल, पैर, हड्डी, रक्त, मांस।

(ख) **वस्त्र**—टोपी, कुर्त्ता, धोती, दुपट्टा, अँगौछा, चन्दन, माला, आदि।

(ग) **घर की वस्तुएँ**—हाँड़ी, घड़ा, बटुला, भगौना, कलछी, थाली, लोटा, गिलास, कटोरी, दोहनी, आटा, चावल, दाल, रोटी, जाँता, चक्की, ऊखल, मूसल, आम, जामुन, केला, मछली, जानवरों की खाल, आदि।

(घ) **कुटुम्ब-सम्बन्धी**—माता, पिता, भाई, बहन, पुत्री, नाती, पोता, चाचा, चाची, ताऊ, ताई, मौसा, मौसी, साला, साली, बहनोई, पतोह, आदि।

(ङ) **खेती तथा घरेलू पेशा**—हल, बैल, जुआ, फावड़ा, कुदाल, खुर्पी, हेंगा (पाटा), कुल्हाड़ी, तीर, धनुष, डेंगी, नाव, हथौड़ा, बसूला, झोंपड़ी, मचान, गुलेल, आदि।

(च) **पशु-पक्षी**—गाय, बैल, बछवा, घोड़ा, ऊँट, हाथी, कुत्ता, विल्ली, बाघ भेड़िया, भैंस, भैंसा, हिरन, बन्दर, साँप, गौरैया (बया), बगुला, तोता, मैना, मकड़ी, मक्खी, चीटी, मुर्गा, मुर्गी आदि।

(छ) **भूगोल-खगोल**—नदी, नाला, गड्ढा, झील, झरना, सोता, पर्वत, घाटी, जंगल, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, तारा, बादल, आदि।

केवल समूह में ही शब्दों को लेने की आवश्यकता नहीं है अपितु उन्हें ऊपर के क्रम में भी लेने की ज़रूरत है। अनुभव से यह देखा गया है कि शरीर के विभिन्न भागों के लिए प्रतिशब्द प्राप्त करना सब से सरल है क्योंकि उन्हें इशारे से दिखाया जा सकता है। इसके बाद वस्त्र तथा घर की वस्तुएँ आती हैं। किन्तु अन्य समूहों में कोई क्रम नहीं है और उन्हें आगे-पीछे लिया जा सकता है।

२.१७ प्रत्यय युक्त शब्द अथवा पद

विभिन्न वस्तुओं के नाम एकत्र कर लेने के बाद इस बात का अनुसन्धान करना चाहिए कि ये शब्द किस ढाँचे में प्रयुक्त होते हैं। सब से सरल ढाँचा जिसका पता लगाना आवश्यक है, सम्बन्ध अथवा अधिकारवाचक सर्वनाम के साथ इन शब्दों का प्रयोग है। उदाहरणस्वरूप 'घर' तथा 'कुत्ता' शब्दों को जान लेने के बाद अनुसन्धान कर्त्ता को 'मेरा घर' (एक वचन), 'तुम्हारा घर', 'उसका घर', जानना आवश्यक है। इसी प्रकार 'मेरा कुत्ता', 'तुम्हारा कुत्ता', 'उसका कुत्ता' का भी ढाँचा वही है। बॅंगला 'आमार बाड़ी', 'तोमार बाड़ी', 'ताहार बाड़ी', तमिल, 'एन् बीडु', 'उन वीडु', 'अवन् वीडु', 'एनडु नाइ', 'उनडु नाइ', 'अवनडु नाइ' तथा अंग्रेजी 'माइ हाउस', 'योर हाउस', 'हिज़ हाउस' एवं 'माइ डॉग', 'योर डॉग' तथा 'हिज़

डॉग' भी एक ही ढाँचे में हैं। यहाँ 'मेरा', 'तुम्हारा', 'उसका' अधिकारवाचक सर्वनाम के रूपों को संज्ञापद से पृथक किया जा सकता है। तमिल में घर के साथ इस सर्वनाम के जो रूप प्रयुक्त होते है, उन्हें जब 'कुत्ता' के साथ प्रयुक्त करते हैं तो उनमें 'ड्' को संयुक्त करना पड़ता है। अनुसन्धानकर्त्ता को प्रतीत होगा कि यह कदाचित् लिंगभेद के कारण है। जब वह अधिकारवाची सर्वनाम के इन रूपों के साथ अन्य साधारण (संज्ञा) शब्दों के इसीप्रकार के उदाहरण एकत्र करेगा तो उसे निश्चय हो जायेगा कि तमिल में लिंगभेद के कारण ही ऐसा है।

केकूचि जैसी एकाक्षर परिवार की भाषा में अनुसन्धानकर्त्ता को थोड़ी कठिनाई होगी। यहाँ घर के लिए 'ओंचओंच' तथा कुत्ते के लिए 'चि' शब्दों को प्राप्त करने के वाद जब वह मेरा घर, मेरा कुत्ता के लिये 'ग्वोचोच' एवं 'इन्चि' शब्दों को सुनेगा तो वह 'ग्व्' एवं 'इन्' को पृथक न कर सकेगा क्योंकि इस रूप में न तो इनकी सत्ता है और न कुछ अर्थ, किन्तु जब उसे भाषा की गठन अथवा उसके ढाँचे का ज्ञान हो जायेगा तो उसे स्पष्ट हो जायेगा।

अधिकारवाची सर्वनाम के इन रूपों को प्राप्त करने के बाद इनके बहुवचन के रूपों को प्राप्त करना चाहिए। इसीप्रकार इनके पुंल्लिग एवं स्त्रीलिंग में, यदि, अलग-अलग रूप उपलब्ध हों (जैसा कि अंग्रेज़ी में है) तो उन्हें भी प्राप्त करना चाहिए। कतिपय भाषाओं में सर्वनाम के व्यक्तिसहित (inclusive) तथा व्यक्तिरहित (exclusive) रूप भी होते हैं। इनके संकलन की भी आवश्यकता है।

प्रारम्भ में क्रिया में संयुक्त होने वाले प्रत्ययों की अपेक्षा भाषा सम्बन्धी सामान्य व्याकरण के रूपों को ही संगठित करके अध्ययन करने का प्रयत्न करना चाहिए। उदाहरणस्वरूप किसी समूह के एकप्रकार के सभी शब्दों को पृथक-पृथक लेकर, अधिकारवाची सर्वनामों के साथ उनका प्रयोग करना चाहिए। यदि इनके रूप नियमित होंगे तो इसी तरह अन्य समूहों में भी नियमितता मिलेगी। किन्हीं भी बीस शब्दों को लेकर विभिन्न पुरुषों के सन्दर्भ में नियमबद्धता की परीक्षा की जा सकती है। यह सम्भव है कि समूह के शब्दों में एकप्रकार की नियमितता हो और दूसरे समूह के शब्दों में दूसरे प्रकार की नियमबद्धता हो। अधिकृत रूपों (Possessed forms) को प्राप्त करते समय दो महत्त्वपूर्ण बातों पर ध्यान रखना चाहिए—(१) सूचक को अधिकारवाची सर्वनाम का ज्ञान है (२) ऐसे शब्दों को लेना चाहिए जो सार्थक हों। अधिकारवाची सर्व-नाम का ज्ञान न होने से यह हो सकता है कि अनुसन्धानकर्त्ता 'मेरा घर' का अनु-

वाद माँगे और सूचक 'तुम्हारा घर' का अनुवाद दे। सूचक की कठिनाइयों को तनिक ध्यान में रखकर यदि अनुसन्धानकर्त्ता काम करे तो किसीप्रकार के भ्रम की गुंजाइश न रह जाय। सच तो यह है कि सफलतापूर्वक कार्य की सम्पन्नता के लिए सदैव सूचक की सुविधा का ध्यान रखना चाहिए। वास्तव में वाक्य ऐसे होने चाहिए जो सूचक के लिए सार्थक हों। यदि अनुसन्धानकर्त्ता सूचक से 'मेरा वायुयान', 'तुम्हारा वायुयान', 'उसका वायुयान', को अपनी भाषा में अनूदित करने को कहे तो बहुत सम्भव है कि सूचक उसे यह कहकर टाल दे कि उसके पास कोई वायुयान नही है, अतएव वह इन वाक्यों को अनूदित करने में असमर्थ है। यदि इसप्रकार के वाक्यों के अनुवाद नितान्त आवश्यक हों तो सूचक को यह भलीभाँति समझा देना चाहिए कि अनुसन्धानकर्त्ता यों ही ऐसे वाक्य का अनुवाद पूछ रहा है और अनुवाद देने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि अनुवादक के पास वायुयान भी हो।

अनुसन्धानकर्त्ता को प्रारम्भ में अधिकारवाची सर्वनामों के रूपों को ही क्यों लेना चाहिए, इसके निम्नलिखित कारण हैं—

१. इनके रूप प्रायः अनियमित होते हैं और इनसे भाषा की गठन से सम्बन्ध रखने वाले अनेक मूल रूपों (Morphological classes) का पता लगता है।

२. ये कारक, लिंग तथा सम्बन्ध के अनुसार सूचक से सरलतापूर्वक प्राप्त किए जा सकते हैं।

३. प्रत्येक भाषा में इनका सर्वाधिक प्रयोग भी मिलता है और अन्य रूपों की अपेक्षा ये सरल भी होते हैं।

४. सर्वाधिक प्रयोग में आने के कारण नवीन भाषा सीखने के लिए इनका अत्यधिक महत्त्व है।

५. अन्य सर्वनाम के रूपों तथा क्रियापदों के कर्त्ता एवं कर्म को द्योतित करने वाले प्रत्ययों से भी प्रायः इनका घनिष्ट सम्बन्ध रहता है।

इसके बाद वचन के सम्बन्ध में सामग्री एकत्र करनी चाहिए। पूर्व परिचित संज्ञापदों के ही एकवचन, द्विवचन तथा बहुबचन के रूप प्राप्त करने के प्रयत्न करने चाहिए। कतिपय भाषाओं में एकवचन तथा बहुवचन में अन्तर नहीं होता किन्तु कई अन्य भाषाओं में इनका विश्लेषण भाषाशास्त्रीय दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होता है। हिन्दी तथा अंग्रेज़ी में कई द्रव्यवाचक संज्ञापदों—आटा (Flour), बालू (sand) गेहूँ (Wheat)—के बहुवचन के रूप नही होते किन्तु हिन्दी में

कतिपय शब्दों के एकवचन तथा बहुवचन, दोनों के रूप साधु माने जाते हैं। उदाहरणार्थ प्रयाग में 'मूली कैसे दोगी', प्रयोग साधु है, किन्तु दिल्ली में 'मूलियाँ कैसे दोगी,' प्रयोग प्रचलित है। अनुसन्धानकर्त्ता को इसप्रकार की सभी समस्यायें ज्ञात होनी चाहिए और उसे अनुसन्धेय भाषा को कृत्रिम साँचे में ढालने से बचना चाहिए।

विभिन्न भाषाओं की प्रकृति के अनुसार ही संज्ञापदों के निश्चित-अनिश्चित आदि भेद होते है। इसीप्रकार कारकों के अनुसार भी इनके रूप परिवर्तित होते रहते है। आरम्भ में इनका पता लगाना कठिन है। इसीप्रकार संज्ञापदों के पारस्परिक सम्बन्ध को भी सूचक से प्राप्त करना कठिन है। इन सब का विश्लेषण तो भाषा सम्बन्धी पूर्ण सामग्री (टेक्स्ट) की प्राप्ति के बाद ही सम्भव है।

२.१८ सामान्य क्रियापद

सामान्य क्रियापदों को प्राप्त करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए—

१. सरलता से प्रदर्शित करने योग्य क्रियापदों को सर्वप्रथम लेना चाहिए। उदाहरणस्वरूप 'सोचता' 'होता' 'जानता' आदि शब्दों के बजाय 'चलता' 'दौड़ता' 'कूदता', 'देखता', 'मारता', 'खाता' आदि को लेना अधिक उपयुक्त है।

२. सदैव क्रियारूपों को पूरे वाक्य में रखकर प्रयोग करना चाहिए; यथा— 'मैं चलता हूँ', 'हम दौड़ते है', 'वे देखते हैं', आदि। अनुसन्धानकर्त्ता को सूचक से धातु रूपों को नही पूछना चाहिए। इसीप्रकार 'जाओ', 'चलो', 'दौड़ो' जैसे आज्ञार्थक के रूपों को भी नही पूछना चाहिए, क्योंकि कभी-कभी इनके उच्चारण तथा रूपों में विशिष्टता होती है।

३. प्रायः घटमान वर्तमान के रूपों का प्रयोग करना चाहिए। यथा—'वह चलता है', 'वे दौड़ते है'।

४. अनुसन्धानकर्त्ता को अन्यपुरुष एकवचन तथा बहुवचन के रूपों का क्रियापद के साथ प्रयोग करते हुए अपना कार्य प्रारम्भ करना चाहिए। उत्तम तथा मध्यम पुरुष से कार्य प्रारम्भ करने पर सूचक प्रायः भ्रम में पड़ जाता है। जब अनुसन्धानकर्त्ता अनुसन्धेय भाषा की गठन एवं धातुरूपों तथा क्रियापदों से परिचित हो जाता है तब किसीप्रकार के भ्रम की गुंजायश नहीं रहती और तब वह सूचक से उत्तम तथा मध्यम पुरुष के साथ प्रयुक्त होने वाले क्रियापदों को भी पूछ सकता है।

५. अनुसन्धानकर्त्ता को सर्वप्रथम, 'चलना' 'दौड़ना' 'गिरना' 'चढ़ना' 'कूदना'

'तैरना' 'गाना' 'सोना' 'हँसना' 'बोलना' जैसी अकर्मक धातुओं को लेना चाहिए। तदुपरान्त उसे 'देखना' 'सुनना' 'सूँघना' 'मारना' 'चाहना' 'पहिचानना' जैसी सम्भावित सकर्मक धातुओं को चुनना चाहिए। कभी-कभी, कतिपय भाषाओं में, केवल रूप से ही, अकर्मक-सकर्मक के भेद का पता लगाना कठिन होता है। किन्तु अनुसन्धानकर्त्ता को जैसे-जैसे भाषा की गठन का ज्ञान होता जायेगा वैसे ही वैसे उसे अकर्मक-सकर्मक का अन्तर भी स्पष्ट होता जायेगा।

२.१९ प्रत्यययुक्त क्रियापद

प्रत्यययुक्त क्रियापदों की निम्नलिखित व्याकरणीय वर्गों में परीक्षा करनी चाहिए—

(१) पुरुष (२) काल (३) नकारात्मक भाव (४) प्रश्नसूचक भाव।

ऊपर के चारों वर्ग, व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक, दोनों, दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं।

अनुसन्धानकर्त्ता को सूचक से विभिन्न पुरुषों के साथ अकर्मक तथा सकर्मक क्रियापदों के रूपों को प्राप्त करना चाहिए। यदि सकर्मक क्रियापदों के कर्मकारक में कोई सर्वनाम आता हो तो इसप्रकार की सभी सम्भावनाओं को ढूँढ़ निकालना चाहिए। इसके लिए वाक्यों का ऐसा ढाँचा बनाना चाहिए ताकि सभी रूप प्राप्त हो जायँ।

यदि किसी भाषा में, एकवचन तथा वहुवचन, व्यक्तिसहित तथा व्यक्तिरहित, स्त्रीलिंग, पुल्लिग तथा क्लीवलिंग, तथा निर्जीव, मानव और मानवेतर शब्दों के लिए भिन्न प्रकार के क्रियारूप प्रयुक्त होते हों तो निश्चितरूप से वह भाषा जटिल होगी। एस्कीमो भाषा में, विभिन्न प्रकार के कर्ताकर्म वाची शब्दों के लिए, क्रिया के सत्तावन रूप होते हैं।

जहाँ तक काल से सम्बन्ध है, क्रिया के वर्तमान, अतीत तथा भविष्यत् के रूपों को प्राप्त करना चाहिए। काल सम्बन्धी अन्य सूक्ष्म भेदों को बताना, सूचक के लिए कठिन होता है। कभी-कभी तो अतीत एवं भविष्यत् के रूपों को ही बताने में उसे कठिनाई होती है। अनेक बार तो टेक्स्ट की प्राप्ति के बाद ही इस कठिनाई का निराकरण होता है।

कतिपय भाषाओं (उदाहरणस्वरूप, बंटू) के नकारात्मक वाक्यों के रूप नितान्त जटिल होते हैं, किन्तु चाहे ये जटिल अथवा सरल हों, भाषा के विश्लेषणात्मक अध्ययन तथा उसकी गठन के अध्ययन के लिए इन्हें प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है।

भाषा के ऊपर के चार प्रकार के रूपों ––कर्त्ता-कर्म, काल (वर्तमान, अतीत तथा भविष्यत्), नकारात्मक तथा प्रश्नवाचक––के ज्ञान से उसका गठनात्मक रूप इसप्रकार स्पष्ट हो जाता है कि अनुसन्धान का आगे का कार्य द्रुतगति से अग्रसर होने लगता है। एक बात और है। इनके ज्ञान से अनुसन्धानकर्त्ता भाषा को भी शीघ्र सीख लेता है और भाषाशास्त्रीय विश्लेषण का कार्य भी उसके लिए सरल हो जाता है।

कभी-कभी अनुसन्धानकर्त्ता समस्त सामग्री एकत्र कर लेने के बाद उसका विश्लेषण प्रारम्भ करता है। यह भारी भूल है। वस्तुतः सामग्री एकत्र करने तथा विश्लेषण का कार्य साथ-साथ करना चाहिए। सच बात तो यह है कि विश्लेषण करने से ही इस बात का पता चलता है कि अनुसन्धेय सामग्री मे क्या कमी है।

२.२० सामान्य शब्द (पद) तथा क्रियापद का समिश्रण

पीछे यह बात मान ली गई है कि सूचक से किसी भाषा के सज्ञा तथा क्रिया-पद प्राप्त होंगे। किन्तु इसके अनेक अपवाद भी है और यह भाषाओं की गठन पर निर्भर है। ससार में ऐसी अनेक भाषाएँ है जिनमें संज्ञापदों को क्रियापदों से पृथक करना आसान काम नही है। जो हो, जिन भाषाओं में संज्ञा तथा क्रिया के पृथक-पृथक रूप उपलब्ध होते है उनमें इन दोनों का समिश्रण करके वाक्य रचना को देखना आवश्यक है। वाक्य रचना भी वस्तुतः ऐसी होनी चाहिए जिसमें क्रिया-रूप बदले बिना ही सज्ञापदों के रूप बदले जा सकें।

उदाहरणार्थ––

१. लड़का दौड़ता है।
२. मनुष्य दौड़ता है।
३. घोड़ा दौड़ता है।
४. बैल दौड़ता है।
५. हिरन दौड़ता है।
६. चूहा दौड़ता है।

ऊपर एकवचन, संज्ञापदों के रूप लिए गए है। बहुवचन में इन्ही के रूप इसप्रकार होंगे––

१. लड़के दौड़ते है।
२. मनुष्य दौड़ते है।
३. घोड़े दौड़ते है।
४. बैल दौड़ते है।

५. हिरन दौड़ते हैं ।

६. चूहे दौड़ते हैं ।

अब इन्हीं संज्ञापदों के स्त्रीलिंग, एकवचन तथा बहुवचन के रूप लिए जा सकते हैं । स्त्रीलिंग, एकवचन के रूप इसप्रकार होंगे:—

१. लड़की दौड़ती है ।

२. स्त्री दौड़ती है ।

३. घोड़ी दौड़ती है ।

४. गाय दौड़ती है ।

५. हिरनी दौड़ती है ।

६. चुहिया दौड़ती है ।

इनके बहुवचन के रूप इसप्रकार होंगे:—

१. लड़कियाँ दौड़ती हैं ।

२. स्त्रियाँ दौड़ती हैं ।

३. घोड़ियाँ दौड़ती हैं ।

४. गायें दौड़ती हैं ।

५. हिरनियाँ दौड़ती हैं ।

६. चुहियाँ दौड़ती हैं ।

ऊपर के ढाँचों में क्रिया-रूप निश्चित हैं, किन्तु ऐसी भी भाषाएँ हैं जहाँ दो पैर से दौड़ने वालों के लिए एकप्रकार के क्रियारूप प्रयुक्त होते हैं और चार पैर से दौड़ने वालों के लिए दूसरे प्रकार के क्रियापद व्यवहृत होते हैं । एक भाषा में वाक्यरचना का जो ढाँचा है, वह दूसरी भाषा में परिवर्तित हो जाता है ।

नीचे के ढाँचे में संज्ञापद को अपरिवर्तित रखकर क्रियापदों को परिवर्तित किया जाता है—

१. लड़का दौड़ता है ।

२. लड़का चलता है ।

३. लड़का गिरता है ।

४. लड़का कूदता है ।

५. लड़का हँसता है ।

६. लड़का रोता है ।

बहुवचन में 'लड़के दौड़ते हैं' हो जायेगा और अन्य क्रियापदों के रूप 'दौड़ते

हैं' के ही आदर्श पर निष्पन्न होंगे। इसीप्रकार स्त्रीलिंग, एकवचन तथा बहुवचन के रूप 'लड़की दौड़ती है' तथा 'लड़कियाँ दौड़ती हैं' के आदर्श पर निष्पन्न होंगे।

क्रिया तथा संज्ञापदों को अपरिवर्तित रखकर विभिन्न कालों, वचनों तथा नकारात्मक एवं प्रश्नवाचक रूपों में वाक्यरचना की जा सकती है।

उदाहरणार्थ—

१. लड़का दौड़ता है।
२. लड़के दौड़ते हैं।
३. लड़का दौड़ा।
४. लड़के दौड़े।
५. उसका लड़का दौड़ेगा।
६. उसके लड़के दौड़ेंगे।
७. उसका लड़का नहीं दौड़ेगा।
८. उसके लड़के नही दौड़ेंगे।
९. क्या उसका लड़का दौड़ेगा ?
१०. क्या उसके लड़के दौड़ेंगे ?
११. क्या उसका लड़का नहीं दौड़ेगा ?
१२. क्या उसके लड़के नहीं दौड़ेंगे ?

कर्मकारक के रूप को लेकर भी ऐसा ढाँचा बनाया जा सकता है। यथा—

१. उसने पुरुष को मारा।
२. उसने स्त्री को मारा।
३. उसने लड़के को मारा।
४. उसने लड़की को मारा।
५. उसने घोड़े को मारा।
६. उसने घोड़ी को मारा।
७. उसने मेज को मारा।
८. उसने कुर्सी को मारा।

कर्म को अपरिवर्तित रखकर विभिन्न क्रियापदों को लिया जा सकता है। यथा—

१. उसने मनुष्य को मारा।
२. उसने मनुष्य को डाँटा।

३. उसने मनुष्य को पीटा।

४. उसने मनुष्य को घसीटा।

५. उसने मनुष्य को पटका।

६. उसने मनुष्य को देखा।

इसप्रकार के वाक्यों के ढाँचे बनाकर ही विभिन्न कारकों के अन्तर को स्पष्ट-रूप से हृदयंगम किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, यदि संज्ञापदों के कर्त्ता तथा कर्मकारक के रूपों में अन्तर है तो सभी संज्ञापदों को एक अथवा दूसरे ढाँचे में रखकर सभी रूपों को प्राप्त किया जा सकता है। प्रायः इसप्रकार के ढाँचों की सहायता से ही सूचक, किसी भाषा के विभिन्न व्याकरणीय रूपों को बता सकता है।

जब भाषा-सामग्री एकत्र करने का कार्य कुछ आगे बढ़ जाय तो सूचक से वाक्यों के अनूदित कराने के बजाय उससे एक ऐसी कहानी का अनुवाद कराना चाहिए जिसके एक वाक्य का दूसरे वाक्य से सम्बन्ध हो। इसके अनुवाद में भी सूचक को कठिनाई न होगी और अनुसंधानकर्त्ता को 'टेक्स्ट' के सदृश ही भाषा-सामग्री प्राप्त हो जायेगी। यथा—

(१) एक लड़के ने जंगल में भालू की आवाज़ सुनी।

(२) लड़के ने जंगल में भालू देखा।

(३) लड़के ने भालू का पीछा किया।

(४) भालू ने लड़के को देखा।

(५) भालू रुक गया।

(६) भालू लड़के को देखकर चीख उठा।

(७) लड़का डर गया।

(८) लड़का भागा।

(९) भालू ने लड़के का पीछा किया।

(१०) लड़का जंगल से भाग गया।

इसी ढाँचे पर अन्य शब्दों को लेकर दूसरी कहानी इस रूप में गढ़ी जा सकती है—

(१) एक मनुष्य ने लम्बी घासों के बीच एक भैंसे की आवाज़ सुनी।

(२) मनुष्य ने लम्बी घासों के बीच भैंसे को देखा।

(३) मनुष्य भैंसे के पीछे चला।

(४) भैंसे ने मनुष्य को देखा।

(५) भैसा रुक गया।
(६) भैसा मनुष्य को मारने दौडा।
(७) मनुष्य डर गया।
(८) मनुष्य भागा।
(९) भैसे ने मनुष्य का पीछा किया।
(१०) मनुष्य भाग गया।

विशेषणो का प्रयोग करके इस ढाँचे को और भी बडा बनाया जा सकता है। यथा——

(१) एक छोटे बच्चे ने भुट्टे के खेत मे एक मोटे स्यार की आवाज सुनी।
(२) छोटे बच्चे ने भुट्टे के खेत मे मोटे स्यार को देखा।
(३) छोटे बच्चे ने स्यार का पीछा किया।
(४) मोटे स्यार ने छोटे बच्चे को देखा।
(५) मोटा स्यार रुक गया। इत्यादि।

एक ही शब्द के एक विशेष ढाँचे मे बारम्बार प्रयोग से अनुसन्धानकर्त्ता परेशान हो जाता है और कभी-कभी उसे ऐसा प्रतीत होने लगता है कि भाषा-सामग्री प्राप्त करने की यह पद्धति ही बेकार और अनावश्यक है। किन्तु कोई भी भाषाशास्त्री एकाएक, 'टेक्स्ट' एकत्र करने का कार्य आरम्भ नही कर सकता। आरम्भ मे तो उसके लिए भाषा-विशेष की ध्वनियो, उसकी गठन, उसके वाक्य-रूप एव उसके शब्द-समूह से परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। इन सभी बातो का ज्ञान, अनुसन्धानकर्ता को, एकाएक और अपने आप नही हो सकता। इसके लिए तो उसे ऊपर की पद्धति से कार्य करना होगा और तभी उसे भाषा की गठन का पता चल सकेगा। जब तक एक ही तथा उसीप्रकार के अन्य शब्दो का बारबार वाक्यो मे प्रयोग न किया जाय तब तक भाषा की गठन अथवा उसके ढाँचे का पता नही चल सकता। इसकी जानकारी के लिए 'टेक्स्ट' से भी सामग्री प्राप्त की जा सकती है किन्तु वहाँ वह, यत्र-तत्र, इतनी अधिक बिखरी रहती है कि उसे ढूँढ निकालना आसान काम नही है। यहाँ एक बात और उल्लेखनीय है। जब अनुसन्धानकर्त्ता अन्य भाषा के माध्यम से वाक्य अथवा वाक्यो का अनूदित रूप, सूचक से प्राप्त करता है, तो उसमे पदविज्ञान सम्बन्धी तत्त्व तो बहुत कुछ ठीक रहते है किन्तु वाक्य का ढाँचा यत्किंचित विकृत हो सकता है। टेक्स्ट की प्राप्ति के पश्चात् ही, आगे चलकर, इस बात का पता चल सकता है कि इसप्रकार की विकृति हुई है अथवा नही।

ऊपर भाषा-सामग्री प्राप्त करने की जिस प्रणाली का वर्णन किया गया है, वह रूपतालिकात्मक-पद्धति (Paradigmatic approach) के नाम से विख्यात है। इसमे निम्नलिखित त्रुटियाँ है—

१. कभी-कभी अन्य भाषा के वाक्यो को अनूदित करते समय सूचक भ्रम में पड़ जाता है, क्योकि वास्तव मे इसप्रकार के कार्य का उसे कुछ भी अनुभव नही होता।

२. सूचक, अनुसन्धानकर्त्ता को अनुवादरूप मे शब्दरूपो तथा धातुरूपों की जो सामग्री देता है उसका आधार वस्तुत. अन्य भाषा होने से अनुसन्धेय भाषा के सूक्ष्म भेद-प्रतिभेद वाले रूप नही आ पाते।

३. इस पद्धति मे एक अन्य त्रुटि यह भी है कि इसके द्वारा सूचक की भाषा की गठन अथवा उसके ढाँचे का पूर्णतया पता लगाना असम्भव है।

४. इस पद्धति के द्वारा अनुसन्धेय भाषा के वाक्य-विन्यास के ढाँचे (Syntactic Structure) का पता नही चल पाता, क्योकि अनुसन्धेय भाषा के वाक्य अनूदित होते है।

इन सब त्रुटियो के होते हुए भी यदि सूचक योग्य और सावधान है तो उससे बड़े-बड़े वाक्यों के अनूदित रूप भी प्राप्त किये जा सकते हैं। यथा—(१) जब युवक जंगल मे गया तो उसने एक भयानक भालू देखा। (२) इस भयानक भालू को देखकर वह अत्यधिक भयभीत हुआ। (३) चूँकि वह अत्यधिक भयभीत था अतएव वह दौड़ते हुए गाँव की ओर भागा। (४) जब वह अपने घर पहुँचा तो उसने अपनी बन्दूक उठाई।

सूचक से भाषा-सामग्री प्राप्त करने के लिये इसप्रकार के अनन्त वाक्य गढ़े जा सकते है, किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि कुछ दिनों तक इसप्रकार के अनुवाद के बाद ही टेक्स्ट प्राप्त करने का यत्न किया जाय। एक बात और है। रूपतालिकात्मक पद्धति से प्राप्त भाषा-सामग्री को एक बार टेक्स्ट से मिलाकर देख लेना चाहिए। ऐसा करने से अर्थ एवं वाक्य-विन्यास सम्बन्धी अशुद्धि की बहुत कम सम्भावना रह जाती है।

२.२१ टेक्स्ट (कहानी)

सूचक से अन्य भाषा के माध्यम से सामग्री प्राप्त करते समय बारम्बार अनुसन्धानकर्त्ता को यह पूछना पड़ता है कि इसके लिये आपकी भाषा में क्या शब्द है अथवा इस वाक्य को आप अपनी भाषा में कैसे कहते हैं। इस पद्धति से प्राप्त

सामग्री के अतिरिक्त सूचक से जो भी सामग्री प्राप्त की जाती है, उसे टेक्स्ट कहते है। इसके छै भेद है—

(१) **अभिवादन।**
(२) **वार्त्तालाप।**
(३) **किसीप्रकार का वर्णन।**
(४) **परम्परा से चली आती हुई लोककथायें।**
(५) **लोकगीत तथा लोकगाथायें।**
(६) **कहावतें एवं मुहावरे।**

(१) अभिवादन

सूचक से सामग्री प्राप्त करते समय यह अत्यावश्यक है कि उसका नाम, समय तिथि तथा उसके धर्म आदि को भी लिख लिया जाय।

(२) वार्त्तालाप

वार्तालाप को लिख लेना अत्यधिक कठिन होता है। कतिपय अनुसंधानकर्त्ता इसके लिये शीघ्रलिपि अथवा प्रतीकों का व्यवहार करते हैं। यह पद्धति ठीक है, किन्तु यह आवश्यक है कि वार्त्तालाप के बाद ही उसे तुरन्त लिपिबद्ध कर लिया जाय। आजकल अमेरिका में टेपरिकार्डर की जो नवीन मशीन आविष्कृत हुई है वह इस कार्य के लिये अत्यधिक उपयुक्त है; किन्तु अनुसंधेय भाषा के प्रारंभिक विश्लेषण मे इससे बिल्कुल सहायता नही मिलती।

वाक्य-विन्यास तथा उसकी स्वर-लहर (Intonation) आदि के अध्ययन के लिये टेपरिकार्डर द्वारा ली गई सामग्री से अत्यधिक सहायता मिलती है, किन्तु यह कार्य तो अनुसंधेय भाषा के कुछ ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद ही सम्भव है। यदि वार्त्तालाप के लम्बे वाक्यों को अनुसंधानकर्त्ता न लिख सके तो भी उसे उसके कुछ अश को ही लिख लेना चाहिए। वार्तालाप मे कभी-कभी शब्दों के ध्वन्यात्मक रूप संक्षिप्त हो जाते है, इसका ज्ञान अनुसंधान के लिये आवश्यक है।

(३) किसी प्रकार का वर्णन

वर्णनात्मक टेक्स्ट के अन्तर्गत वह सामग्री आती है जो सूचक से किसी घटना के वर्णन के रूप में प्राप्त की जाती है। इसके लिये अनुसंधानकर्ता सूचक से किसी यात्रा, शिकार, महामारी, अकाल, भवन अथवा नौका-निर्माण आदि के वर्णन को करने के लिये कहता है और उसे लिखता जाता है। चूँकि इसप्रकार का वर्णन एक विशेष शैली का अनुगमन करता है इसलिए अनुसंधानकर्ता को किसी प्रकार की कठिनाई नही होती।

(४) परम्परागत कथायें

परम्परा से चली आती हुई लोककथायें वास्तव में सर्वोत्कृष्ट टेक्स्ट होती हैं। यदि सूचक को कहीं बहुत कहानियाँ आती हों अथवा कहानी कहने में वह रस लेता हो तो उससे इसप्रकार की प्रभूत सामग्री प्राप्त की जा सकती है। किन्तु यहाँ यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि वर्णनात्मक टेक्स्ट के रूप में प्राप्त सामग्री की अपेक्षा कथारूप में प्राप्त सामग्री का विश्लेषण प्रायः कठिन होता है। उदाहरणार्थ—

वर्णनात्मक टेक्स्ट में जब सूचक अपने व्यक्तिगत अनुभवों अथवा विविध घटनाओं का वर्णन करता है तो वह बहुत कुछ स्पष्ट होता है, किन्तु कहानियों में यही कार्य पात्रों द्वारा सम्पन्न होने के कारण कभी-कभी, विभिन्न व्याकरण-सम्बन्धी रूपों को प्राप्त करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। एक बात और है, कहानी कहते समय कथाकार इस बात को मान लेता है कि श्रोता बहुत ही बातें स्वयं समझ रहा है।

(५) लोकगीत तथा लोककथायें

लोकगीतों तथा लोककथाओं द्वारा प्राप्त सामग्री प्रायः दुरूह होती है, क्योंकि इनमें कहीं-कहीं भाषा के प्राचीन एवं अप्रचलित रूप भी रहते हैं। इसके अतिरिक्त इनमें अनेक ऐसी अर्न्तकथाओं एवं दैवी घटनाओं का समावेश रहता है जिनका समझना कठिन होता है।

(६) कहावतें एवं मुहावरे

कहावतें एवं मुहावरें भी लोकगीतों की भाँति ही दुरूह होते हैं। यह प्रायः अभिधार्थ की अपेक्षा व्यंजनार्थ द्योतित करते हैं। यह ठीक है कि कहावतों, मुहावरों तथा लोकगीतों के अध्ययन एवं विश्लेषण के बिना भाषा सम्बन्धी अनुसंधान-कार्य को पूर्ण नहीं कहा जा सकता, किन्तु अन्यप्रकार के टेक्स्टों के अध्ययन एवं विश्लेषण के पश्चात ही इनका अध्ययन करना उपयुक्त है। एक बात और है। अन्य प्रकार की भाषा-सामग्री के विश्लेषण के बाद लोकगीतों, लोककथाओं, आदि जैसे विशिष्ट टेक्स्ट का विश्लेषण एवं अनुशीलन अनुसंधानकर्ता के लिये सरल हो जाता है।

टेक्स्ट को लिखते समय भी बहुत सावधानी के साथ कार्य करने की आवश्यकता है। इसकी एक पंक्ति लिखने के बाद कम से कम तीन पंक्तियों का स्थान छोड़ देना चाहिए। अनुसंधानकर्ता को शब्दों अथवा वाक्यों के अर्थ जाने बिना ही पहले पूरी कहानी लिख लेनी चाहिए। जब कहानी लिख जाय तो अनुसंधान-

कर्ता को उसे धीरे-धीरे पढ़ना चाहिए। इस प्रक्रिया से लेखन सम्बन्धी अनेक अशु-द्धियाँ मिलेगी। उन्हे शुद्धरूप से लिख लेना चाहिए। इसके साथ अथवा इसके बाद ही प्रत्येक शब्द अथवा वाक्य का अर्थ लिखना चाहिए। एक बहुत महत्वपूर्ण कार्य टेक्स्ट की प्रत्येक इकाई को पृथक-पृथक करने का है। यह कार्य कहानी लिखते समय ही सम्पन्न करना चाहिए। शब्दों तथा वाक्यों का अर्थ लिखते समय तो प्रत्येक इकाई को अलग-अलग करना परमावश्यक है। प्रत्येक शब्द का अर्थ उसके नीचे ही लिखना चाहिए। कभी-कभी एक शब्द का अर्थ देने के बजाय सूचक के लिये किसी वाक्य या वाक्यांश का अर्थ देना सरल होता है। इस दशा में वाक्य का अर्थ शब्दार्थ से कुछ भिन्न होता है। इस तत्व को अनुसंधानकर्ता को स्पष्टतया समझ लेना चाहिए और जहाँ इसप्रकार की बात हो वहाँ उसे शब्दों और वाक्यों के अर्थो को अलग-अलग देकर उनके अन्तरों को भी लिख लेना चाहिए। यदि अनुसन्धेय भाषा का वाक्य-विन्यास तथा उसकी गठन, जिस भाषा के माध्यम से कार्य किया जा रहा है उससे, भिन्न हो तो अनुसधेय भाषा का स्वतंत्र अनुवाद देना ही आवश्यक है।

इसप्रकार से उपलब्ध भाषा-सामग्री के विश्लेषण के लिये अन्ततोगत्वा रूप-तालिकात्मक पद्धति को ही अपनाना पड़ता है। इसके सम्बन्ध मे आगे निवेदन किया जायगा।

२.२२ सामग्री-संकलन

सामग्री के संकलन मे निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है—

(१) भाषा-सामग्री को ध्वन्यात्मक लिपि में ही लिखना चाहिए। आजकल इसके लिये अन्तर्राष्ट्रीय ध्वनि-परिषद् की लिपि का अधिक व्यवहार होता है। अमेरिका में लोग प्रायः पाइक (Pike) द्वारा आविष्कृत लिपि का अधिक व्यवहार करते है। यदि अनुसंधेय भाषा को लिखने के लिये कोई अन्य लिपि उपलब्ध भी हो तो उसके बजाय ऊपर लिखित दोनों लिपियों मे से किसी एक का प्रयोग ही श्रेयस्कर है। परम्परागत लिपियों के द्वारा लिखने से अनेक अशुद्धियों की सम्भावना रहती है।

(२) अनुसधेय भाषा को लिखते समय पेंसिल अथवा स्याही का प्रयोग करना चाहिए। अनेक अनुसंधानकर्ता पेसिल से लिखना ही उपयुक्त समझते है, क्योंकि एक तो पेंसिल को सदैव साथ रखना सरल है, दूसरे स्याही की दावात साथ रखने की झंझट नही होती और तीसरे यदि लिखित सामग्री पर कही पानी के छीटे भी पड़ गये तो उसके खराब होने का भय नही रहता।

(३) लिखने के लिए बिना लाइन खिंचे हुए फ़ुलस्केप कागज़ का व्यवहार करना अधिक उपयुक्त होता है। प्रत्येक पृष्ठ पर पर्याप्त भाषा-सामग्री को लिखना अच्छा होता है। ऐसा करने से शब्दों के पारस्परिक सम्बन्ध का ज्ञान सरलता-पूर्वक हो जाता है। इसके बाद इस सामग्री को छोटे-छोटे कागज़ के टुकड़ों (Slips या cards) पर लिखा जा सकता है।

(४) सूचक के बोलने की स्वाभाविक गति के अनुसार ही लेखन कार्य सम्पन्न होना चाहिए। सूचक से धीरे-धीरे बोलने का आग्रह करना चाहिए। ऐसा न करने से अनुसधानकर्ता प्रत्येक ध्वनि को ग्रहण करने एवं शुद्ध लिखने में सफल न हो सकेगा। किन्तु इसके साथ ही साथ अनुसंधानकर्ता को सदैव सूचक के स्वाभाविक उच्चारण गति का ही अनुगमन करना चाहिए।

(५) अनुसन्धानकर्ता को सूचक की सूक्ष्मातिसूक्ष्म ध्वनियों को लिखने का प्रयत्न करना चाहिए। कभी-कभी अनुसन्धानकर्ता आरम्भ से ही ध्वनिग्राम के अनुसार लिखना प्रारम्भ कर देते हैं और कतिपय ध्वनियों को अनावश्यक समझकर छोड़ देते हैं। यह भारी भूल है। ऐसा करने से, कभी-कभी महत्त्वपूर्ण ध्वनियाँ छूट जाती हैं।

(६) ध्वनि सम्बन्धी सभी तत्त्वों को अत्यधिक सावधानी से संकलित करना चाहिए। उदाहरणस्वरूप अनुसन्धानकर्ता के लिये सन्धि (juncture) ध्वनि-लहर (Intonation) तथा खण्डीय-ध्वनिग्राम (Segmental phonemes) आदि का संकलन परमावश्यक है। शब्दों एवं वाक्यों के सीमा-निर्धारण करने में विराम का अध्ययन आवश्यक है। इसीप्रकार पदों तथा वाक्य-विन्यास के विश्लेषण के लिये ध्वनि-लहरों का अध्ययन वांछनीय है। भाषा-सामग्री के लेखन के समय ही, अनुसन्धानकर्त्ता को, अक्षरों (Sylablles) के अनुसार ध्वनि के उतार-चढ़ाव को, रेखाओं द्वारा अंकित कर लेना चाहिए।

अनुसन्धानकर्त्ता को प्रथम लेखन में ही पूर्णरूप से शुद्ध लिखने की आशा नहीं करनी चाहिए। जब सूचक किसी शब्द या वाक्यांश को तीन अथवा चार बार उच्चरित कर ले और जब अनुसन्धानकर्त्ता भी उन्हीं शब्दों तथा वाक्यांशों का इस रूप में शुद्ध उच्चारण करने लगे कि उसे सूचक भी स्वीकार कर ले तभी उसे लिखना चाहिए। कतिपय भाषाशास्त्री, सूचक के प्रथम उच्चारण के बाद ही शब्दों तथा वाक्यों को लिख लेना ठीक समझते हैं। इसके बाद सूचक से इन शब्दों तथा वाक्यों को कई बार बुलवाकर वे उन्हें शुद्ध कर लेते हैं। किसी दुरूह ध्वनि के विश्लेषण के लिये उसे सूचक से दस-बारह बार नहीं उच्चारण कराना

चाहिए। ऐसी दुरूह ध्वनि अलग लिख लेनी चाहिए और जब अनुसन्धानकर्त्ता को अनुसन्धेय भाषा का कुछ अधिक ज्ञान तथा अनुभव हो जाय तो इस ध्वनि अथवा इसप्रकार की ध्वनियों का विश्लेषण करना चाहिए।

(७) भाषा-सामग्री का उपयोग अत्यधिक ईमानदारी के साथ करना चाहिए। कतिपय अनुसन्धानकर्त्ता विश्लेषण के आरम्भ से ही नियमों में एकरूपता लाकर भाषा को बाँधने की चेष्टा करते है और उसके अपवादों को छोड़ देते हैं। यह बात कदापि न भूलनी चाहिए कि भाषा की नियमबद्धता एवं उसके अपवाद, दोनों, समानरूप से महत्त्वपूर्ण है।

(८) भाषा-सामग्री प्राप्त करते समय सूचक का नाम भी लिख लेना परमावश्यक है। किसी क्षेत्र विशेष के सभी व्यक्ति एक ही प्रकार के शब्दों का व्यवहार नही करते। कभी-कभी तो एक ही क्षेत्र के दो व्यक्ति, एक ही बोली के दो प्रकार के शब्दरूपों का व्यवहार करते हैं। इसप्रकार के सूक्ष्म भेदों को लिख लेना चाहिए।

(९) भाषा-सामग्री को लिखते समय ही तिथि को लिख लेना भी आवश्यक है। अनुसन्धानकर्त्ता को आगे चलकर इस बात का अनुभव होगा कि भाषा के लेखन का उसे जितना अधिक अभ्यास हो रहा है उतना ही अधिक शुद्ध वह लिख भी रहा है।

(१०) लिखित सामग्री का संशोधन स्पष्टरूप से करना चाहिए। इस कार्य के लिए भिन्न रंग की पेंसिल अथवा स्याही का प्रयोग करना चाहिए। इसप्रकार के संशोधन से भाषा-सामग्री के विश्लेषण में अत्यधिक सहायता मिलती है।

२.२३ सूचकों द्वारा प्रदत्त सामग्री में भाषा-सम्बन्धी विभिन्नता

किसी भाषा को मातृभाषा के रूप में व्यवहार करने वाले व्यक्ति ही वस्तुतः उस भाषा के सूचक हैं। चाहे वे साधारण कृषक अथवा बाज़ार में शाक-सब्ज़ी बेचनेवाले लोग हों और चाहे वे कचहरी के मुंशी हों, ये सभी लोग, सुयोग्य सूचक बन सकते हैं। यह सत्य है कि किसी भी समाज की भाषा में सांस्कृतिक स्तर के अनुसार अन्तर होता है। यह अन्तर भी मोटेतौर पर, निम्नलिखित तीन रूपों में परिलक्षित होता है—

(१) आर्थिक तथा सामाजिक वर्ग

एक ही क्षेत्र की प्रायः विभिन्न जातियों की भाषा में कुछ न कुछ अन्तर अवश्य होता है। इसीप्रकार दास तथा स्वामी की भाषा में भी अन्तर होता

है। किसी-किसी समाज के जातिविशेष के लोग परम्परा से शिक्षित तथा सुसंस्कृत होते हैं। ऐसे लोगों की भाषा तथा उस क्षेत्र के जनसाधारण की भाषा में काफी अन्तर होता है। कभी-कभी यह अन्तर इतना अधिक होता है कि जब एक वर्ग के लोग पारस्परिक वार्तालाप में व्यवहृत होने वाले विशेष शब्दों को प्रयोग करने लगते हैं तो दूसरे वर्ग के लोग उसे बिल्कुल नहीं समझ पाते। अनुसन्धानकर्त्ता को विभिन्न वर्गों की बोलियों के सूक्ष्म अन्तरों एवं भेदों को स्पष्टरूप से लिख लेना चाहिए। शिक्षित तथा सुसंस्कृत वर्ग की भाषा को परिनिष्ठित एवं शुद्ध तथा अशिक्षित लोगों की भाषाको अशुद्ध असंस्कृत अथवा अपभ्रष्ट मानना भारी भूल है।

(२) पुरुषों तथा स्त्रियों की भाषा

पुरुषों तथा स्त्रियों की भाषा में कुछ न कुछ अन्तर अवश्य रहता है। यह अन्तर प्रायः शब्दों के प्रयोग से होता है। लखनऊ (उत्तरप्रदेश) में पुरुषों द्वारा व्यवहृत उर्दू तथा बेगमाती उर्दू में यह अन्तर स्पष्टरूप से देखा जा सकता है। कतिपय भाषाओं में तो यह अन्तर बहुत अधिक होता है।

(३) युवकों तथा वयस्क लोगों की भाषा

कतिपय क्षेत्रों में युवक तथा वयस्क—बड़े-बूढ़—लोगों की भाषा में अत्यधिक अन्तर मिलता है। यह बात उस क्षेत्र में विशेषरूप से दृष्टिगोचर होती है जहाँ किसी व्यापारिक भाषा के प्रभाव से मूलभाषा में परिवर्तन होने लगता है। अफ्रीका की कई भाषाओं की आज यही दशा है। आज वहाँ के युवक धर्म तथा जाति सम्बन्धी अनेक ऐसी बातें नहीं जानते जो उनके पिता-पितामह को ज्ञात थीं। यदि ऐसे क्षेत्र में शिक्षा का माध्यम भी व्यापारी भाषा बन जाती है तो मूलभाषा में उसके अनेक शब्द आ जाते हैं। जिन क्षेत्रों के लोग ग्रामीण जीवन से विरत हो रहे हैं वहाँ की भाषा में भी विशेष अन्तर आ रहा है। प्रायः इन क्षेत्रों के नवयुवक मूलभाषा के उन संस्कृतिद्योतक शब्दों को भूलते जा रहे हैं जिनका उनके पूर्वज प्रयोग करते थे। इसका एक कारण यह भी है कि व्यापारिक भाषा की अत्यधिक प्रतिष्ठा के कारण वे मातृभाषा को ठेठ रूप में, बोलने में लज्जा का अनुभव करते हैं।

२.२४ सूचक की योग्यता

सूचक के चुनाव में कई बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता है। अनेक वर्षों के सर्वेक्षण के अनुभव के बाद भाषाशास्त्री साधारणतया उनमें निम्नलिखित विशेषताओं की अपेक्षा करते हैं—

आयु—सूचक की आयु सोलह वर्ष से कम की नहीं होनी चाहिए। इस आयु से कम वाले युवकों में भाषा सम्बन्धी अनुभवों की कमी रहती है। वयस्क लोग इस कार्य के लिये अधिक उपयुक्त होते हैं। इसका एक कारण तो यह है कि उन्हे भाषा का अच्छा ज्ञान एवं अनुभव होता है। दूसरी बात इनके सम्बन्ध में यह भी है कि ये जमकर काम कर सकते है।

पुरुष या स्त्री—इस कार्य के लिये स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष अधिक उपयुक्त होते है, क्योंकि उनका सामाजिक सम्पर्क अधिक होता है। एक बात और है। उन्हें व्यापारिक भाषा का भी ज्ञान होता है और द्वैभाषिक पद्धति मे व्यापारिक भाषा के द्वारा ही सर्वेक्षण का कार्य सम्पन्न होता है।

सम्प्रज्ञानशीलता—सूचक सम्प्रज्ञानशील होना चाहिए। यह गुण अत्यावश्यक है।

सूचक को व्यापारिक अथवा जिस भाषा के माध्यम से कार्य हो रहा हो, उसका अच्छा ज्ञान होना चाहिए। आरम्भ में तो ऐसी भाषा के ज्ञान के बिना कार्य आगे ही नही बढ़ सकता। यह दूसरी बात है कि जब मूलभाषा के विश्लेषण का कार्य प्रारम्भ होता है तब इस दूसरी भाषा की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती।

वाचालता—सूचक को मितभाषी अथवा चुप्पा नही होना चाहिये। जितना ही अधिक वह वाचाल होगा उतनी ही तीव्र गति से सर्वेक्षण का कार्य अग्रसर हो सकेगा।

सूचक के प्रति व्यवहार—सर्वेक्षण की बहुत कुछ सफलता अनुसंधानकर्ता तथा सूचक के मृदु व्यवहार पर निर्भर करती है। अनुसंधानकर्ता को कभी सूचक पर अपनी योग्यता लादने का प्रयत्न न करना चाहिए। उसे सदैव यह भाव प्रदर्शित करना चाहिए कि वह वास्तव में सूचक से उसकी भाषा सीखने के लिये उत्सुक है। इस बात का ध्यान रखने से अनुसंधानकर्ता सर्वेक्षण-कार्य में सफलता प्राप्त कर सकता है।

सूचक से भाषा-सामग्री प्राप्त करने के लिये अनुसधानकर्ता को निम्नलिखित बातो पर ध्यान देना चाहिए—

अनुसंधानकर्ता को सूचक से कभी भी वादविवाद नही करना चाहिए। इसका यह अर्थ है कि अनुसंधानकर्ता को सदैव यह बात मान लेनी चाहिए कि सूचक जो कुछ कह रहा है वही ठीक है। यह हो सकता है कि सूचक ग़लती पर हो, किन्तु ऐसा होने पर भी उससे तर्क-वितर्क करने से कुछ भी परिणाम नहीं

निकलता। यदि अनुसंधानकर्ता को ऐसा प्रतीत हो कि सूचक जो कुछ पहले कह चुका है उसके विपरीत कह रहा है तो यह समझ लेना चाहिए कि पहले से परिस्थिति ही भिन्न है। कभी-कभी यह भी होता है कि एक दिन सूचक एक वाक्य को अनूदित करते समय घटमानवर्तमान (Present progressive) का प्रयोग कर रहा है तो दूसरे दिन उसीप्रकार के वाक्य में वह पुराघटित वर्तमान (Present perfect) का प्रयोग कर रहा है। इसका कारण यह हो सकता है कि सूचक बिना भलीभाँति समझे ही ऐसा कार्य कर रहा है। किन्तु इसके लिये उससे तर्क-वितर्क करने की आवश्यकता नहीं है। जब सर्वेक्षण का कार्य आगे बढ़ेगा और जब इसीप्रकार के अन्य वाक्यों को सूचक को अनूदित करना पड़ेगा तो इसप्रकार की भूलों का अपने आप निराकरण हो जायेगा।

अनुसंधानकर्ता को सदैव यह समझा चाहिए कि वह सूचक से उसकी भाषा सीख रहा है। जब सूचक एक शब्द अथवा वाक्य का उच्चारण कर ले तो अनुसंधानकर्ता को भी उसे उसीरूप में उच्चरित करना चाहिए और सूचक से उसे यह पछना चाहिए कि उसके द्वारा उच्चरित शब्द अथवा वाक्य को वह भलीभांति समझ लेता है अथवा नहीं। जब वह हाँ कह दे तो अनुसंधानकर्ता को आगे बढ़ना चाहिए।

एक ही शब्द या वाक्य को सूचक से कई बार नहीं बोलवाना चाहिए। इसप्रकार दस-बारह बार उच्चारण कराने से कुछ भी लाभ नहीं होता। यदि कभी भाषा सम्बन्धी कुछ दुरूह सामग्री आरम्भ में ही अनुसंधानकर्ता के सामने आये तो उसे बाद में विचार करने के लिये छोड़ देना चाहिए। जब अनुसंधानकर्ता भाषा को भलीभाँति सीख लेगा तो उसकी कठिनाई अपने आप दूर हो जायेगी।

सर्वेक्षण का कार्य एक ही बैठक में देर तक नहीं करना चाहिए। इसके लिये पौन घंटा समय उपयुक्त है। इसके बाद पन्द्रह-बीस मिनट विश्राम करके पुनः कार्य प्रारम्भ करना चाहिए। दिन में लगभग ढाई-तीन घंटा से अधिक भाषा-सामग्री के संकलन में नहीं लगाना चाहिए। क्योंकि इतने समय में ही इतनी अधिक भाषा-सामग्री मिल जायेगी कि शेष समय में वह उसका विश्लेषण करता रहेगा। अनुसंधानकर्ता को भाषा-सामग्री के संकलन के साथ ही साथ विश्लेषण करते जाना चाहिए। यदि वह शब्दों तथा धातु-पदों को कण्ठाग्र कर ले तो यह अच्छी बात होगी, किन्तु यदि वह ऐसा न कर सके तो उसे प्रत्ययों का ज्ञान तो अवश्य ही होना चाहिए।

किसी भाषा के शब्द या धातु का रूप वैसा क्यों हो गया है यह सूचक

से कभी नहीं पूछना चाहिए। यदि सूचक ईमानदार है तो वह कभी भी अनुसंधानकर्ता के इसप्रकार के प्रश्नों का उत्तर न दे सकेगा। एक बात और है। यदि इसप्रकार के प्रश्नों से कहीं सूचक खीझ उठा तो सर्वेक्षण के कार्य में लाभ की अपेक्षा हानि की ही अधिक सम्भावना है। खड़ीबोली हिन्दी का कोई भी सूचक यह न बता सकेगा कि उसमें भविष्यत् के लिये 'मैं, के साथ 'आऊँगा' और 'हम' के साथ 'आयेंगे' का क्यों प्रयोग होता है। सच बात तो यह है कि सूचक केवल भाषा-सामग्री प्राप्त करने का माध्यम मात्र है, वह विश्लेषणकर्ता नहीं है।

अनुसंधानकर्ता को किसी शब्द का अर्थ जानने के लिए सूचक से उसका प्रयोग पूछना चाहिये। सूचक के लिये किसी शब्द का ठीक-ठीक अर्थ बताना सरल कार्य नहीं है, किन्तु विविध सन्दर्भों में शब्द किस रूप में प्रयुक्त होते हैं यह सूचक सरलता से बता सकता है।

अनुसंधानकर्ता को सूचक की योग्यता एवं उदारता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिये। सूचक के प्रति मैत्रीपूर्ण तथा मृदु व्यवहार करके भाषा-सामग्री मिल सकती है।

३

ध्वनिशास्त्र

३.१० ध्वनिशास्त्र की परिभाषा उसका उपयोग, महत्त्व एवं क्षेत्र

ध्वनिशास्त्र से अनभिज्ञ भाषाशास्त्र का अध्यापक उसीप्रकार निरर्थक है जिसप्रकार शरीरविज्ञान से अनभिज्ञ, डाक्टर ?[१]

—जार्ज सैम्पसन

इसीप्रकार के विचार सन् १८७७ में हेनरी स्वीट[२] ने व्यक्त किए थे—

"ध्वनिशास्त्र का महत्त्व भाषा के समस्त प्रकार के अध्ययनों के लिये—चाहे वह नितान्त सैद्धान्तिक हो अथवा प्रयोगभूत—निर्विवाद परमावश्यक रूप में स्वीकार कर लिया गया है....अब भाषाशास्त्री अपना ध्यान अधिक से अधिक जीवित बोलियों एवं वन्य जातियों की भाषाओं के अध्ययन की ओर केन्द्रित कर रहे हैं। बहुत सी भाषाएँ प्रथम बार लिपिबद्ध हो रही हैं, इस कारण सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक ध्वनिशास्त्र के अधिकाधिक ज्ञान की सर्वोच्च आवश्यकता प्रतीत हो रही है।"

प्राचीन भारत में ध्वनिशास्त्र के लिए 'शिक्षा' शब्द का प्रयोग होता था। वेद तथा व्याकरण का अध्ययन करने वाले प्रत्येक ब्राह्मण के लिए 'शिक्षा' का पूर्ण ज्ञान आवश्यक था। वर्णों के उच्चारण के लिए कितनी सावधानी की आवश्यकता होती है, इस सम्बन्ध में पाणिनीय शिक्षा में निम्नलिखित श्लोक मिलता है—

व्याघ्री यथा हरेत् पुत्रान् दंष्ट्राभ्यां न च पीडयेत्
भीता पतन भेदाभ्यां तद्वद्वर्णान् प्रयोजयेत् ।२५। (५)

अशुद्ध उच्चारण के क्या परिणाम हो सकते हैं, इस सम्बन्ध में निम्नलिखित श्लोक द्रष्टव्य है—

---

१. A teacher of speech untrained in phonetics is as useless as a doctor untrained in Anatomy–George Sampson.

२. A Hand Book of phonetics.

मन्त्रोहीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह
सा वाग्वज्रो यजमान हिनस्ति यथेन्द्र शत्रुः स्वरतोऽपराधात् ।

उपर्युक्त श्लोक यह स्पष्ट कर देते हैं कि प्राचीन भारत में शिक्षा तथा ध्वनि-शास्त्र के अध्ययन का स्थान कितना महत्त्वपूर्ण था।

आधुनिक युग में ध्वनिशास्त्र की महत्ता अधिकाधिक बढ़ रही है। सामयिक वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण ज्यों-ज्यों समय तथा दूरी का प्रश्न घटता जा रहा है, त्यों-त्यों मनुष्य की प्रवृत्ति अन्तर्राष्ट्रीय होती जा रही है। अब सुदूर देशों के साथ व्यापारिक एवं दौत्य सम्बन्ध स्थापित करना सभ्य एवं सशक्त राष्ट्रों के लिये आवश्यक हो गया है। इसके लिये सबसे प्रथम विदेशी भाषाओं को सीखने की आवश्यकता पड़ती है। मानव जाति के मध्य सामाजिक सम्पर्क स्थापित करने के लिये भाषा ही सर्वोत्कृष्ट साधन है। विदेशी भाषा को सीखने में मनुष्य के सामने सब से पहली समस्या उच्चारण सम्बन्धी आती है। किसी भाषा के व्याक-रणीय रूपों अथवा सर्व-आवश्यक शब्दावली को जानने से पूर्व यह आवश्यक हो जाता है कि भाषा को सीखने वाला उस भाषा की ध्वनियों को उसीरूप में ग्रहण करे जिस रूप में उस भाषा के बोलनेवाले उन्हें उच्चरित करते हैं। उन ध्वनियों के ज्ञान के अतिरिक्त उसको उन ध्वनियों के बोलने का इतना अभ्यास भी करना चाहिए ताकि उसके बोलने वाले उन्हें समझ सकें।

यहाँ यह बात स्मरण रखने की है कि किसी भाषा का अध्ययन करते समय हमारा सम्बन्ध उसके वाक् या उच्चरित ध्वनियों से ही होता है, उनके लिखित रूपों से नहीं।

जब भाषा सीखने वाला इस भाषा के उच्चारण में सिद्धहस्तता प्राप्त कर ले, तब वह विदेशी भाषा के लिखितरूप से परिचित हो सकता है, किन्तु उच्चारण के व्यापक व्यावहारिक ज्ञान के पूर्व ही भाषा के लिखितस्वरूप के बारे में ज्ञान-प्राप्ति के लिये उद्यत होना अपने को भ्रम एवं अपूर्ण ज्ञान के चक्कर में डालना है।

वस्तुतः भाषा का अर्थ ही उस 'कथ्यरूप' से है जो भाषणावयवों की सहायता से मुखद्वारा बोली जाती है। आधुनिक युग में भाषा के ध्वनिमय रूप की धारणा इतनी सिद्ध एवं मान्य हो चुकी है कि कुछ आधुनिक भाषाविद् 'लिखित-भाषा' वाक्यांश को ही ठीक नहीं मानते।

अब यहाँ यह प्रश्न उठता है कि विदेशीभाषा के उच्चारण से किसप्रकार परिचय प्राप्त करना चाहिए ?

इस समस्या का आज से कुछ वर्ष पूर्व, जो केवल एक ही समाधान सम्भव

समझा जाता था, यह था कि शिक्षार्थी को विदेशी भाषा-भाषियों के सम्पर्क में काफी समय तक रहकर उन से बातचीत करने का अधिकाधिक सौभाग्य प्राप्त करना चाहिए।

किन्तु इस रीति से भाषा सीखने में दो प्रकार की कठिनाइयों का अनुभव हुआ। इनमें प्रथम कठिनाई यह थी कि सामान्य व्यक्ति केवल भाषा सीखने के लिये विदेश कैसे जा पहुँचे? दूसरे यह कि इस प्रकार से भाषा का ज्ञान प्राप्त करना नितान्त व्ययसाध्य था।

इसी समय लोगों को यह अनुभव हुआ कि विदेशी भाषा को सीखने का सरलतम उपाय यह है कि उसकी ध्वनियों का ठीक-ठीक रूप में ज्ञान प्राप्त किया जाये। इसके लिए ध्वनिशास्त्र के ज्ञान की आवश्यकता का अनुभव हुआ। लोगों ने यह जान लिया कि ध्वनिशास्त्रीय पद्धति के द्वारा कम से कम समय में विदेशी भाषा सरलतया सीखी जा सकती है। यही कारण है कि आधुनिक भाषाशास्त्री आज भाषा के अध्ययन में ध्वनिशास्त्र का समुचित उपयोग करता है तथा उसे जीवित बोलियों के वैज्ञानिक अध्ययन की आधारभूत शाखा मानता है।

यहाँ यह पुनः ध्यान रखना चाहिए कि ध्वनिर्विज्ञान का सम्बन्ध ध्वनियों से है। इस विज्ञान में मनुष्य के मुँह से निसृत ध्वनियों का विवेचन-विश्लेषण, वर्णन एवं वर्गीकरण किया जाता है। भाषा के लिखित रूप से इसका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। लिखित रूप का सम्बन्ध वर्णो से है। वर्ण एवं ध्वनि में अन्तर है, इस तत्त्व को भलीभाँति समझ लेना चाहिए। वस्तुतः अनेक भाषाओं में एक ध्वनि के कई प्रतीक होते है। अँग्रेजी में 'क्' ध्वनि के लिए (k), (c), (q) तीन प्रतीक हैं। फ़ारसी अथवा उर्दू की लिखावट में 'स्' ध्वनि 'से', 'स्वाद' और 'सीन', तीन प्रतीकों द्वारा व्यक्त की जाती है। इस समस्या का समाधान ध्वनिलिपि द्वारा किया जाता है, जिसमें एक ध्वनि को एक संकेत द्वारा व्यक्त किया जाता है। ध्वनि-लिपि का विवेचन अन्यत्र किया जायेगा। यहाँ यह समझ लेना चाहिये कि ध्वनिशास्त्र का क्षेत्र ध्वनियों तक सीमित है और ध्वनियों के विवेचन के अन्तर्गत उनका उत्पादन, संचरण या संवहन एवं ग्रहण विशेष रूप से आता है। वस्तुतः ध्वनिशास्त्र आधुनिक भाषा-तत्त्व का अविच्छेद्य अंग बन गया है। भाषातत्त्व का ऐसा कोई अंग नहीं जिसका अध्ययन ध्वनिशास्त्र के बिना किया जा सके। ध्वनिशास्त्र भाषा तत्त्व का मूल-मंत्र है। आज के भाषाशास्त्री भी इस बात को पूर्णतया स्वीकार करते हैं कि किसी भाषा के विश्लेषण के पूर्व उसकी ध्वनियों का विशिष्ट ज्ञान परमावश्यक है।

३. ११ ध्वनि-शास्त्र की शाखाएँ

हम पहले कह चुके है कि ध्वनिशास्त्र के अन्तर्गत ध्वनियों के विवेचन में मुख्य रूप से उनका उत्पादन, संचरण या संवहन और ग्रहण विशेषरूप से आता है। इन्हीं के आधार पर ध्वनिशास्त्र की तीन शाखायें हो जाती हैं जो इस प्रकार हैं—

(१) **औच्चारणिक** [Articulatory]

(२) **भौतिक** [Acoustic]

(३) **श्रौत्रिक** [Auditory]

हम किन्हीं भी दो वक्ताओं के परस्पर उच्चारों के क्रम को रेखाचित्र में इस प्रकार प्रदर्शित कर सकते हैं—
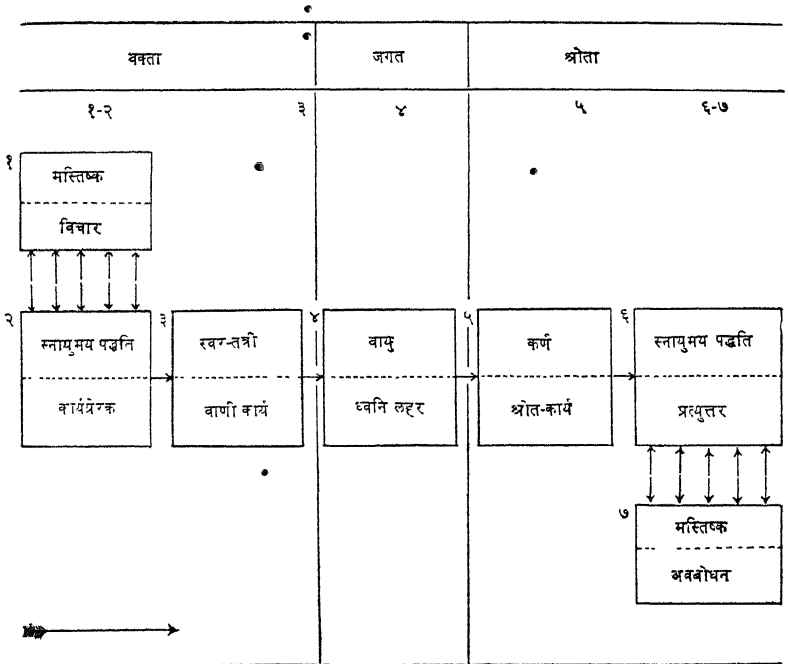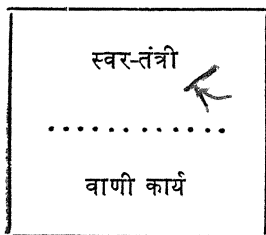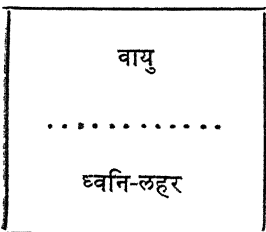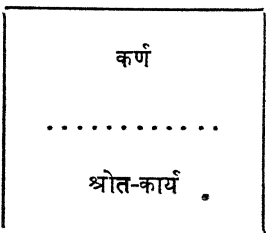
ध्वनिशास्त्र की औच्चारणिक शाखा के अन्तर्गत ध्वनियों के उत्पादन, भौतिक-शाखा के अन्तर्गत उनके संचरण एवं श्रौतिक शाखा के अन्तर्गत उनके ग्रहण का अध्ययन किया जाता है।

३.१२ भौतिक शाखा

ऊपर के चित्र में यह स्पष्टरूप से प्रदर्शित किया गया है कि मानव मुख से निसृत ध्वनियाँ वायु द्वारा ध्वनि-लहर के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं। इधर हाल ही में भौतिकशास्त्र के तत्त्वावधान में अनेक ऐसे यंत्रों का निर्माण हुआ है जिनके द्वारा इन ध्वनियों के विविध गुणों की माप की जा सकती है। जिन सूक्ष्म ध्वनियों को हम श्रवण द्वारा ग्रहण नहीं कर पाते उन्हें भी ये यंत्र अति सरल रूप में हमारे सम्मुख प्रत्यक्ष कर देते हैं।

इन ध्वनि यंत्रों में ऑसिलोग्रॉफ, टेपरिकार्डर, स्पैक्ट्रोग्राफ, फारमेन्ट ग्राफिक-

मशीन, पैटर्न प्लेबैक, उल्लेखनीय हैं। इनके पूर्व भाषाशास्त्री प्लेटोग्राफ तथा कायमोग्राफ का प्रयोग करते थे। इनके सम्बन्ध में संक्षेप में यहाँ लिखा जायेगा।

३.१३ ध्वनियंत्र (द्वितीय महायुद्ध से पूर्व)

३.१४ पैलेटोग्राफ [Palatograph]

यह वस्तुतः धातु से बना हुआ कृत्रिम तालु (पैलेट) है जिसे प्रायः दाँत के डाक्टर ध्वनि के परीक्षण करने वाले व्यक्ति के तालु के आकार का बना देते हैं। यह बहुत हल्का और पतला होता है तथा इसे फ्रेंच चॉक या पाउडर से रँग देते हैं। परीक्षण करते समय इसे स्वाभाविक ढंग से दाँतों में लगा लिया जाता है। इसके बाद परीक्षा की जाने वाली ध्वनि को बोला जाता है। इसप्रकार बोलने से जिह्वा के स्पर्श वाले भाग का पाउडर पुँछ जाता है। उसी समय पैलेट को बाहर निकाल कर उसका फोटो ले लिया जाता है, जिससे मुख-विवर के अगले भाग में जिह्वा के आन्तरिक क्रिया-कलाप का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। यूरप के कतिपय ध्वनि-शास्त्री कृत्रिम तालु का व्यवहार न करके कठोर तालु पर रंगीन गोंद लगाकर भी जिह्वा के कार्य कलाप की परीक्षा करते हैं।

३.१५ काइमोग्राफ [Kymograph]

ध्वनियों को उच्चरित करते समय, मनुष्य के नासारंध्र, मुखरंध्र तथा स्वरतंत्रियों में जो प्रकम्पन होता है उसे इस यंत्र के द्वारा नापा जा सकता है। अघोष तथा घोष ध्वनियों के उच्चारण में जो कम्पनगत भेद होता है, उसे स्पष्ट करने के लिये काइमोग्राफ का उपयोग किया जाता है। यह उल्लेखनीय बात है कि पैलेटोग्राफ के द्वारा कोमल-तालु प्रदेश में सृष्ट ध्वनियों की परीक्षा नहीं की जा सकती, क्योंकि कृत्रिम पैलेट केवल कठोर तालु प्रदेश को ही आच्छादित रखता है। इन ध्वनियों की परीक्षा काइमोग्राफ की सहायता से की जा सकती है। काइमोग्राफ के चित्रों से ध्वनियों की अनुनासिकता, महाप्राणता तथा दीर्घता आदि भी नापी जा सकती है।

३.१६ ऑसिलो　　Oscillograph)

काइमोग्राफ श्रेणी के अन्य अनेक यंत्रों का उपयोग आज यूरप के विभिन्न प्रदेशों में, ध्वनियों के परीक्षण के लिये किया जा रहा है। ऑसिलोग्राफ वस्तुतः इन्हीं यंत्रों में से एक है। इसके द्वारा ध्वनियों के कम्पन के चित्र लिये जा सकते हैं, उनकी दीर्घता नापी जा सकती है तथा दो ध्वनियों के बीच की सीमा भी निर्धारित की जा सकती है।

३.१७ इंक राइटर (Inkwriter)

काइमोग्राफ की ही श्रेणी का यह एक अन्य यंत्र है। अन्तर केवल इतना ही है

कि जहाँ काइमोग्राफ के द्वारा धूम्राच्छादित कागज (Smokedpaper) पर सुई के द्वारा चित्र बनते हैं, वहाँ इंकराइटर के द्वारा सादे कागज पर स्याही से चित्र बनते हैं। इस यंत्र का व्यवहार काइमोग्राफ की अपेक्षा सस्ता और सहज है।

३.१८ मिंगोग्राफ (Mingograph)

इस यंत्र का आविष्कार स्वीडेन के एक भाषाशास्त्री ने किया है। यह आकार में छोटा है किन्तु ध्वनि-परीक्षण के लिये यह काइमोग्राफ से अधिक उपयोगी है।

३.१९ क्रोनोग्राफ

मिंगोग्राफ की ही भाँति यह भी एक छोटा सा यंत्र है जिसका स्पेन के भाषाविद्, ध्वनि-परीक्षण के लिये, उपयोग करते हैं। यूरोप में, ध्वनि-परीक्षण के लिये, अनेक छोटे-मोटे यंत्रों का उपयोग हो रहा है, किन्तु अमेरिका में ध्वनि-विश्लेषण के लिये जिन यंत्रों का उपयोग हो रहा है वे इनकी अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी हैं। ऐसे यंत्रों का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

३.२० टेपरिकार्डर (Tape Rocorder)

यह ग्रामोफोन की भाँति एक बाक्सनुमा यंत्र है जिसके द्वारा फीते पर ध्वनियों का रिकार्ड किया जाता है। इसे चालू करने के लिये बिजली के तार द्वारा इसे प्लक से जोड़ दिया जाता है ताकि इसमें बिजली की लहरें आने लगें। इसी समय इसमें लगे हुए माइक पर बोला जाता है और फीते पर ध्वनियाँ रिकार्ड होती जाती हैं। इधर हाल में अमेरिका में एक नये प्रकार का टेपरिकार्डर बना है जिसका आकार लम्बा होता है। उसे गले में लगा लेते हैं और उसके फीते पर ध्वनियाँ रिकार्ड होती चली जाती हैं।

अमेरिका के भाषाविद् बोलचाल की भाषा के किसी भी प्रकार के विश्लेषण या अध्ययन में टेपरिकार्डर का व्यवहार करते है। यहाँ तक कि अपनी बोली का विश्लेषण करने के लिये भी वे टेपरिकार्डर की सहायता लेते हैं। अपने मुँह से उच्चरित ध्वनियों को सुनने के बदले में टेपरिकार्डर द्वारा गृहीत उन ध्वनियों को बार-बार सुनने से ध्वनि-विश्लेषण में अधिक सहायता मिलती है।

३.२१ ध्वनियंत्र (द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् आविष्कृत)

इधर द्वितीय महायुद्ध के पश्चात, ध्वनियंत्रों के निर्माण में अमेरिका में जो प्रगति हुई है उसका ज्ञान भाषाशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए परमावश्यक है। इन ध्वनियंत्रों ने भाषा-विश्लेषण के कार्य को बहुत सरल बना दिया है। ये यंत्र ऐसे हैं कि भाषण-प्रवाह को विखंडित करके स्वर एवं व्यंजन के भेद को इन यंत्रों

द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। इनमें से कतिपय यंत्रों का परिचय नीचे दिया जाता है।

३.२२ स्पेक्टोग्राफ

यह एक क्रान्तिकारी यंत्र है जिसका उपयोग आज अमेरिका के ध्वनिशास्त्री कर रहे हैं। जब इस यंत्र में ध्वनि प्रविष्ट होती है तो इलेक्ट्रोन की सहायता से उसका चित्र आ जाता है जिसे 'स्पेक्टोग्राम' कहते हैं। इस 'स्पेक्टोग्राम' में ध्वनि की क्षिप्रता (frequency), सघनता (intensity) एंव कालावधि (duration) आदि सभी आ जाते हैं। इसके द्वारा ध्वनि-शास्त्री को ध्वनि का स्थायी चित्र प्राप्त हो जाता है जिसका वह जब चाहे विश्लेषण कर सकता है।

३.२३ पैटर्न प्लेबैक (Pattern Playback)

ऊपर यह कहा जा चुका है कि स्पेक्टोग्राफ के द्वारा ध्वनियों को स्पेक्टोग्राम में परिणत करके उन्हें दृश्यमान बनाया जा सकता है तथा इसके बाद उनका विश्लेषण किया जा सकता है। परन्तु इधर अमेरिका के दो विद्वानों ने एक ऐसे विशेष ध्वनियंत्र का निर्माण किया है जिसके द्वारा दृश्यमान ध्वनि-चित्रों को पुनः ध्वनि-रूप दिया जा सकता है। इसका नामकरण उन्होंने पैटर्न प्लेबैक किया है।

३.२४ स्पीच स्टेचर

यह एकप्रकार का वाग्-विस्तारक यंत्र है और इससे विदेशी भाषाओं की ध्वनियों को स्पष्ट रूप से ग्रहण करने में अत्यधिक सहायता मिलती है। बात यह है कि बोलते समय मनुष्य अति शीघ्रता से अपने हृदगत भावों को प्रकट करता जाता है। जब किसी व्यक्ति को नवीन भाषा सीखनी होती है तो वाग्धारा में से सार्थक ध्वनियों को स्पष्टरूप से ग्रहण करना उसके लिये सम्भव नहीं हो पाता परन्तु इस यंत्र की सहायता से उच्चरित ध्वनियों को धीरे-धीरे एवं सहजरूप में सुना जा सकता है। इस यंत्र की सहायता से ध्वनि-विज्ञान में अकुशल व्यक्ति भी ध्वनियों का परीक्षण एवं वर्गीकरण कर सकता है। किसी नवीन भाषा के ध्वनिग्रामों के निर्धारण में तो इस यंत्र से अत्यधिक सहायता मिलती है।

३.२५ औच्चारणिक शाखा

इस शाखा के अन्तर्गत ध्वनियों की उत्पादन प्रक्रिया पर विचार किया जाता है। अन्य शाखाओं की अपेक्षा ध्वनिशास्त्र की यह शाखा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है और संसार के भाषाशास्त्रियों ने इसका गहरा अध्ययन भी किया है। इसका

परिणाम यह है कि इस शाखा के सम्बन्ध में सब से अधिक सामग्री भी उपलब्ध है। इसके सम्बन्ध में सम्यक्‌रूप से विचार करने के पूर्व यह अत्यावश्यक है कि सर्वप्रथम ध्वनि यंत्र के विषय में विस्तार पूर्वक विचार किया जाय।

३.२६ वागेन्द्रिय
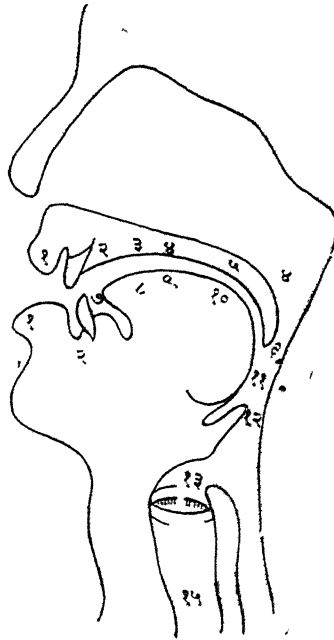
(१) ओंठ।
(२) दाँत।
(३) वर्त्स्य
(४) कठोरतालु
(५) कोमल तालु
(६) अलिजिह्वा या कौवा
(७) जिह्वानोक
(८) जिह्वाग्र
(९) जिह्वा मध्य
(१०) जिह्वा पश्च
(११) उपालिजिह्वा
(१२) स्वरयंत्रावरण
(१३) स्वर यंत्र की स्थिति
(१४) कोमल तालु का नासिकाविवरोन्मुखी पक्ष
(१५) स्वरयंत्र

परिभाषा—वाग्ध्वनियों के उत्पादन में शरीर के जिन अवयवों का उपयोग होता है उनके समूह को ध्वनि-यंत्र कहते हैं। आगे ध्वनियंत्रों या अवयवों पर विचार किया जायेगा।

(१) **ओंठ**—ओंठ दो होते हैं—

(I) ऊपर का ओंठ।

(II) नीचे का ओंठ।

ध्वनि-उत्पादन में नीचे का ओंठ ही अधिक कार्य करता है। ध्वनियों के उत्पादन में ओंठों की कई स्थितियाँ हो सकती हैं। दोनों ओंठ पूर्णतया उन्मुक्त रह सकते हैं, दोनों ओंठ सम्पूर्ण रूप से वन्द होकर ओष्ठ्य व्यंजनों और दाँतों के स्पर्श से दन्त्योष्ठ्य स्पर्श-व्यंजनों की सृष्टि कर सकते हैं तथा दोनों एक दूसरे के अथवा दाँतों के बहुत निकट आकर ओष्ठ्य अथवा दन्त्योष्ठ्य संघर्षी व्यंजनों को उत्पन्न कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त स्वरों के उच्चारण में ये वृत्ताकार या अवृत्ताकार की दृष्टि से विभिन्न स्थितियाँ ग्रहण कर सकते हैं। हिन्दी की पवर्ग ध्वनियाँ इसके अन्तर्गत आती हैं।

(२) **दाँत**—ऊपर यह कहा जा चुका है कि ध्वनि-उत्पादन में दोनों ओंठों में से नीचे का ओंठ ही अधिक कार्य करता है, किन्तु दाँतों की ऊपर तथा नीचे की पंक्तियों में से ऊपरी पंक्ति के सामने वाले दाँत ही विशेष कार्य करते हैं। ये दाँत नीचे के ओंठ और जिह्वा के नोक के साथ मिलकर ध्वनि उत्पन्न करते हैं।

(३) **वर्त्स्य**—ऊपर के दाँतों के मूल से कठोर तालु के आरम्भ तक का भाग वर्त्स-भाग कहलाता है। वस्तुतः यह उच्चारण स्थान है, उच्चारण सहायक अवयव नहीं, क्योंकि जिह्वा के विभिन्न भाग इसके स्पर्श से तथा इसके समीप अथवा इसकी ओर अभिमुख होकर ध्वनि उत्पन्न करते हैं।

(४) **कठोरतालु**—वर्त्स के अन्तिम भाग से कोमलतालु के आरम्भ तक का भाग कठोरतालु कहलाता है। वर्त्स की भांति यह भी उच्चारण-स्थान है, उच्चारण सहायक अवयव नहीं। तालव्य कही जाने वाली सभी ध्वनियों का प्रदेश यही है।

(५) **कोमलतालु**—जहाँ कठोरतालु का अन्त होता है अर्थात् जहाँ अस्थिमय अंश का अन्त है और जिस भाग से कोमल मांसखण्ड भाग का आरम्भ होता है वही भाग कोमलतालु कहलाता है। कोमलतालु ध्वनियंत्र का महत्वपूर्ण स्थान है। यह वस्तुतः उच्चारण-स्थान तथा उच्चारण सहायक अवयव, दोनों, है।

जब मुख-विवर से वायु भीतर की ओर ली जाती है, तो कोमलतालु ऊपर उठ जाता है किन्तु जब वायु नासिका-विवर से निकलती है अथवा भीतर की ओर ली जाती है तव कोमलतालु नीचे की ओर झुक जाता है। परन्तु जब वायु मुख-विवर से निकाली जाती है तब यह पुनः ऊपर की ओर उठ जाता है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि कोमलतालु मुखविवर तथा नासिका विवर के बीच किवाड़ का सा कार्य करता है।

श्वास-प्रक्रिया एवं भाषण प्रक्रिया के समय इसकी निम्नलिखित स्थितियाँ होती हैं:—

(१) **श्वास-प्रक्रिया के समय**—श्वास-प्रक्रिया के समय यह बिलकुल ढीला निस्पन्द अर्थात् नीचे की ओर पड़ा रहता है जिसके परिणामस्वरूप सारी श्वास इसके पीछे से होकर नासिका मार्ग से ही आती जाती है।

(२) **भाषण प्रक्रिया के समय**—इस प्रक्रिया में यह निम्नलिखित दो स्थितियाँ धारण करता है—

(i) नासिक्य व्यंजनों एवं अनुनासिक स्वरों को छोड़कर अन्य समस्त ध्वनियों के उच्चारण के समय यह ऊपर उठकर नासिका-विवर को बिलकुल वन्द कर देता है जिसके फलस्वरूप समस्त वायु मुख-विवर से ही निकलने लगती है, नासिका-विवर में नहीं जाने पाती। यह मुख-विवर में आकर विभिन्न उच्चारण-स्थान एवं उच्चारण-प्रयत्नों की विभिन्न स्थिनियों के कारण विभिन्न ध्वनियों के रूप में परिवर्तित हो जाती है।

(ii) नासिक्य व्यंजनों एवं अनुनासिक स्वरों के उच्चारण के समय यह मध्यम अवस्था में रहता है, जिससे कुछ वायु नासिका-विवर से भी निकल जाती है।

इसप्रकार कोमलतालु का कार्य नासिका-विवर के मार्ग को अनुनासिक स्वरों एवं नासिक्य व्यंजनों के लिये विवृत करना एवं निरनुनासिक ध्वनियों के लिये संवृत करना है।

(६) **अलिजिह्वा या कौवा**—अलिजिह्वा या कौवा कोमलतालु का अन्तिम भाग है। यह एक छोटे से लटकते हुए मासपिण्ड के रूप में दिखलाई पड़ता है।

यह कोमलतालु से संलग्न अलिजिह्वा, ऊपर-नीचे होता रहता है। यह अरवी एवं फ्रेंच आदि भाषाओं की कुछ ध्वनियों के उत्पादन में सहायक होता है।

ध्वनि-निर्माण में जिह्वा का स्थान

उच्चारण अवयवों में जिह्वा का स्थान सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। स्वरों

के निर्माण तथा अधिकांश व्यंजनों के उत्पादन में जिह्वा सर्वाधिक कार्य करती है।

(७) **जिह्वा-नोक**--जिह्वा के अग्रबिन्दु को जिह्वा नोक कहते हैं। जिह्वा का यह भाग ध्वनि-उत्पादन में सबसे अधिक सहायक होता है। जिह्वा का यह भाग ऊपरी दन्त पंक्ति के सामने वाले दाँतों का स्पर्श करके दन्त्य-ध्वनियों (त्, थ्, द्, ध्), वर्त्स को स्पर्श करके वर्त्स्य ध्वनि (न्), सामने के दाँत या वर्त्स्य के समीपवर्ती होकर दन्त्य या वर्त्स्य संघर्षी ध्वनि (स्), फेफड़ों से आगत वायु द्वारा विताड़ित होकर तथा एकाधिक बार जोर से हिलकर वर्त्स्य लुंठित ध्वनि (र्), दाँत अथवा वर्त्स के मध्यबिन्दु का स्पर्श करके यदि जिह्वा के एक या दोनों पार्श्व खुले रहें तो पार्श्विक ध्वनि (ल्) एवं पीछे की ओर मुड़कर मूर्धा भाग को स्पर्श करके मूर्धन्य ध्वनियों (ट्, ठ्, ड्, ढ्) के उच्चारण में सहायक होती है।

(८) **जिह्वाग्र**--जिह्वा का वह भाग है जो कठोरतालु के विपरीत स्थित रहता है। जिह्वाग्र की सहायता से उत्पन्न होने वाली ध्वनियों को मुख्यतः तालव्य कहा जाता है। इस भाग का उपयोग ध्वनि उत्पादन में मुख्यतः निम्नप्रकार से किया जाता है--

(i) अग्रस्वरों के उच्चारण में यह भाग विभिन्न मात्रा में कठोरतालु की ओर उठता है।

(ii) कठोरतालु से मिलकर तालव्य स्पर्श ध्वनियों की सृष्टि करता है।

(९) **जिह्वापश्च**--जिह्वापश्च जिह्वा का वह भाग है जो कोमलतालु के विपरीत स्थित रहता है। जिसप्रकार जिह्वाग्र कठोर तालु की ओर विभिन्न मात्रा में उठकर अग्रस्वरों की सृष्टि करता है उसीप्रकार जिह्वापश्च कोमलतालु की ओर उठकर पश्चस्वरों की सृष्टि करता है। जिह्वा का यह भाग कोमलतालु तथा अलिजिह्वा के साथ मिलकर (क्, ख्, ग्, घ्) कण्ठ्य ध्वनियों की सृष्टि करता है। इसके अतिरिक्त कोमलतालु तथा अलिजिह्वा या कौवा के समीपवर्ती होकर वायुमार्ग को, एवं पीछे हटकर गलबिल मार्ग को संकीर्ण कर संघर्षी ध्वनियों के उत्पादन में भी सहायक होता है।

(१०) **उपालिजिह्वा या गलबिल**

नासिकाविवर और स्वरयंत्रावरण के बीच और जिह्वामूल के पीछे जो खाली स्थान होता है उसे उपाजिलिह्वा या गलबिल कहा जाता है।

(११) **स्वरयंत्रावरण**--स्वरयंत्रावरण जिह्वामूल के नीचे पेड़ के पत्ते

के समान उठा हुआ एक मांसल भाग होता है। यद्यपि यह भाग ध्वनि-उत्पादन में प्रत्यक्ष रूप से किसीप्रकार की सहायता नहीं करता किन्तु स्वरयंत्र की रक्षा करने के कारण परोक्षरूप से यह ध्वनि-प्रक्रिया को अक्षुण्ण रखता है।

यह भाग भोजन करते समय भोजन या पानी को श्वासनली में जाने से रोककर उसे भोजन नली में प्रवेश कराने में सहायक होता है।

(१२) **स्वरतंत्रियाँ**--अँगरेज़ी 'वोकलकार्ड्स' का अनुवाद कुछ लोगों ने स्वररज्जु किया है किन्तु जैसा ब्लाक एवं ट्रेगर ने लिखा है, इसका नाम अँगरेज़ी में भी ठीक नही है, क्योंकि इसमें रज्जु जैसी कोई वस्तु नही होती। अँगरेज़ी में यह शब्द प्रचलित हो जाने के कारण मान्य हो गया है, किन्तु हिन्दी में इसे स्वरतंत्रियाँ कहना ही अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि यह श्वासनली के अन्त में स्थित, कण्ठ में आगे से पीछे को फैला हुआ दो महीन तंत्रियों से निर्मित लचीली झिल्लियों का एक जोड़ा है। ये तंत्रियाँ ही स्वरतंत्रियाँ कहलाती हैं।

स्वरतंत्री की झिल्लियाँ मुख्यरूप से चार अवस्थायें ग्रहण करती हैं--

(i) श्वासप्रक्रिया एवं अघोष ध्वनियों के उच्चारण के समय इसके दोनों भाग शिथिल एवं निस्पन्द पड़े रहते है और झिल्लियों के बीच के भाग, काकल से श्वास निकलती रहती है। अघोष ध्वनियों के उच्चारण के समय स्वरतंत्रियों में कोई कम्पन नही होता है।

(ii) घोष ध्वनियों के उच्चारण के समय स्वरतत्रियो के दोनों भाग बिलकुल समीप आकर एक दूसरे से रगड़ खाते हैं और स्वरतंत्रियों में कम्पन उत्पन्न करते हैं। ये कम्पन संगीतात्मक होते है और इसके योग से उच्चरित ध्वनियाँ घोष होती हैं।

(iii) उपालिजिह्वीय या काकल्यस्पर्श ध्वनियों के उच्चारण के समय स्वरतंत्रियों के दोनों भाग परस्पर टकराकर झटके के साथ अलग हो जाते है। इस अवस्था में श्वास रगड़ के साथ बाहर निकलती है।

(IV) फुस्फुसाहट वाली ध्वनियों के उच्चारण के समय कोई स्वरतंत्रीय कम्पन नहीं होता है। ये ध्वनियाँ अघोष रहती है। इनके उच्चारण के समय स्वरतंत्रियों के दोनों भाग परस्पर मिल जाते है परन्तु नीचे की ओर थोड़ा सा भाग श्वास के आने-जाने के लिए छुटा रहता है। इस खुले भाग से रगड़कर निकलने वाली वायु के द्वारा एकप्रकार की फुस्फुसाहट की सृष्टि होती है।

(१३) **श्वासनलिका**--मानव का जीवन उसकी श्वासप्रक्रिया पर निर्भर करता है। श्वास लेने तथा निकालने के लिए हमारे सीने में दो फेफड़े हैं जो धौंकनी

का काम देते हैं। इन फेफड़ों से कण्ठ तक एक नली है जिसके द्वारा फेफड़ों से निर्गत होने वाली वायु मुखविवर या नासिका विवर द्वारा निकलती है या भीतर की ओर जाती है। इसी नली को श्वासनलिका कहते हैं।

(१४) **नासिकाविवर**--जब अलिजिह्वा एवं कोमलतालु शिथिल पड़े रहते हैं तब श्वासनलिका से आने वाली समस्त वायु इसी नासिकाविवर से निकलती है। इसका पूर्ण विवेचन कोमलतालु प्रसंग में किया जा चुका है।

३.२७ ध्वनियों का वर्गीकरण

श्वास् के निकलते समय रुकावट होने या न होने के आधार पर मानव ध्वनियों को दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है--

(१) **स्वर**।

(२) **व्यंजन**।

स्वर--वे ध्वनियाँ जिनके उच्चारण में निर्गत श्वास में कहीं अवरुद्धता न हो स्वर कहलाती हैं। स्वरों के वैभिन्य का कारण मुख-विवर की विभिन्न मुद्राओं--जिह्वा के पृथक्-पृथक भागों का विभिन्न मात्रा में ऊपर उठने पर--निर्भर होता है।

समस्त स्वर प्रायः सघोष होते हैं किन्तु कुछ भाषाओं में ऐसे भी स्वर पाये जाते हैं जिन्हें सघोष ध्वनियों के अन्तर्गत वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है। ऐसे स्वरों को फुस्फुहासट वाले स्वर कहते हैं। वास्तव में फुस्फुसाहट वाले स्वर प्रकृत स्वर नहीं है।

(२) **व्यंजन**--वे ध्वनियाँ, जिनके उच्चारण में निर्गत श्वास में कहीं न कहीं अवरुद्धता हो व्यंजन कहलाती हैं।

हिन्दी में दो व्यंजन ध्वनियाँ ऐसी हैं जिनमें बहुत कम अवरुद्धता होती है। ये ध्वनियाँ अर्द्धस्वर (य्, व्) या अर्द्धव्यंजन कहलाती हैं।

स्वर एवं व्यंजनों की भिन्नता मुखरता में भी निहित है। स्वरों की मुखरता व्यंजनों की अपेक्षा अधिक होती है। इसी मुखरता के कारण स्वर ध्वनियाँ आक्षरिक होती हैं। किन्तु इस नियम के भी अपवाद हैं क्योंकि संसार की कई भाषाओं में कुछ व्यंजन भी अक्षर संरचना करते हैं।[1]

---

(१) **स्वरों एवं व्यंजनों की उपर्युक्त परिभाषा ध्वनिशास्त्रीय दृष्टि से दी गई है। भाषा के विश्लेषण के समय आधुनिक भाषाशास्त्रियों के अनुसार स्वरों तथा व्यंजनों की परिभाषा उनकी ध्वन्यात्मक विशेषता पर निर्भर नहीं करती है, अपितु वितरण पर निर्भर करती है।**

३.२८ स्वरध्वनियों का वर्गीकरण

स्वरों का वर्गीकरण मुख्य तीन आधारों पर किया जा सकता है--

(१) **जिह्वा के भागों की दृष्टि से ।**

(२) **जिह्व की ऊँचाई की दृष्टि से।**

(३) **ओठों की आकृति की दृष्टि से ।**

जिह्वा के भागों की दृष्टि से

(१) स्वरों का प्रथम वर्गीकरण जिह्वा के भाग की दृष्टि से किया जाता है । इस दृष्टि से तीन वर्ग होते हैं--

(i) जिह्वा के अग्रभाग द्वारा निर्मित अग्रस्वर । जैसे--(ई, इ, ए, ऐ)

(ii) जिह्वा के पश्चभाग द्वारा निर्मित पश्चस्वर । जैसे (ऊ, उ, ओ, औ, आ)

(iii) जिह्वा के मध्य भाग से निर्मित केन्द्रीयस्वर । जैसे (अ)

जिह्वा की ऊँचाई की दृष्टि से

(२) यह वर्गीकरण स्वर-सीमा[1] के भीतर जिह्वा की ऊंचाई की मात्रा पर किया जाता है । स्वरों को इस आधार पर मुख्यतः चार भागों में विभाजित किया जाता है । किन्तु इस दृष्टि से इससे भी अधिक भागों में स्वरों को विभाजित करने में कोई सैद्धान्तिक रोक नहीं है । ग्लाक एवं ट्रैगर ने स्वरों को सात भागों में विभाजित किया है । इसको आगे एक तालिका के द्वारा प्रदर्शित किया जायगा । यहाँ पर स्वरों को केवल चार ही भागों में विभाजित करके उनका विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है ।

(i) **सम्वृत**

(ii) **अर्धसंवृत**

(iii) **अर्धविवृत**

(IV) **विवृत**

---

(१) **जिह्वा के विभिन्न भागों का उस मात्रा तक उठना जिसके कि निसृत होने वाली वायु का कहीं पर अवरोध न हो स्वर सीमा कहलाती है । वस्तुतः स्वरों के उच्चारण में जिह्वा केवल एक निर्दिष्ट सीमा तक ही ऊपर उठ सकती है; उससे अधिक उठने पर निसृत होने वाली वायु में अवरोध उत्पन्न हो जायगा । फलतः उस स्थिति में उत्पन्न होने वाली ध्वनियाँ व्यंजन हो जायेंगी ।**

(i) **सम्वृत**––जब जिह्वा और स्वर-सीमा के मध्य कम से कम स्थान खाली रहता है तब स्वरों को संवृत स्वर कहते हैं। जैसे––

(अग्रसंवृत––ई, इ तथा

पश्चसंवृत––ऊ, उ)

(ii) **अर्धसम्वृत**––जब जिह्वा और स्वर-सीमा के मध्य संवृत की अपेक्षा-तनिक अधिक स्थान खाली रहता है तब स्वरों को अर्धसंवृत कहते हैं। जैसे––

(अग्र अर्धसम्वृत––ए तथा

पश्च अर्धसम्वृत––ओ)

(iii) **अर्धविवृत**––जब जिह्वा और स्वर-सीमा के मध्य विवृत की अपेक्षा तनिक कम स्थान खाली रहता है तब स्वरों को अर्धविवृत कहते हैं। जैसे––

(अग्र अर्धविवृत––ऐ तथा पश्च अर्धविवृत औ)

(IV) **विवृत**––जब जिह्वा तथा स्वर-सीमा के मध्य अधिक से अधिक स्थान खाली रहता है तब स्वरों को विवृत कहते हैं। जैसे––

(पश्च विवृत––आ)

(अग्र विवृत का हिन्दी में अभाव है)

(३) ओठों की आकृति की दृष्टि से

स्वरों के दो वर्ग किए जाते हैं। स्वरों के उच्चारण में जब ओंठ गोलाकार हों तब स्वरों को वृत्ताकर कहा जाता है। इसके विपरीत जब ओंठ गोलाकार न हों तब उन्हें अवृत्ताकार कहा जाता है। किसी भी स्वर को वृत्ताकार या अवृत्ताकार करके बोला जा सकता है।

स्वरों के उपर्युक्त वर्गीकरण के आधार को निम्नलिखित तालिकाओं के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

तालिका १

जिह्वा की ऊँचाई की दृष्टि से	अग्र		मध्य		पश्च	
	अवृत्ता-कार	वृत्ताकार	अवृत्ता-कार	वृत्ताकार	अवृत्ता-कार	वृत्ताकार
सम्वृत						
अर्धसंवृत						
अर्धविवृत						
विवृत						

तालिका २

जिह्वा की ऊँचाई की दृष्टि से	अग्र		मध्य		पश्च	
	अवृत्ता-कार	वृत्ताकार	अवृत्ता-कार	वृत्ताकार	अवृत्ता-कार	वृद्याकार
उच्च						
निम्न उच्च						
उच्च मध्य						
मध्य						
निम्न मध्य						
उच्च निम्न						
निम्न						

३.२९ मानस्वर (Cardinal Vowels)

मानस्वर की आवश्यकता

जब किसी व्यक्ति को अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त अन्य कोई विदेशी भाषा सीखनी पड़ती है तो उसके लिये उस भाषा के स्वरों के उच्चारण स्थान का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है। जहाँ इसप्रकार की भाषा अध्यापकों से सीखी जाती है वहाँ उच्चारण सीखने में इसलिए कठिनाई नहीं होती कि अध्येता, अध्यापक के शुद्ध उच्चारण को श्रवण द्वारा ग्रहणकर धीरे-धीरे सीख लेता है। विदेशी भाषा के स्वरों का उच्चारण सीखते समय अध्येता यह स्पष्टरूप से समझता जाता है कि उसकी मातृभाषा में इनका उच्चारण-स्थान क्या है तथा जिस भाषा को वह सीख रहा है, उसमें इनका उच्चारण-स्थान कहाँ है ? इस प्रक्रिया द्वारा ही विदेशी भाषा का शुद्ध उच्चारण सीखा जा सकता है। किन्तु आज के व्यस्त जीवन में लोगों में, विदेशी भाषा, अध्यापकों की अपेक्षा स्वयं शिक्षकों से अधिक सीखनी पड़ती है और इसप्रकार इनका ज्ञान कानों से अधिक चक्षुओं के माध्यम से ही प्राप्त करना पड़ता है।

इस दशा में विभिन्न भाषाओं के स्वरों के उच्चारण-स्थान का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिए कोई न कोई वैज्ञानिक पद्धति आवश्यक है। इसी पद्धति के परिणामस्वरूप मानस्वर अस्तित्व में आये हैं। इनके आविष्कर्त्ता लन्दन विश्वविद्यालय के प्रो० डेनियल् जोन्स तथा उनके सहयोगी हैं। अनेक प्रयोगों के पश्चात् ही इनका स्थान निश्चित किया गया है। इनकी संख्या ८ है।

वस्तुतः, ये अँग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, आदि किसी विशिष्ट भाषा अथवा भाषाओं के स्वर नहीं हैं अपितु ये अमूर्त्त ध्वनियाँ हैं एवं विभिन्न भाषाओं के स्वरों के स्थान निर्धारित करने में ये मापदण्ड का काम करते हैं।

३.३० मानस्वर निर्धारित करने की विधि

(१) मानस्वर अऽ (a) के उच्चारण में जिह्वा प्रायः शायित अवस्था में रहती है किन्तु इसका अग्रभाग किंचित् उठा रहता है। इस अवस्था के वाद जब जिह्वा के अग्रभाग को ऊपर उठाकर कठोरतालु के उस स्थान तक ले जाते हैं जहाँ तक किसीप्रकार का संघर्ष अथवा अवरोध नहीं होता तो मानस्वर ई (i) का स्थान होता है।

(२) इसी प्रकार मानस्वर 'आ' (*ɑ*) के उच्चारण में जिह्वा प्रायः प्रकृतावस्था में रहती है किन्तु उसका पिछला भाग किंचित् उठा रहता है। इस अवस्था के वाद जब जिह्वा के पिछले भाग को ऊपर उठाकर कोमलतालु के उस उच्च

स्थान तक ले जाते हैं जहाँ किसी प्रकार का संघर्ष अथवा अवरोध नहीं होता है तो यह मानस्वर ऊ (u) का स्थान होता है।

(३) जिह्वा के अग्रभाग ई तथा अऽ बिन्दुओं एवं पश्चभाग के ऊ तथा आ बिन्दुओं को मिलाकर जो रूप बनता है उसे अर्धविवृत एवं अर्धसम्वृत रूप में बाँटने से चार मानस्वर और बनते हैं।

जिह्वा के अग्रभाग के आधार पर

अर्धसम्वृत अग्रस्वर—ए (e)

अर्धविवृत अग्रस्वर—ऐ (E)

जिह्वा के पश्चभाग के आधार पर

अर्धसंवृत पश्चस्वर—ओ (o)

अर्ध विवृत पच्च स्वर—औ (ɔ)

कुछ स्वर ऐसे भी हैं जिनका उच्चारण जिह्वा के मध्य भाग के कोमलतालु की ओर स्वर-सीमा तक विभिन्न मात्रा में ऊपर उठने के आधार पर होता है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, ये केन्द्रीय या मध्य स्वर कहलाते हैं।

मानस्वरों को प्रायः निम्नलिखित चतुष्कोण में दिखाया जाता है, यद्यपि भाषाशास्त्र की पुस्तकों में परम्परा से इसे त्रिकोण कहा जाता है।
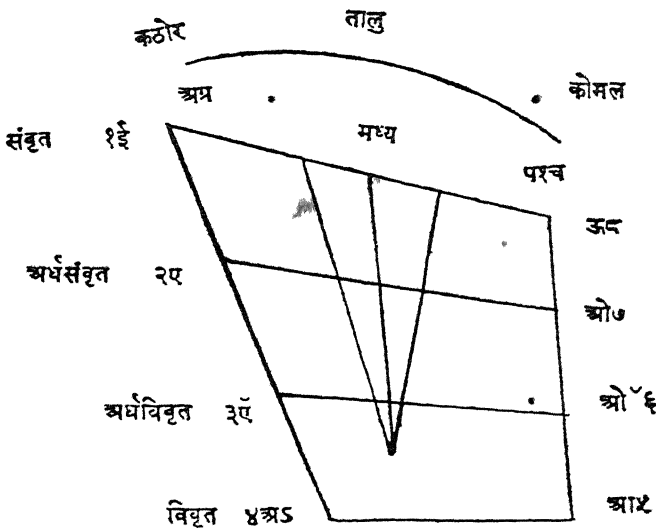
३.३१ गौण मानस्वर

पीछे आठ मुख्य मानस्वरों का उल्लेख हो चुका है। इन्हीं मानस्वरों के समान

अन्य स्वर भी उल्लेखनीय हैं। इन्हें भाषाशास्त्रियों ने गौण मानस्वर के नाम से अभिहित किया है ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, ओठों की आकृति की दृष्टि से स्वरों को दो वर्गों—वृत्ताकार तथा अवृत्ताकार—में विभाजित किया जा सकता है । प्रायः संसार की भाषाओं में अग्रस्वर अवृत्ताकार तथा पश्चस्वर वृत्ताकार रूप में ही उच्चरित होते हैं; किन्तु अनेक भाषाओं में अग्रस्वरों को वृत्ताकार तथा पश्चस्वरों को अवृत्ताकार रूप में उच्चरित किया जाता है । इन स्वरों को भाषाशास्त्री गौण मानस्वर कहते हैं । वस्तुतः ये गौण मानस्वर एक दूसरे के आरोप से बनते हैं । अर्थात् जब अग्र मानस्वरों के उच्चारण में ओठों की स्थिति पर पश्च मानस्वरों के उच्चारण में ओठों की स्थिति का आरोप किया जाता है तो अग्र गौण मानस्वर बनते हैं । इसी प्रकार जब पश्च मानस्वरों के उच्चारण में ओठों की स्थिति पर अग्र मानस्वरों के उच्चारण में ओठों की स्थिति का आरोप किया जाता है तो पश्च गौण मानस्वर बनते हैं ।

सैद्धान्तिक दृष्टि से इस प्रकार आठ गौण मानस्वर बनने चाहिए; किन्तु भाषा-शास्त्री सात ही गौण मानस्वरों का उल्लेख करते हैं; क्योंकि संसार की किसी भी भाषा में अर्धविवृत अग्रस्वर पर पश्चस्वर की ओठों की स्थिति का आरोप किये हुए रूप में कोई भी स्वर प्राप्त नही है । इसीलिए भाषाशास्त्रियों ने सात ही गौण मानस्वरों के लिपिचिह्नों को माना है । गौण मानस्वरों को मानस्वरों की ही भाँति कोष्ठक में स्पष्ट करने की दृष्टि से प्रस्तुत किया जा रहा है । नीचे साथ ही साथ लिपि-चिह्नों को भी दिया जा रहा है, जिसे प्रायः सभी भाषाशास्त्री मानते हैं ।
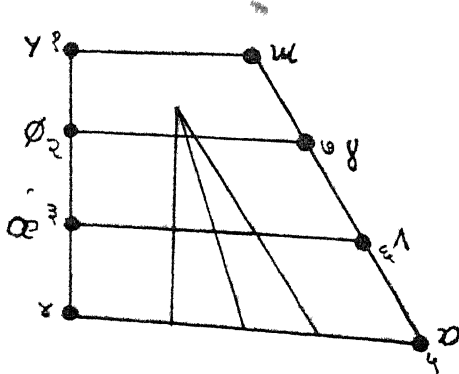
३.३२ व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण

वर्गीकरण के आधार——व्यंजनों का वर्गीकरण मुख्य रूप से निम्नलिखित तीन आधारों पर किया जा सकता है——

(१) **घोषत्व के आधार पर।**

(२) **उच्चारणप्रयत्न के जाधारपर।**

(३) **उच्चारणस्थान के आधार पर।**

घोषत्व के आधार पर

इस आधार पर व्यंजनों को, अघोष तथा घोष या सघोष, दो वर्गों में रखा जा सकता है।

(i) अघोष——जिन व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण में स्वरतंत्रियों में कम्पन नहीं होता है वे अघोष कहलाती हैं।

(ii) सघोष या घोष——अघोष ध्वनियों के विपरीत जिन व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण में स्वरतंत्रियों में कम्पन होता है घोष या सघोष कहलाती हैं।

उच्चारणप्रयत्न के आधार पर

विभिन्न व्यंजनों के उच्चारण में ध्वनियंत्र के विभिन्न अवयवों को अनेक प्रयत्न करने पड़ते हैं। इसप्रकार से इनके अवरोध प्रकृति के आधार पर समस्त व्यंजनों को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

(i) **पूर्णतः अवरोधी**——जब निर्गत श्वास का पूर्ण अवरोध होता है तब ध्वनियाँ पूर्णतः अवरोधी कहलाती हैं। इन अवरोधी ध्वनियों को भी उच्चारण प्रयत्न के आधार पर दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है——

(क) **स्पर्श**

(ख) **स्पर्श संघर्षी**

(क) स्पर्श——जब निर्गत श्वास एक स्फोट के साथ बाहर निकलती है तब इन स्फोट ध्वनियों को स्पर्श ध्वनियाँ कहते हैं। इन ध्वनियों के उच्चारण में श्वास, एक क्षणमात्र के लिए, पूर्ण अवरोध के साथ, कहीं न कहीं अवश्य रुकती है।

(ख) स्पर्श संघर्षी——इन ध्वनियों के उच्चारण में स्पर्श व्यंजनों की भाँति ही निर्गत श्वास एक क्षण के लिए पूर्णतया अवरुद्ध होती है किन्तु इनके निष्कासन के समय वायु संघर्षण के साथ निकलती है।

(ii) **आंशिक अवरोधी**

जिन व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण में निर्गत वायु का पूर्ण रूप से अवरोध नहीं होता है वे आंशिक अवरोधी कहलाती हैं। इन्हें मुख्यरूप से निम्नलिखित वर्गों में रखा जा सकता है——

(क) **संघर्षी।**
(ख) **पार्श्विक।**
(ग) **लुण्ठित।**
(घ) **नासिक्य।**
(ङ) **उत्क्षिप्त।**
(च) **अर्धस्वर।**

(क) **संघर्षी**––संघर्षी व्यंजनों के उच्चारण में निर्गत वायु का पूर्णरूप से अवरोध नहीं होता है। इन ध्वनियों के उच्चारण में श्वास निकलने का मार्ग थोड़ा सा खुला रहता है, फलतः वायु रगड़ खाकर बाहर निकलती है।

(ख) **पार्श्विक**––पार्श्विक व्यंजनों के उच्चारण में जिह्वा की नोक ऊपरी मसूड़े से लगी रहती है; इसके परिणास्वरूप जिह्वा का एक पार्श्व या दोनों पार्श्व खुले रहते हैं और निर्गत वायु इन्हीं पार्श्वों से बाहर निकलती है। इस अवस्था में उच्चरित ध्वनि पार्श्विक कहलाती है।

(ग) **लुण्ठित**––इन ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा की नोक कई बार हिलती है। जब जिह्वा की नोक मसूड़े (वर्त्स) पर एक या कई बार टक्कर मारे तो उच्चरित ध्वनि लुण्ठित या लोड़ित होती है।

(घ) **नासिक्य**––नासिक्य ध्वनियों के उच्चारण मे, वायु-प्रवाह, कोमलतालु के नीचे झुक जाने के कारण नासिकाविवर से निकल जाता है।

(ङ) **उत्क्षिप्त**–इन ध्वनियों का उच्चारण, जिह्वा की नोक को उलट कर, निचले भाग से कठोरतालु को झटके के साथ कुछ दूर तक छूकर, किया जाता है।

(च) **अर्धस्वर**––इनके उच्चारण में जिह्वा संवृत-स्थान से विवृत-स्थान की ओर जाती है। इन्हें स्वर तथा व्यंजन की मध्यवर्ती ध्वनि कहा जाता है।

३.३३ उच्चारण स्थान की दृष्टि से

इस वर्गीकरण का आधार अवरोध स्थान है। दूसरे शब्दों मे निर्गत वायु जिस स्थान पर अवरुद्ध होती है, उसके अनुसार ही ध्वनियों को वर्गीकृत किया जाता है। इसके निम्नलिखित वर्ग हो सकते हैं––

(१) **काकल्य।**
(२) **अलिजिह्वीय।**
(३) **कोमल तालव्य**
(४) **तालव्य।**

(५) मूर्धन्य ।
(६) वर्त्स्य ।
(७) दन्त्य ।

(१) **काकल्य**—इन ध्वनियों के उच्चारण में, स्वरयंत्र से निर्गत होने वाली वायु, मुख पर संघर्षण करती हुई निकलती है। इसमें मुखद्वार खुला रहता है।

(२) **अलिजिह्वीय**—इन ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा के पिछले भाग का अलिजिह्वा के पार्श्व प्रदेश से संस्पर्श होता है।

(३) **कोमल् तालव्य**—जब ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा का पिछला भाग कोमलतालु पर निर्गत वायु को अवरुद्ध करके निष्कासित करता है, तब उच्चरित ध्वनियाँ कोमलतालव्य या कण्ठ्य कहलाती हैं।

(४) **तालव्य**—जब ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा का अग्रभाग कठोर तालु को स्पर्श करके श्वास को अवरुद्ध करता है, तब उच्चरित ध्वनि तालव्य कही जाती है।

(५) **मूर्धन्य**—जब ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा की नोंक उलटकर मूर्धा का संस्पर्श कर श्वास को अवरुद्ध कर देती है तब उच्चरित ध्वनि मूर्धन्य कहलाती है।

(६) **वर्त्स्य**—जब ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा की नोक, दन्त-पंक्तियों के ऊपरी हिस्से,—मसूड़े से सम्बद्ध होकर वायु को अवरुद्ध करती है, तब उच्चरित ध्वनि वर्त्स्य कहलाती है।

(७) **दन्त्य**—जब ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा की नोक ऊपरी दन्त-पंक्ति के सामने वाले दाँत से सम्बद्ध होकर वायु को अवरुद्ध करती है तब उच्च-रित ध्वनि दन्त्य कहलाती है।

(८) (i) **दन्त्योष्ठ्य**—जब ध्वनियों के उच्चारण में नीचे का ओठ ऊपरी दन्तपंक्ति के सामने वाले दाँत से सम्पर्क स्थापित करके वायु को अवरुद्ध करता है, तब उच्चरित ध्वनि दन्त्योष्ठ्य कहलाती है।

(ii) **द्वयोष्ठ्य**—जब ध्वनियों के उच्चारण में निचला ओठ ऊपरी ओठ से सम्पर्क स्थापित करके वायु को अवरुद्ध करता है, तब उच्चरित ध्वनि द्वयोष्ठ्य कहलाती है।

व्यंजनों के ऊपर के वर्गीकरण को निम्नलिखित तालिका में स्पष्टरूप से प्रदर्शित किया जाता है।

अवरोध प्रकृति	उच्चारण प्रकृति	उच्चारण स्थान								
		द्वयोष्ठ्य	दन्त्योष्ठ्य	दन्त्य	वर्त्स्य	मूर्धन्य	तालु	कोमलतालु	अलिजिह्वा	काकल्य
पूर्णतः अवरोधी	१. स्पर्श २. स्पर्श संघर्षी									
आंशिक अवरोधी	१. संघर्षी २. पार्श्विक ३. लुंठित ४. उत्क्षिप्त ५. नासिक्य ७. अर्धस्वर									

उपर्युक्त वर्गीकरण के लिये किसी भी लिपि-चिह्न को अपनाया जा सकता है। भाषाशास्त्री अन्तर्राष्ट्रीय ध्वनिलिपि को ही प्रायः अपने व्यवहार में ले आते है। इस ध्वनिलिपि एवं इसके हिन्दी रूप नथा अमेरिका में प्रजलित पाइक द्वारा निर्मित ध्वनिलिपि की तालिका इस पुस्तक में अन्यत्र दी गयी है। इसके साथ भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त होने वाली ध्वनियों को उदाहरणों द्वारा प्रस्तुत किया जायगा।

अभी तक हमने ध्वनियों का जो वर्गीकरण प्रस्तुत किया है उनका उच्चारण मुखविवर या नासिकाविवर के मार्ग से बाहर निकलने वाली श्वासवायु से ही होता है। किन्तु कुछ भाषाओं मे ध्वनियों का उच्चारण अन्दर फेफड़े की ओर जाने वाली श्वासवायु से भी होता है। इसप्रकार की ध्वनि को भाषाशास्त्री क्लिक ध्वनि कहते हैं। ये ध्वनि दक्षिणी अफ्रीका की कुछ भाषाओं में पायी जाती हैं।

टेप रिकार्डर

अघोष

सघोष

काकल्यस्पर्श

फुस्फुसाहट

काइमोग्राम

४
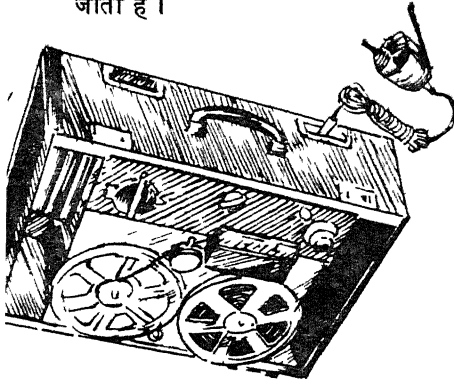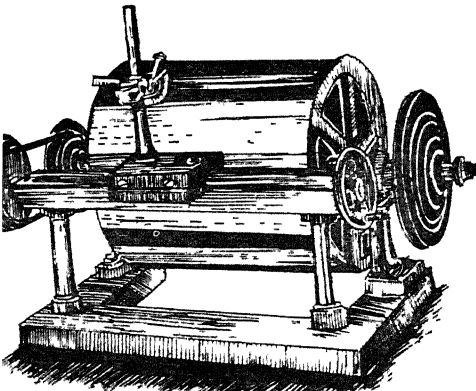
ध्वनिग्रामशास्त्र

४.१० परिचय

मनुष्य के वागेन्द्रिय द्वारा उत्पादित श्रौतगुणों से युक्त ध्वनि को वाग्ध्वनि कहते हैं। इन वाग्ध्वनियों के माध्यम से ही मनुष्य अपना विचार दूसरों पर प्रकट करता है। यदि हम इन वाग्ध्वनियों का विश्लेषण करें तो इनमें अनेक सूक्ष्म ध्वनि-तत्त्व (स्वन) मिलेंगे। जब कोई वक्ता किसी ध्वनि विशेष का कई बार उच्चारण करता है तो उसके प्रत्येक बार के उच्चारण में यत्किंचित अन्तर अवश्य आ जाता है। यद्यपि साधारणतया यह अन्तर सहज ग्राह्य नहीं है, किन्तु आधुनिक आविष्कारों ने ऐसे ध्वनियंत्रों को उपलब्ध कर दिया है जिनकी सहायता से किसी भी ध्वनि के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेदों-प्रभेदों को जाना जा सकता है। यदि हम ध्यानपूर्वक विचार करें तो मनुष्य प्रतिदिन अपरिमित स्वनों (ध्वनितत्त्वों) का उच्चारण करता है। इनमें से सभी स्वन महत्त्वपूर्ण नहीं होते है, इसीलिए स्वनशास्त्री मानव-मुख से निसृत अनेक स्वनों को साम्य एवं वैषम्य के आधार पर कतिपय समूहों में वर्गीकृत करता है जिसके प्रत्येक सदस्य को 'स्वन प्रकार' अथवा ध्वनि की संज्ञा से अभिहित कर सकते हैं।

मनुष्य में इतनी भी क्षमता नही है कि वह प्रत्येक पृथक ध्वनि के द्वारा अर्थ ग्रहण कर सके। यह सत्य है कि मनुष्य अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिये वागेन्द्रियों से ध्वनियों को उत्पादित करता है किन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि मनुष्य प्रत्येक ध्वनि द्वारा अर्थभेद नहीं कर पाता। वस्तुतः यह भेदक शक्ति उसके वातावरण पर निर्भर होती है। उदाहरण के लिये यदि कोई अंग्रेज किसी हिन्दीभाषी से 'कील' तथा 'खील' एवं अवधी तथा भोजपुरी बोलनेवाले से 'कोरा' तथा 'खोरा' शब्द सुने तो उसे दोनों उच्चार एक ही प्रतीत होंगे। इसीप्रकार कोई बँगला भाषा-भाषी हिन्दी के 'पास्' तथा 'पाश्' शब्दों को सुने तो वह भी दोनों उच्चारों को एक ही समझेगा। यह भेद न कर सकने के कारण उनकी भाषा के अभेदक तत्त्व हैं। वास्तव में अंग्रेज तथा बंगाली जिन भाषाओं

का व्यवहार करते हैं उनमें एक ओर अल्पप्राण तथा महाप्राण और दूसरी ओर दन्त्य 'स्' तथा तालव्य 'श्' में भेद नही किया जाता है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि एक अंग्रेज जिस वातावरण में रहता है, उसमें अल्पप्राण तथा महाप्राण का भेद अर्थ की अभिव्यक्ति में किसीप्रकार सहायक नहीं होता। इसीप्रकार बँगला भाषाभाषी जिस वातावरण में रहता है उसमें 'स्' तथा 'श्' पृथक ध्वनियाँ न होने के कारण अर्थ में कोई अन्तर नहीं आता। किन्तु जब यही ध्वनियाँ किसी हिन्दीभाषी के सामने आती हैं तो वह इनमें सहज ही में अन्तर कर लेता है, क्योंकि उसके उच्चारण में अल्प तथा महाप्राण एवं 'स्' और 'श्' ध्वनियाँ अर्थभेदक तथा पृथक हैं।

उपर्युक्त कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि विभिन्न भाषा-भाषियों की ध्वनिभेदक क्षमता भी पृथक-पृथक होती है। इस भेदक-गुण से युक्त ध्वनि को ही 'ध्वनिग्राम' के नाम से अभिहित किया जाता है। वस्तुतः यहीं से ध्वनियों का व्यावहारिक महत्त्व प्रारम्भ होता है, क्योंकि ध्वनियों का स्वतः कोई अर्थ नहीं होता, किन्तु ध्वनिग्रामों का भेदक अर्थ होता है। यह अर्थभेदक शक्ति भी विभिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न होती है। एक ओर मनुष्य द्वारा उच्चरित अपरिमित ध्वनियों तथा दूसरी ओर अर्थभेदक ध्वनियों को ध्यान में रखकर ही प्रसिद्ध ध्वनिशास्त्री के० एल० पाइक ने कहा है कि ध्वनिशास्त्री कच्चा माल एकत्र करता है और ध्वनिग्रामशास्त्री उससे पक्का माल तैयार करता है।

पाइक के ऊपर के कथन का तात्पर्य यह है कि किसी भी ध्वनिशास्त्री के लिये मानव-मुख से निसृत सभी ध्वनियाँ समानरूप से महत्त्वपूर्ण हैं। उसके लिये यह महत्त्वपूर्ण नहीं है कि जिस ध्वनि को वह सुन रहा है वह किस भाषा की है अथवा उच्चरित ध्वनि का कुछ अर्थ है भी अथवा नहीं। किन्तु ध्वनिग्रामशास्त्री के लिये सभी ध्वनियाँ महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। उसके लिये तो केवल वही ध्वनियाँ महत्त्वपूर्ण हैं जो अर्थ-भेदक होती हैं। इनके अतिरिक्त उसके लिये अन्य ध्वनियों का कोई महत्त्व नहीं है। सच तो यह है कि जहाँ से ध्वनिशास्त्री का कार्य समाप्त हो जाता है, वहीं से ध्वनिग्रामशास्त्री का कार्य प्रारम्भ होता है। ध्वनिशास्त्री का कार्य यह है कि वह मनुष्य द्वारा उच्चरित प्रत्येक ध्वनि को ध्वनि-प्रतीकों अथवा लिपि द्वारा अंकित करे; किन्तु ध्वनिग्रामशास्त्री का काम है कि वह वितरण के आधार पर उन असंख्य प्रकार की ध्वनियों में से ऐसी अर्थ भेदक ध्वनियों को चुने जिनसे भाषा गठित होती है। इसीलिए भाषा को व्यावहारिक रूप प्रदान करने वाली अल्पतम अथवा न्यूनतम इकाई किसी भाषा की ध्वनि न होकर उसके ध्वनिग्राम

ही होते हैं। किन्तु यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भाषा में ध्वनि की महत्ता को किसीप्रकार भी कम नहीं किया जा सकता, क्योंकि वास्तव में इसीसे ध्वनिग्रामों को प्राप्त किया जाता है।

४.११ ध्वनिग्राम की परिभाषा

व्यावहारिक उपादेयता को ध्यान में रखकर विभिन्न भाषाशास्त्रियों ने 'ध्वनि-ग्राम' की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी हैं। नीचे ये परिभाषाएँ दी जाती हैं—

(१) डैनियल जोन्स—किसी भाषा में ध्वनिग्राम सम्बन्धित (गुण में) ध्वनियों का परिवार होता है जिसका कोई सदस्य किसी शब्द में इसप्रकार आता है कि उसीप्रकार के ध्वन्यात्मक सन्दर्भ में उसका कोई दूसरा सदस्य नहीं आता है।[1]

(२) ब्लूमफिल्ड—ध्वनिग्राम व्यवच्छेदक ध्वनि स्वरूप की लघुतम इकाई है।[2]

(३) हाकेट—किसी भाषा के ध्वनिग्राम वे तत्त्व हैं जो उस भाषा की ध्वनि प्रक्रियात्मक पद्धति में एक दूसरे के व्यतिरेकी रूप में आते हैं। यहाँ यह बात सदैव स्मरण रखनी चाहिए कि ध्वनिग्राम की परिभाषा हम उसी भाषा के अन्य ध्वनिग्रामों से अन्तर अथवा व्यवच्छेदक रूप में ही दे सकते हैं।[3]

---

(१) A phoneme is a family of sounds in a given language which are related in character and are used in such a way that no one member ever occurs in a word in the same phonetic context as any other member [D. jones .. An Outline of English phonetics .. The phoneme pp. 10].

(२) .. A minimum unit of distinctive sound feature, .. [Bloom Field—Language P. F.

(३) A phoneme of a language then are the elements which stand in contrast with each other in the phonologicial system of the language. .. It must he constantly remembered that a phoneme in a given language is defined only in terms of its

(४) ब्लाक तथा ट्रैगर—ध्वनिग्राम, ध्वन्यात्मक दृष्टि से, समान ध्वनियों का समूह है जो किसी भाषा विशेष के उसीप्रकार के अन्य समस्त समूहों से व्यतिरेकी एवं अन्यापवर्जी होता है।[४]

(५) नेल्सन फ्रान्सिस—ध्वनिग्राम एक या एक से अधिक ऐसे स्वन प्रकारों का समूह है जो ध्वन्यात्मक दृष्टि से समान तथा परिपूरक वितरण में होते हैं। विभिन्न स्वनप्रकार जो ध्वनिग्राम का निर्माण करते हैं, उसके सदस्य अथवा सहस्वन कहलाते हैं।... ध्वनिग्राम ऐसे स्वनप्रकारों का समूह है जो ध्वन्यात्मक दृष्टि से समान तथा 'परिपूरक वितरण' या 'मुक्तपरिवर्तन' में होते है।[५]

(६) एच्० ए० ग्लीसन—ध्वनिग्राम बोलचाल की भाषा के उच्चरित रूप की वह न्यूनतम विशेषता है जिसके द्वारा किसी कही गई बात का, कही जाने वाली किसी अन्य बात से अन्तर स्पष्ट किया जाता है।... ध्वनिग्राम, ध्वन्यात्मक दृष्टि से, किसी भाषा अथवा बोली में, समान ध्वनियों का समूह है जिसके वितरण का एक ढाँचा होता है।[६]

---

differences from the other phonemes of same language. [Charles F. Hockett–A Course in Modern Linguistics p. 26].

(४) A phoneme is a class of phonetically similar sounds contrasting and mutually exclusive with all similar classes in the language. [Block and Trager—An Outline of Linguistic Analysis. pp. 40]

(५) A phoneme is a group of one or more phonetypes that are phonetically similar and in complementary distribution....The different phonetypes that make up a phoneme are called its members or Allophones. ...A phoneme is a group of phone-types which are phonetically similar and either in complementary distribution or in free variation. [W. Nelson Francis—The structure of American English. pp. 122, 127].

(६) We may define a phoneme as a minimum feature

ऊपर ध्वनिग्राम की जो परिभाषाएँ दी गई हैं, उन्हें भलीभांति समझने के लिये इनमें प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों का जानना आवश्यक है। नीचे इस सम्बन्ध में विचार किया जायेगा।

वितरण—वितरण से तात्पर्य किन्हीं भाषीय रूपों—स्वन, ध्वनिग्राम, पद, पदग्राम—के उन स्थानों से है जहाँ वे घटित होते हैं। भाषाशास्त्र में वितरण का विशेष महत्त्व है। वर्णनात्मक भाषाशास्त्री जब किसी भाषा की गठन अथवा उसके ढाँचे का सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत करता है तो उसका आधार, वास्तव में, वितरण ही होता है।

किसी भी भाषा के ध्वनिग्रामों तक पहुँचने के लिए निम्नलिखित प्रकार के वितरणों का ज्ञान आवश्यक है—

मुक्त परिवर्तन या वितरण—जब कोई वक्ता किसी उच्चार विशेष की पुनरावृत्ति करता है तो कभी-कभी उसके उच्चार के कुछ खण्ड, अर्थ के परिवर्तन किये बिना ही भिन्न हो जाते हैं, अर्थात् ध्वनिखण्डों में भिन्नता होते हुए भी अर्थ में भिन्नता नहीं आती। दूसरे शब्दों में जब दो उच्चारों के कुछ खण्डों में विभिन्नता होते हुए भी उनके अर्थ में किसीप्रकार का अन्तर नहीं आता है तो ये खण्ड मुक्त परिवर्तन या वितरण में होते हैं। ध्वनिग्रामशास्त्र में यह मुक्त परिवर्तन या वितरण दो पृथक-पृथक स्वनग्रामों अथवा किसी स्वनग्राम के सहस्वनों के मध्य हो सकता है।

परिपूरक वितरण—जब दो या दो से अधिक ध्वनियों का वितरण इस रूप में हो कि उनमें से कोई भी ध्वनि कभी भी ठीक उसीप्रकार की समान स्थिति में घटित न हो जिसमें एक घटित होती है तो ये ध्वनियाँ परिपूरक वितरण में

---

of the expression system of a spoken language by which one thing that may be said is distinguished from any other thing which might have been said ....A phôneme is a class of sound which are phonetically similar and show certain characteristic patterns of distribution in the language or dialect under consideration [H. A. gleason —An Introduction to Descriptive Linguistics p. p. 16. 162].

कही जाती हैं। यदि इसप्रकार की सभी ध्वनियाँ ध्वन्यात्मक समानता लिये हुए हों तो वे एक ध्वनिग्राम के सहस्वन रूप में वर्गीकृत की जा सकती हैं।

किसी ध्वनिग्राम की विभिन्न ध्वनियाँ जब परिपूरक वितरण में होती हैं तब वे उस ध्वनिग्राम की' सहस्वन' कहलाती हैं।

व्यतिरेकी वितरण--जब दो ध्वनियों का इसप्रकार वितरण हो कि उनका वातावरण भी एक हो तो इसप्रकार के वितरण को व्यतिरेकी वितरण की संज्ञा दी जाती है। व्यतिरेक का निर्धारण वस्तुतः ध्वनियों के परिवेश के रूप में होता है। परिवेश से तात्पर्य ध्वनियों के घटित होने वाले स्थानों से है। अर्थात् किसी उच्चार में कोई ध्वनि किस स्थिति--प्राथमिक, माध्यमिक अथवा अन्तिम--में किन ध्वनियों के साथ घटित होती है, यही उस ध्वनि का परिवेश है।

जब दो ध्वनियाँ समान परिवेश में आती हैं तो वे दो पृथक ध्वनिग्रामों का निर्माण करती हैं। ध्वनिग्राम के निर्धारण के लिये दो 'अल्पतम' या 'न्यूनतम युग्मों' को लेना पड़ता है; यथा--'कल्' तथा 'खल्'।

ऊपर के वितरणों को स्पष्ट करने के लिये यहाँ एक उदाहरण दिया जाता है। कुछ दिनों पूर्व मेरी कक्षाओं में दो जुड़वें लड़के राम तथा श्याम पढ़ते थे। वे दोनों रूप, रंग तथा आकृति में समान थे। प्रथम वर्ष राम एक कक्षा में तथा श्याम दूसरी कक्षा में था। अतएव इन्हें पहिचानने में मुझे किंचित मात्र भी कठिनाई नहीं होती थी; किन्तु वर्ष के अन्त में मुझे इस बात का पता चला कि जिस दिन राम अनुपस्थित रहता था उस दिन श्याम उसकी कक्षा में आकर उपस्थिति बोल दिया करता था और इसप्रकार राम की उपस्थिति का कार्य पूर्ण हो जाता था।

अगले वर्ष राम तथा श्याम, संयोगवश, एक ही कक्षा में आकर अध्ययन करने लगे। ऐसी स्थिति में, उनमें विभेद करने के लिए, उनके कुछ ऐसे गुणों को जान लेना आवश्यक हो गया जिनके द्वारा उन्हें पहिचाना जा सके।

ऊपर के उदाहरण में राम तथा श्याम की स्पष्ट रूप से तीन स्थिति है। प्रथम स्थिति में राम तथा श्याम भिन्न-भिन्न परिवेश में हैं। जिस कक्षा में राम पढ़ता है, उस कक्षा में श्याम नहीं। इसीप्रकार जिस कक्षा में श्याम पढ़ता है उसमें राम नहीं। दोनों के रहने के स्थान अन्यापवर्जी हैं। दोनों व्यक्ति कभी भी एक दूसरे की कक्षाओं की सीमा का अतिक्रमण नहीं करते। वे दोनों "परिपूरक वितरण" की स्थिति में हैं।

दूसरी स्थिति वह है जब राम की अनुपस्थिति में श्याम उसकी उपस्थिति

बोल दिया करता है और मुझे ज्ञात भी नहीं होता। यह स्थिति वस्तुतः मुक्त परिवर्तन अथवा वितरण की है।

तीसरी स्थिति में राम तथा श्याम एक ही कक्षा में आ जाते हैं। यह ऐसी स्थिति है कि उन दोनों को उनके स्वभाव तथा गुणों के अनुसार पृथक किया जाय अन्यथा उन दोनों को अलग-अलग पहिचानना कठिन होगा। यह स्थिति वास्तव में 'व्यतिरेकी' की है।

४.१२ साधुहिन्दी तथा अवधी के नासिक्य व्यंजनों का वर्गीकरण

ऊपर की तरह ही, भाषाओं की ध्वनियों का भी वितरण होता है। नीचे साधुहिन्दी तथा अवधी के नासिक्य व्यंजनों का वितरण प्रस्तुत किया जा रहा है। इन दोनों के शब्द उच्चारण के अनुसार ही लिखे गये हैं। इन्हीं के आधार पर विविध वितरणों एवं ध्वनिग्रामों को स्पष्ट किया जायेगा।

साधुहिन्दी	अवधी
१. मामा	१. ममा
२. नाना	२. नना
३. मान्	३. सान्
४. काम्	४. साम्
५. पलङ्	५. पलङ्
६. चम्पा	६. घुम्पा
७. डण्डा	७. पण्डा
८. चञ्चल्	८. चञ्चल्
९. किनकी	९. तिन्का
१०. पङ्खी	१०. पङ्खी
११. शङ्का	११. शङ.का
१२. पानी	१२. पानी
१३. पाणी	१३. कन्खी
१४. प्राण्	१४. प्रान

उपर्युक्त उच्चारों में यदि नासिक्य ध्वनियों को एकत्र किया जाय तो साधु हिन्दी तथा अवधी में पाँच नासिक्य ध्वनियाँ—म्, न्, ण्, ञ् तथा ङ्—मिलेंगी, किन्तु यदि हम इनके वितरण पर विचार करें तो इनमें ध्वनिग्रामिक अन्तर मिलेगा। इनमें से, साधुहिन्दी की नासिक्य ध्वनियों का वितरण कोष्ठक (१) तथा अवधी की नासिक्य ध्वनियों का वितरण कोष्ठक (२) में नीचे दिया जाता है—

कोष्ठक (१)

साधु हिन्दी की नासिक्य ध्वनियों का वितरण

नासिक्य ध्वनियाँ	प्राथमिक स्थिति	दो स्वरों के मध्य	माध्यमिक	अन्त्य स्थिति
म्	✓	✓	✓	✓
न्	✓	✓	✓	✓
ण्		✓	✓	✓
ञ्			✓	
ङ्			✓	✓

कोष्ठक (२)

अवधी की नासिक्य ध्वनियों का वितरण

नासिक्य ध्वनियाँ	प्राथमिक स्थिति	दो स्वरों के मध्य	माध्यमिक स्थिति	अन्त्य स्थिति
म्	✓	✓	✓	✓
न्	✓	✓	✓	✓
ण्			✓	
ञ्			✓	
ङ्			✓	✓

ऊपर के कोष्टकों के अध्ययन से दोनों भाषाओं की नासिक्य ध्वनियों के वितरण की भिन्नता सहज ही में ज्ञात हो जाती है।

वितरण--साधुहिन्दी में, प्राथमिक स्थिति में। म्, न्, । दो स्वरों के मध्य। म्, न्, ण्, । माध्यमिक स्थिति में। म् न्, ण्, ञ् तथा ङ् । एवं अन्तिम स्थिति में। म्, न्, ण् तथा ङ् । ध्वनियाँ आ रही हैं।

परिपूरक वितरण--ऊपर के विवरण के उपरान्त यदि साधु हिन्दी के उच्चारों के वितरण पर सावधानी से विचार किया जाय तो [ञ्] का वितरण अन्य ध्वनियों के परिपूरक रूप में है। वस्तुतः [ञ्] ध्वनि केवल शब्द की माध्यमिक स्थिति में, चवर्गीय व्यंजनों के पूर्व आती है और इस स्थिति में यह किसी अन्य नासिक्य ध्वनि में नहीं आती।

मुक्त परिवर्तन का उदाहरण ऊपर के कोष्ठकों में उपलब्ध नहीं है, किन्तु विविध भाषाओं में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। जब ध्वनियों के, किसी परिवेश विशेष में, पारस्परिक परिवर्तन करने पर भी अर्थमें किसीप्रकार का अन्तर नहीं आता तो ये दोनों ध्वनियाँ मुक्त परिवर्तन में होती हैं। उदाहरण-स्वरूप पंजाबी की कुछ बोलियों में [घ्] तथा [क्] मुक्तपरिवर्तन में हैं क्योंकि वहाँ। घोड़ा। को। कोड़ा। बोलते हैं। मैथिली तथा भोजपुरी के कुछ क्षेत्रों में (ड़्) तथा (र्) मुक्तपरिवर्तन में हैं क्योंकि वहाँ (सड़क्। को। सरक्। कहते हैं। इसी-प्रकार बुलन्दशहर की बोली में [ण्] तथा [न्] मुक्तपरिवर्तन में मिलते हैं क्योंकि वहाँ ।प्राण्। तथा ।प्रान्। दोनों बोला जाता है।

मुक्त परिवर्तन के सम्बन्ध में यह बात उल्लेखनीय है कि यह कथन-शैली की विशेषता मात्र है। एक ही शब्द की दो खण्ड ध्वनियों में अन्तर न होने का कारण वास्तव में उनका अभेदक होना ही है। यह अभेदक शक्ति केवल उस भाषा को भलीभाँति व्यवहार में लाने वालों तक ही सीमित होती है; किन्तु जिन भाषाओं में ये ध्वनियाँ भेदक हैं उनके बोलने वाले लोग इनके अन्तर को तुरन्त ग्रहण कर लेते हैं।

विविध भाषाओं में, व्यतिरेकी स्थिति में आने वाली ध्वनियाँ सदैव पृथक ध्वनिग्रामों का निर्माण करती हैं। व्यतिरेक वस्तुतः अर्थ के आधार पर ही निर्धारित किया जाता है; यथा--। कल। तथा। खल। इनमें। क। तथा। ख। दोनों, पृथक ध्वनिग्राम अथवा स्वन ग्राम हैं।

व्यतिरेकी वितरण--साधुहिन्दी की [ञ्] ध्वनि को छोड़कर अन्य सभी नासिक्य ध्वनियाँ--[म्, न्, ण्, ङ]--व्यतिरेकी स्थिति में हैं, अतएव ये पृथक

ध्वनिग्राम हैं। यह बात साधुहिन्दी के निम्नलिखित उच्चारों से स्पष्ट हो जाती है । यथा--

म् । ।न् ।

मामा ।

नाना ।

न् । ण् ।

पानी । तथा । पाणी ।

।न् । ङ् । किन्की । तथा । पङखी ।

ऊपर के उदाहरण में अवधी के उच्चारों की स्थिति इसप्रकार है--

वितरण--अवधी की नासिक्य ध्वनियों में, प्राथमिक स्थिति में ।म् तथा न्, दो स्वरों के मध्य । म् तथा न्, माध्यमिक स्थिति में । म्, न्, ण्, ञ् तथा ङ् । एवं अन्तिम स्थिति में । म्, न् तथा ङ् । ध्वनियाँ आई हैं ।

परिपूरक वितरण--साधुहिन्दी तथा अवधी की ध्वनियों के वितरण के तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि साधुहिन्दी में केवल एक ध्वनि [ञ्] ही परिपूरक वितरण में है किन्तु अवधी में[ण्] एवं[ञ्] दोनों परिपूरक वितरण में हैं । इनमें [ण्] ध्वनि तो माध्यमिक स्थिति में मूर्धन्य अथवा टवर्गीय व्यंजन के पूर्व आती है तथा [ञ्] का आगमन माध्यमिक स्थिति में तालव्य अथवा चवर्गीय व्यंजन के पूर्व होता है । इस स्थिति में अन्य नासिक्य ध्वनियाँ नहीं आती हैं ।

व्यतिरेकी वितरण--अवधी में[ञ्] तथा [ण्] को छोड़कर अन्य समस्त नासिक्य ध्वनियाँ--म्, न् तथा ङ् । व्यतिरेकी स्थिति में है । अतएव ये पृथक ध्वनिग्राम हैं । यह बात निम्नलिखित उच्चारों से स्पष्ट हो जाती है--

न् । म् । ममा ।

नना ।

न् । ङ् । कन्खी । तथा । पङखी ।

यहाँ यह जान लेना अत्यावश्यक है कि किसी भाषा के ध्वनिग्रामों के निर्धारण में अल्पतम अथवा न्यूनतम युग्मों से अत्यधिक सहायता मिलती है । इन अल्पतम युग्मों में व्यतिरेकी या भिन्न ध्वनियों या ध्वनिग्रामों को छोड़कर बाकी समस्त परिवेश समान होता है । उदाहरणार्थ हिन्दी के निम्नलिखित अल्पतम युग्मों के आधार पर । क् । तथा । ख् । ध्वनिग्रामों को सहज में ही निर्धारित किया जा सकता है--

क् । कील् ।

ख् । खील् ।

कल् ।

खल् ।

४.१३ ध्वनिग्रामीय विश्लेषण

ऊपर ध्वनियों के वितरण के सम्वन्ध में विचार किया गया है । अब इन ध्वनियों से ध्वनिग्राम का निर्धारण करने के लिये जिन उपायों का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है उन्हें जान लेना आवश्यक है । इसका कारण यह है कि ध्वनिग्रामीय पद्धति पर कार्य करने वाले भाषाशास्त्री को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है ।

किसी भाषा की ध्वनिग्रामिक प्रणाली का ज्ञान प्राप्त करने के लिये जब कोई भाषाशास्त्री कार्य प्रारम्भ करता है तो उसके लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह सूचक के साथ काम करे । वास्तव में सूचक वही व्यक्ति हो सकता है जिसकी मातृभाषा वही हो जिस पर कि भाषाशास्त्री कार्य कर रहा है । इस सम्बन्ध में भाषाशास्त्री का सर्वप्रथम एवं प्रमुख कर्तव्य यह होता है कि वह सूचक के मुख से निसृत सूक्ष्मातिसूक्ष्म ध्वनियों को यथातथ्य रूप में अंकित करे । ध्वनिरूपों के अकन के लिये भाषाशास्त्री प्रायः अन्तर्राष्ट्रीय ध्वनिपरिषद् अथवा पाइक द्वारा निर्मित लिपि का प्रयोग करते हैं; किन्तु अन्य लिपियों (यथा नागरी) में भी आवश्यक संशोधन करके उसे पूर्ण ध्वन्यात्मक बनाया जा सकता है । ध्वन्यात्मक रूपों को प्राप्त कर लेने के पश्चात् भाषाशास्त्री के लिये प्रत्येक ध्वनि के वितरणीय परिवेश का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है । इसके उपरान्त उसे निम्नलिखित चार आधारों पर किसी भाषा के ध्वनिग्रामों अथवा उसकी ध्वनिग्रामीय प्रणाली का अध्ययन करना चाहिए :—

(क) व्यतिरेक तथा परिपूरक वितरण का सिद्धान्त ।

(ख) ध्वन्यात्मक समानता का सिद्धान्त ।

(ग) पद्धति या प्रणाली का ढाँचा ।

(घ) मितव्ययिता का सिद्धान्त ।

४.१४ व्यतिरेक तथा परिपूरक वितरण का सिद्धांत

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, व्यतिरेकी स्थिति में आने वाली ध्वनियाँ पृथक् ध्वनिग्राम का निर्माण करती हैं । दो ध्वनियाँ या स्वनरूप, व्यतिरेकी स्थिति में रहते हुए कभी भी एक ध्वनिग्राम में गठित नहीं हो सकते हैं । उदाहरणस्वरूप

हिन्दी की प्राथमिक स्थिति में आने वाली [प्] तथा [फ्] ध्वनियाँ कभी भी ध्वनिग्रामिक दृष्टि से एक नही हो सकती क्योंकि प्राथमिक स्थिति में इसके । पल् । तथा । फ़ल् । एवं । पाग् । तथा । फाग् । अल्पतम युग्म मिलते है। ठीक यही स्थिति अंग्रेजी के [ट्] तथा [ड्] ध्वनियों की है जिसमें । टिन् । तथा । डिन्। एवं । टेन् । तथा । डेन् । युग्म उपलब्ध है ।

जब दो ध्वनियाँ व्यतिरेकी परिवेश में न हों तो वे परिपूरक कहलाती हैं । अर्थात् इनमें से कोई भी ध्वनि ऐसे परिवेश में घटित नहीं होती जिसमें दूसरी ध्वनि घटित होती है। ये ध्वनियाँ सहस्वन कहलाती हैं। किन्तु यहाँ यह बात भी स्मरण रखने योग्य है कि परिपूरक वितरण के आधार पर किया गया निर्णय मिथ्या एवं भ्रमपूर्ण भी हो सकता है। उदाहरणार्थ साधुहिन्दी का माध्यमिक स्थिति का [न्] अन्य सभी अंतिम स्थिति में आने वाले नासिक्य व्यंजनों [म्, न्, ण् तथा ङ्] से उसीप्रकार व्यतिरेकी है जैसे कि साधुहिन्दी के अन्य व्यंजनों से वह है। इसीप्रकार अंग्रेज़ी का प्राथमिक स्थिति का [r]अन्तिम स्थिति में आने वाले सभी अवरोधी व्यंजनों (p. t. b. d. g.) से उसीप्रकार व्यतिरेकी रूप में है जिसप्रकार कि वह अन्य अंग्रेजी भाषा की ध्वनियों से है। ऐसी अवस्था में, किस ध्वनि को किस ध्वनिग्राम के साथ, सहस्वन के रूप में संगठित किया जाय, इसके लिये द्वितीय सिद्धान्त का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है ।

४.१५ ध्वन्यात्मक समानता का सिद्धांत

इस सिद्धान्त के अनुसार यदि किसी ध्वनिग्राम के दो या दो से अधिक सहस्वन कई स्थितियों में आते हैं तो उन सहस्वनों में ध्यन्यात्मक समानता की मात्रा अधिक रहेगी। ध्वन्यात्मक समानता का सहज में वर्णन नही किया जा सकता । ध्वनियों की समानता का निर्णय उनके स्थान या प्रयत्न की दृष्टि या दोनों दृष्टियों से किया जा सकता है। वस्तुत: जिन आधारों पर एक ध्वनि दूसरे से पृथक की जा सकती है यदि उन आधारों में से एक भी आधार ऐसा मिले जिस पर दोनों ध्वनियाँ समान हों तो इन ध्वनियों में ध्वन्यात्मक समानता मानी जायेगी । किसी ध्वनि विशेष की इसप्रकार की समानता कई ध्वनियों से हो सकती है। केवल सापेक्षिक दृष्टि से ही दो ध्वनियों की ध्वन्यात्मक समानता व्यक्त की जा सकती है । उदाहरणार्थ साधुहिन्दी की [प्] तथा [ब्] ध्वनियोंमें [प्] [तथा म्] की अपेक्षा ध्वन्यात्मक समानता अधिक है। [प्] तथा [ब्] का उच्चारण-स्थान एक है, अन्तर केवल इतना ही है कि [प्] अघोष तथा [ब्] घोष ध्वनि है।

ठीक [प्] तथा [म्] की भी यही दशा है किन्तु [म्] की अनुनासिकता के कारण [प्] तथा [म्] में सापेक्षिक दृष्टि से ध्वन्यात्मक समानता कम है।

जब दो या दो से अधिक ध्वनियाँ परिपूरक वितरण में होती हैं और उनमें ध्वन्यात्मक समानता भी होती है तब ये ध्वनियाँ एक ध्वनिग्राम का निर्माण करती हैं और ये ध्वनियाँ उस ध्वनिग्राम की सहस्वन कहलाती हैं। भाषाशास्त्री सहस्वन के लिए इस प्रकार के कोष्ठ [ ] तथा ध्वनिग्राम के लिए इस चिह्न ।। का प्रयोग करते हैं।

यद्यपि नासिक्य व्यंजनों के वितरण पर पहले विचार किया जा चुका है किन्तु ध्वन्यात्मक समानता के सिद्धान्त तथा इस वितरण को सूत्ररूप में प्रदर्शित करने की विधि को यहाँ स्पष्ट किया जाता है। [म्, न्, ण्, ञ् तथा ङ् ध्वनियाँ] साधुहिन्दी में, माध्यमिक स्थिति में आती हैं। इनमें म्, न्—ध्वनियाँ प्राथमिक स्थिति में तथा म्, न् एवं ङ् ध्वनियाँ अन्तिम स्थिति में आती हैं। इसप्रकार से प्राथमिक स्थिति में, 'म्' तथा 'न्' में, माध्यमिक स्थिति में 'म्, न्, ण्, ञ् ङ्' तथा अन्तिम स्थिति में 'म्, न् ङ्' में व्यक्तिरेक मिलता है। ऐसी अवस्था में हमें माध्यमिक स्थिति के नासिक्य व्यंजनों के परिवेश का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो ज्ञात होगा कि माध्यमिक स्थिति में [ञ्] केवल तालव्य अथवा चवर्गीय ध्वनियों के पूर्व ही आता है, अन्य किसी वर्ग की ध्वनियों के के साथ नहीं आता। ध्वनिग्राम से सम्बद्ध करने के लिये, यहाँ पर, ध्वन्यात्मक समानता तथा परिपूरक वितरण के आधार पर, इसे हम ।न्। के अन्तर्गत रखेंगे। जिसका कि वितरण इसप्रकार होगा—

[न्] [ञ्] चवर्गीय ध्वनियों के पूर्व, माध्यमिक स्थिति में;
[न्] अन्यत्र।

अवधी के नासिक्य व्यंजनों का अध्ययन करने पर ।म्, न्, ङ्। तीन ही नासिक्य ध्वनिग्राम प्राप्त होते हैं, जब कि साधुहिन्दी में चार—।म्, न्, ण्, ङ्। ध्वनिग्राम मिलते हैं। अवधी में, अन्य नासिक्य ध्वनियाँ, परिपूरक वितरण तथा ध्वन्यात्मक समानता के आधार पर ।न्। में समाहित हो जाती है।

[न्] [ञ्] चवर्गीय अथवा तालव्य ध्वनियों के पूर्व;
[ण्] मूर्धन्य व्यंजनों के पूर्व;
[न्] अन्यत्र।

यहाँ पर यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि इन उपर्युक्त तीन ध्वनियों में ।न्। को ही ध्वनिग्राम क्यों माना गया है। वस्तुतः इन तीन ध्वनियों में से किसी

एक को ध्वनिग्राम माना जा सकता है। इसके मानने में कोई सैद्धान्तिक आपत्ति नहीं उठाई जा सकती। किन्तु भाषाशास्त्री उसी ध्वनि को ध्वनिग्राम मान लेते हैं जिसका वितरण अन्य ध्वनियों या सहस्वनों की अपेक्षा अधिक होता है।

परिपूरक वितरण में होते हुए भी ध्वन्यात्मक समानता न होने के कारण अंग्रेज़ी में (h) तथा ṅ [=ङ] दोनों ध्वनियाँ, दो पृथक ध्वनिग्रामों का निर्माण करती हैं। अतः ध्वन्यात्मक समानता के आधार को विशेष महत्व मिलता है। किन्तु अमेरिका के आधुनिक भाषाशास्त्री, जिनमें हिल तथा हैरिस का प्रमुख स्थान है, वितरण पर ही विशेष बल देते हैं।

४.१६ पद्धति का ढाँचा—

ध्वनिग्रामों के निर्धारण करने में तीसरा सिद्धांत पद्धति का ढाँचा है। वस्तुतः प्रत्येक भाषा की गठन में अन्तर होता है। प्रत्येक- भाषा में ध्वनियों तथा शब्दों का क्रम दूसरी भाषाओं से अलग होता है। जिस प्रकार मकान बनाने के लिये प्रत्येक मनुष्य को ईंटों की आवश्यकता होती है किन्तु इन ईंटों को मकान का रूप देने के लिये कई प्रणालियों को अपनाया जा सकता है। इसीप्रकार की स्थिति भाषा के ढाँचे की भी होती है। ध्वनिग्रामों को निर्धारित करने में इसीलिए यह आधार भी महत्वपूर्ण है किन्तु इसे उपर्युक्त दोनों सिद्धान्तों के बराबर महत्व नहीं दिया जा सकता।

उदाहरण के लिये यदि किसी ध्वनिग्रामशास्त्री को, साधुहिन्दी पर कार्य करते हुए, व्यंजन वर्ग में कण्ठ्य, दन्त्य, एवं मूर्धन्य व्यंजन ध्वनियों में घोष अघोष, महाप्राण, अल्पप्राण का भेद मिलता हो किन्तु द्वयोष्ठ्य वर्ग में महाप्राण तथा अल्पप्राण का भेद न प्राप्त हो तो ऐसी स्थिति में ध्वनिग्रामशास्त्री को धैर्य से काम लेना चाहिए। उसे पहले अध्ययन के आधार पर ही यह निष्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिए कि इस वर्ग में महाप्राण तथा अल्पप्राण-ध्वनियों का व्यतिरेक नहीं है। ध्वनिग्रामशास्त्री को चाहिए कि वह प्राप्त सामग्री का फिर से, एकबार और अधिक सतर्कता के साथ अध्ययन करे। यदि वह आवश्यक समझे तो इससे सम्बन्धित कुछ अधिक सामग्री का संकलन करे। प्रायः उसे इसप्रकार का रिक्त स्थान नहीं मिलेगा क्योंकि प्रत्येक भाषा का अपना ढाँचा होता है। किन्तु कल्पना के आधार पर ही रिक्त स्थान की पूर्ति नहीं कर लेनी चाहिए।

४.१७ मितव्ययिता का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त से मुख्य तात्पर्य यह है कि ध्वनिग्रामों का निर्धारण तथा ध्वनिग्रामिक विश्लेषण, कम से कम शब्दों में, सूत्रवत होना चाहिए। भारत के लिए

यह सिद्धान्त नया नही है। संस्कृत वैयाकरण तो सूत्रों की रचना करते समय, आधी मात्रा के लाघव में, पुत्रोत्पत्ति के आन्नद का अनुभव करते है। अष्टाध्यायी के सूत्रों की रचना में तो पाणिनि ने एक-एक अक्षर को कम करने में सारी शक्ति लगा दी है। पाणिनि की सूत्र रचना की प्रशंसा में पतञ्जलि 'महाभाष्य' में लिखते हैं, "दर्भ पवित्र पाणि प्रामाणिक आचार्य ने शुद्ध एकान्त स्थान में प्राङमुख बैठकर एकाग्रचित्त होकर बहुत प्रयत्नपूर्वक सूत्रों की रचना की है। अतः उनमें एक वर्ण भी अनर्थक नहीं हो सकता. . . .।"

मितव्ययिता के सिद्धान्त के सम्बन्ध में यह बात उल्लेखनीय है कि प्रथम तीन सिद्धान्तों के समान यह महत्त्वपूर्ण नही है। इसका कारण यह है कि ध्वनिग्रामों के निर्धारण तथा ध्वनिग्रामिक विश्लेषण में इससे कुछ भी सहायता नही मिलती। वस्तुतः इस सिद्धान्त का महत्त्व सूत्रों की रचना में ही है। इस सिद्धान्त का अनुसरण करते समय भाषाशास्त्री को सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कही वह सूत्रों की रचना इस रूप में तो नही कर रहा है जिससे भाषा के विश्लेषण में कठिनाई होने वाली है। यदि ऐसा हो तो इस सिद्धान्त का त्याग करना ही श्रेयस्कर है।

ध्वनिग्रामों के वर्गीकरण में निम्नलिखित तीन विशेषताएँ होनी चाहिए—

(१) वर्गीकरण पूर्ण होना चाहिए।

(२) ढाँचा समान होना चाहिए।

(३) वर्गीकरण सरल होना चाहिए।

वस्तुस्थिति यह है कि प्रत्यक्षरूप में ध्वनिग्राम की परिभाषा देना एक प्रकार से असम्भव है। ध्वनिग्राम क्या है, यह कहना नितान्त कठिन है। इसे तो परोक्ष-रूप में ही प्रस्तुत किया जा सकता है।

४.१८ ध्वनिग्रामिक पद्धति के निर्धारण में सम्भावित भूलें

विभिन्न भाषाओं की ध्वनिग्रामिक पद्धति पर कार्य करने वाले प्रायः दो प्रकार की सम्भावित भूलें कर सकते हैं। अतएव उन्हें इस सम्बन्ध में अत्यधिक साव-धान एवं सतर्क रहने की आवश्यकता है—

अधिक भेद—

किसी भाषा में जितने ध्वनिग्राम हों उससे अधिक ध्वनिग्रामों का निर्धा-रण करना अधिक भेद कहलाता है। वस्तुतः अभेदक ध्वनितत्त्वों को भेदक अथवा किसी एक ध्वनिग्राम को दो ध्वनिग्राम के रूपों में ग्रहण

करने से अधिक भेद हो जाता है। उदाहरणार्थ जब कोई अरबी का पण्डित साधु हिन्दी के ।ख। ध्वनिग्राम को ।ख। तथा ।ख़। रूपों मे ग्रहण करके दो पृथक ध्वनिग्राम मानता है तो वह अधिक भेद करता है।

अधिक अभेद—

जब कोई ध्वनिग्रामशास्त्री किसी भाषा के भेदक तत्त्व को अभेदक मान बैठता है तो वह अधिक अभेद करता है। इसका परिणाम यह होता है कि दो पृथक ध्वनिग्राम एक ही में समाहित हो जाते है। उदाहरण के लिये यदि कोई हिन्दी भाषा-भाषी अरबी के दो पृथक ध्वनिग्रामों ।ख। तथा ।ख। को केवल एक ध्वनिग्राम ।ख। में गठित करे तो उसका यह कार्य अधिक अभेद कहलायेगा।

४.१९ ध्वनिग्राम के भेद

ध्वन्यात्मक दृष्टि से ध्वनिग्राम को 'खण्ड' तथा 'खण्डेतर', दो, वर्गों में विभाजित किया जा सकता है ।

खण्ड ध्वनिग्राम

वास्तव मे खण्डध्वनिग्राम वे है जिनका पृथक इकाई के रूप मे विश्लेषण किया जा सकता है। इनका उच्चारण अन्य गुणों के बिना भी किया जा सकता है। मुख्यरूप से इन्हें 'स्वर' तथा 'व्यंजन', दो वर्गों में पृथक किया जा सकता है।

खण्डेतर ध्वनिग्राम

इस वर्ग के अन्तर्गत वे ध्वनिग्राम आते है जो खण्ड ध्वनिग्रामो के ऊपर छाए से रहते हैं तथा इनके बिना ये उच्चरित नही किये जा सकते। ये वस्तुतः ध्वनिग्राम के ऊपर की एक पर्त है जिसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व एवं महत्त्व नहीं है। इस वर्ग के अन्तर्गत 'सुर', 'आघात', 'विराम', 'विवृति' अदि आते हैं।

यहाँ यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि यह कोई आवश्यक नही है कि किसी भाषा विशेष के ध्वनिग्रामों को ऊपर के दो वर्गों (खण्ड तथा खण्डेतर) मे विभाजित किया ही जाय। जब 'सुर' 'आघात' तथा 'विराम' के कारण किसी भाषा में अर्थ-भेद होगा तभी खण्डेतर वर्ग होगा, अन्यथा नहीं। आगे साधुहिन्दी की ध्वनिग्रामिक प्रणाली पर विचार किया जायेगा।

४.२० ध्वनिग्राम सम्बन्धी विवेचन

ध्वनिग्राम की परिभाषा तथा उसके स्वरूप के सम्बन्ध में भाषाशास्त्रियों में अत्यधिक वाद-विवाद है और इस विषय मे प्रभूत साहित्य उपलब्ध है। कतिपय

भाषाविदों ने इसे मनोवैज्ञानिक सत्य के रूप में ग्रहण किया है किन्तु अन्य लोगों ने इसे भौतिक सत्य के रूप में ही देखा है। कुछ भाषाशास्त्री तो इसे विशुद्ध काल्पनिक तथा अमूर्त रूप में मानते हैं। यहाँ इस सम्बन्ध में पूर्णरूप से विचार करने के लिये स्थान नहीं है, अतएव नीचे, इस विषय में, संक्षेप में विचार किया जाता है।

जो भाषाविद् ध्वनिग्राम को मनोवैज्ञानिक सत्य के रूप में ग्रहण करते है उनके अनुसार इसकी स्थिति किसी वक्ता द्वारा उत्पादित ध्वनि तथा श्रोता द्वारा गृहीत प्रतिक्रिया के निरीक्षण में है। इस मत के सबसे बड़े समर्थक अमेरिका के प्रसिद्ध भाषाशास्त्री सापियर हैं। इस मत की सब से बड़ी त्रुटि यह है कि मनोवैज्ञानिक तथा मानसिक प्रतिक्रिया का निरीक्षण, वास्तव में, भाषाशास्त्र की सीमा के बाहर है।

भाषाशास्त्र के प्रायः सभी अध्येता, मानव वाग्ध्वनियों तथा ध्वनिग्राम के अन्तः-भेद को मानते हैं। सच बात तो यह है कि मानवध्वनियाँ, वस्तुगत दृष्टि से, असंख्य प्रकार की होती हैं, किन्तु किसी भाषा-विशेष के ध्वनिग्राम स्थिर एवं निश्चित होते है। भौतिक सत्य के रूप में देखने वालों के अनुसार ध्वनिग्राम वास्तविक मानव-ध्वनियों को व्यावहारिक रूप प्रदान करने वाली वस्तु है। इसप्रकार प्रत्येक ध्वनिग्राम मानव-मुख से निसृत ध्वनियों का समूह होता है। इस मत के समर्थक इंगलैंड के प्रसिद्ध ध्वनिशास्त्री डैनियल जोन्स तथा अमेरिका के भाषाशास्त्र के पंडित ब्लूमफिल्ड हैं। ये लोग ध्वन्यात्मक समानता पर विशेष बल देते हैं; किन्तु यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि आजकल अमेरिका के भाषाशास्त्री, ध्वनिग्राम के निर्धारण में, वितरण पर ही अधिक ज़ोर देते हैं। मॉरिस स्वेडिश के अनुसार तो किसी भाषा के ध्वनिग्रामों की खोज का आधार परिपूरक वितरण होता है।

ध्वनिग्राम को काल्पनिक एवं अमूर्तरूप में मानने वाले विद्वान् ध्वनिग्रामों को उनके उच्चारण रूप में ग्रहण करते हैं। इनके अनुसार ध्वनिग्राम श्रुति विषयक ही होता है। यह मत भी बहुत कुछ ध्वनिग्राम को मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक रूप में मानने वालों के ही समान है।

४.२१ हिन्दी के ध्वनिग्राम

भूमिका

क्षेत्रीय भाषा के रूप में हिन्दी उत्तरी भारत की भाषा है, जहाँ शिक्षा तथा शासन में इसका व्यवहार होता है। यह क्षेत्र बहुत विस्तृत है और इसके अन्तर्गत राजस्थान, दिल्ली, हिमाचलप्रदेश, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश,

बिहार तथा पूर्वी-पंजाब के कुछ भाग आते हैं। इस समूचे क्षेत्र में, डॉ० ग्रियर्सन के अनुसार, राजस्थानी, पश्चिमी तथा पूर्वी हिन्दी, पहाड़ी तथा बिहारी भाषायें अथवा बोलियाँ प्रचलित हैं। इस विस्तृत भू-भाग में भौगोलिक तथा जातीय विभिन्नता भी कम नहीं है। इन सब कारणों से किस क्षेत्र के लोगों का उच्चारण परिनिष्ठित माना जाय, यह प्रश्न भी विवादास्पद है। यहाँ पर जो ध्वनिग्राम (phonemes) दिये जा रहे हैं, उनका आधार वस्तुतः प्रयाग के पश्चिम के हिन्दी क्षेत्रों से आए हुए उन लोगों के उच्चारण हैं जो घर तथा घर के बाहर, प्रायः परिनिष्ठित हिन्दी का व्यवहार करते हैं।

हिन्दी की ध्वनिग्रामिक प्रणाली (Phonemic System) **इस प्रकार है--**

स्वरः--अ (ə),
आ (a),
इ (I),
ई (i),
उ (U),
ऊ (u),
ए (e),
ऐ (əe),
ओ (o),
औ (ɔ)।

व्यंजनः--				
प्	त्	ट्	च्	क्
फ्	थ्	ठ्	छ्	ख्
ब्	द्	ड्	ज्	ग्
भ्	ध्	ढ्	झ्	घ्
	स्		श्	
म्	न्		ण्	ङ
	र्			
	ल		ड़्	
व्		य्		

अनुनासिकता (Nasalization)-- ँ
विवृति (Juncture)
अल्पविवृति (Pausal Juncture)--+
निलम्बित विवृति (Sustained Juncture)--
आरोही विवृति (Rising Juncture)--
अवरोही विवृत्ति (Falling Juncture)--
काकु या सुर (Pitch):--१,२,३ [निम्न (low), मध्य (mid), उच्च (High]

यहाँ पर आगे समस्त स्वरों एवं व्यंजनों को कोष्ठकों में प्रस्तुत किया जा रहा है:--

स्वर

व्यंजन

			द्वयोष्ठ्य	दन्त्य	वर्त्स्य	मूर्धन्य	तालव्य	कंठ्य	जिह्वा-मूलीय	स्वर-यंत्रमुखी
अवरोधी	स्पर्श	अ. प्रा.	प् ब्		त् द्	ट् ड्		क् ग्		
		म. प्रा.	फ् भ्		थ् ध्	ठ् ढ्		ख् घ्		
	स्पर्श संघर्षी	अ. प्रा.					च् ज्			
		म. प्रा.					छ् झ्			
अनवरोधी	अनुनासिक	अ. प्रा.	म्		न्	ण्		ङ		
	पार्श्विक	अ. प्रा.			ल्					
	लुंठित	अ. प्रा.			र					
	उत्क्षिप्त	अ. प्रा.				ड़्				
	संघर्षी				स्		श्			ह्
	अर्धस्वर		व्				य्			

ऊपर के कोष्ठक में हिन्दी ध्वनिग्रामों के उच्चारण-स्थान आदि को देखा जा सकता है।

४.२२ स्वर—

।अ। यह अर्ध-विवृतमध्य स्वर है। यथा; अमर्, सरल्; हिन्दी मे शब्दो के अन्त में साधारणतः ।अ। का उच्चारण नहीं होता। यहाँ संस्कृत स्वरान्त शब्दों को भी व्यंजनांत रूप में ही बोलते हैं। यथा; संस्कृत, राम=हिन्दी, राम्।

।आ। यह विवृत्त, पश्चस्वर है। यथा; आम्, मसाला, नाला; प्रायः लोग इसे ।अ। का दीर्घ रूप समझकर (अ) को छोटा 'अ' अथवा ह्रस्व, तथा (आ) को बड़ा 'अ' अथवा दीर्घ कहते हैं, किन्तु यह धारणा अवैज्ञानिक एवं भ्रमपूर्ण है। वस्तुत. इन स्वरों के न केवल मात्राकाल में ही भेद है वरन् इनके उच्चारण-स्थान में भी भेद है। अतः इन्हें पृथक्-पृथक् ध्वनिग्राम मानना ही तर्क-संगत है। इसीप्रकार अन्य स्वरों इ ई, उ ऊ, ए ऐ, ओ औ आदि के विषय में समझना चाहिए।

।इ। यह संवृत, अग्रस्वर है। यथा; इस्, अधिक्, ध्वनि।

।ई। यह संवृत, ।इ। की अपेक्षा उच्चस्थानीय, अग्रस्वर है। यथा; ईख्, महीना, माली।

।उ। यह संवृत, पश्चस्वर है। यथा; उठना, विधुर्, मधु।

।ऊ। यह संवृत, ।उ। की अपेक्षा उच्चस्थानीय, पश्चस्वर है। यथा; ऊन्, गोधूलि, बालू।

।ए। यह अर्ध-संवृत, अग्रस्वर है। यथा; एक्, अनेक्, चले।

।ऐ। यह अर्ध-विवृत, अग्रस्वर है। यथा; ऐसा, कैसा।

।ओ। यह अर्ध-संवृत, पश्चस्वर है। यथा; ओला, सहोदर्, कहो।

।औ। यह अर्ध-विवृत, पश्चस्वर है। यथा; औसर्, नौकर्।

४.२३ व्यंजन

स्पर्श व्यंजन

प्रथम पंक्ति के व्यंजन, अघोष, अल्पप्राण, स्पर्शव्यंजन हैं।

।क्। कंठ्य-स्पर्श है। यथा; कमल्, सकल्, नाक्।

।च्। तालव्य-स्पर्श संघर्षी है। यथा; चर्म्, अचल्, नाच्।

।ट्। मूर्धन्य-स्पर्श है। यथा; टोली, पीटना, विकट्।

।त्। वर्त्स्य-स्पर्श है। यथा; तार्, पतवार्, सात्।

।प्। द्वयोष्ठ्य-स्पर्श है। यथा; पलक्, कपट्, सर्प।

द्वितीय पंक्ति के व्यंजन, अघोष, महाप्राण, स्पर्श-व्यंजन हैं। उच्चारण-स्थान की दृष्टि से ये प्रथम प्रकार के व्यंजनों के ही समान हैं।

।ख। यथा; खल्, नटखट्, नख्।

।छ। यथा; छल्, पूछना, रीछ्।

।ठ। यथा; ठग्, बैठना, ढीठ्।

।थ। यथा; थल्, सारथी, साथ्।

।फ। यथा; फल्, सफल्, साफ्; इसका एक सहस्वन (फ़) है जो कि शब्द के मध्य तथा अन्त में आता है।

तृतीय पंक्ति के व्यंजन, सघोष, अल्पप्राण, स्पर्शव्यंजन हैं। उच्चारण-स्थान की दृष्टि से ये उपर्युक्त व्यंजनों के समान ही हैं।

।ग। यथा; गरल्, आगर्, काग्।

।ज। यथा; जल्, काजल्, आज्।

।ड। यथा; डाल्, सोडा, खन्ड।

।द। यथा; दाल्, कुदाल्, शरद्।

।ब। यथा; बाल् ,कुबेर्, सब्।

चतुर्थ पंक्ति के व्यंजन, सघोष, महाप्राण, स्पर्श-व्यंजन हैं। उच्चारण-स्थान की दृष्टि से ये पहले के व्यंजनों के ही समान हैं।

।घ। यथा; घर्, सुघर्, अघ्।

।झ। यथा; झील्, रीझना, सूझ्।

।ढ। यथा; ढाल्, गड्ढा, ठण्ढक, बाढ (बाढ़); इसका एक सहस्वन (ढ) है जो आदि तथा व्यंजन संयोग के साथ, तथा इसका दूसरा सहस्वन (ढ़) अन्यत्र आता है।

।ध। यथा; धूल्, निधन्, बाँध्।

।भ। यथा; भाल्, उभार्, आरम्भ्।

संघर्षी व्यंजन

पाचवीं पंक्ति के व्यंजन संघर्षीव्यंजन हैं।

।स। वर्त्स्य, अघोष व्यंजन है। यथा; साल्, औसर्, ओस्।

।श। तालव्य, अघोष व्यंजन है। यथा; शब्द्, पशु, आकाश्।

।ह। काकल्य, अघोष व्यंजन है। यथा; हार्, महान्, बारह्; इसका एक सहस्वन (ह्) है जो कि काकल्य सघोष व्यंजन है, यह शब्द के अन्त तथा दो स्वरों के मध्य में आता है। प्राय: अन्त में (ह्) का लोप हो जाता है और स्वरध्वनि सुनाई पड़ती है।

अनुनासिक व्यंजन

छठवीं पंक्ति के व्यंजन अनुनासिक व्यंजन हैं।

।म। द्वयोष्ठ्य, सघोष, अल्पप्राण व्यंजन है। यथा; माला, बीमार्, नाम्।

।न्। वर्त्स्य, सघोष, अल्पप्राण व्यंजन है। यथा; नाम्, किन्की, कान्। इसके तीन सहस्वन हैं जो कि एक दूसरे के पूरक-वितरण (Complem-

entary Distribution) के रूप है । इनका वितरण निम्न रूप में है––

।न्। (१) व्यंजन सयोगों में स्पर्श संघर्षी (चवर्गीय) व्यंजनों के पूर्व । यथा; चन्चल । (चञ्चल्), । रन्च । (रञ्च्) ।

(२) व्यंजन संयोगों मे मूर्धन्य स्पर्श (टवर्गीय) व्यंजनों के पूर्व । यथा; । डन्डा । (डंडा), । ठन्ढ् । (ठंढ्) ।

(३) अन्यत्र; प्रथम दो सहस्वन आदि में या स्वतंत्ररूप से स्वर-संयोग के सहित नहीं आ सकते ।

।ण्। मूर्धन्य, अल्पप्राण, सघोष व्यंजन है । यह शब्द के आदि में नहीं आ सकता है। इसका ।न्। के साथ । पानी । तथा । पाणि ।––इन युग्मों में व्यतिरेक देखा जा सकता है । यह शब्द के मध्य तथा अन्त में स्वतंत्ररूप में भी आ सकता है। यथा; गुण्, गणना, पुण्य् ।

।ङ। कंठ्य, अल्पप्राण, सघोष व्यंजन है । इसका वितरण अन्य अनुनासिकों की अपेक्षा सीमित है । यह केवल कंठ्य ध्वनियों के पूर्व ही संयुक्त व्यंजन के रूप में आता है । यही कारण है कि यह पृथक् ध्वनिग्राम है । कंठ्य ध्वनियों के पूर्व ।न्। का भी संयोग मिलता है । उदाहरण के लिए निम्नलिखित युग्म लिये जा सकते हैं:––

।तिन्का। (tinka) तथा । शङ्का ।

।कन्खी। (kənkhi) तथा । पङ्खी ।

लुंठित व्यंजन

सातवीं पंक्ति का व्यंजन लुंठित व्यंजन है ।

।र्। वर्त्स्य, अल्पप्राण, सघोष व्यंजन है । यथा; रात् , बारात्, चार् ।

उत्थिप्त व्यंजन

आठवीं पंक्ति का व्यंजन उत्क्षिप्त व्यंजन है ।

।ड्। मूर्धन्य, अल्पप्राण, सघोष व्यंजन है । इसका वितरण भी सीमित है । वस्तुतः 'सोडा' तथा 'रेडिओ' आदि शब्दों के प्रचलन के पूर्व ।ड्। तथा ।ड्। एक ही ध्वनिग्राम के सहस्वन थे जिनका कि वितरण इसप्रकार था––

।ड़। मध्य में, दो स्वरों के बीच तथा अन्त में ।

[ड्] अन्यत्र ।

किन्तु उपर्युक्त दो शब्दों के प्रचलन के फलस्वरूप ।ड्। तथा ।ड़। पृथक्-पृथक्

ध्वनिग्राम हो गये, क्योंकि उनका वितरण व्यतिरेकी (Contrastive) हो गया।

पार्श्विक व्यंजन

नवीं पंक्ति का व्यंजन पार्श्विक व्यंजन है।

।ल्। वर्त्स्य, अल्पप्राण, सघोष व्यंजन है। यथा; लाज्, माली, काल् (समय)।

अर्धस्वर

दसवीं पंक्ति के व्यंजन अर्धस्वर हैं। इनमें स्वर की अपेक्षा व्यंजन के गुण ही अधिक हैं। अतः इन्हें व्यंजन ही मानना चाहिए।

।व्। द्वयोष्ठ्य, अघोष अर्धस्वर है। इसका एक सहस्वन शब्द के मध्य में व्यंजन संयोगों के साथ आता है। यथा; वह, क्वार (माह विशेष), हवा।

।य्। तालव्य, सघोष अर्धस्वर है। यथा; यह, नियम्, आय्।

४.२४ व्यंजनगुच्छ

आदि व्यंजन गुच्छ——प्राप्त सामग्री के आधार पर हिन्दी में निम्नलिखित व्यंजन-संयोग मिलते हैं जिन्हें कि आगे कोष्ठक (एक) में दिखलाया गया है——

प्+र् = प्रेम्	ट्+र् = ट्रेन्
प्+ल् = प्लेग्	ड्+र् = ड्रामा
प्+य् = प्यार्	ड्+य् = ड्योढ़ा
ब्+र् = ब्रज्	च्+य् = च्युत्
ब+य् = ब्यसन्	ज्+य् = ज्यामिति
फ्+र् = फ्रान्स्	ज्+व् = ज्वाला
भ्+र = भ्रम्	क्+र् = क्रम
त्+र् = त्राहि	क्+ल् = क्लिष्ट्
त्+य् = त्याग्	क्+य् = क्यारी
त्+व् = त्वचा	क्+व् = क्वार्
द्+र् = दृग्	ख्+य् = ख्याति
द्+य् = द्योतित्	ग्+र् = ग्रह
द्+व् = द्वार्	ग्+ल् = ग्लानि
ध्+र् = धृष्ठ्	ग्+य् = ग्यान्
ध्+य् = ध्यान्	ग्+व् = ग्वाला
ध्+व् = ध्वजा	घ्+र् = घृत्
व्+य् = व्यक्ति	स्+म् = स्मार्त्

व्+र्=व्रीड़ा
स्+र्=स्रवण्
स्+क्=स्कन्ध्
स्+व्=स्वर्
स्+ख्=स्खलन्
न्+र्=नृपति
स्+त्=स्तम्भ्
न्+य्=न्याय्
स्+थ्=स्थान्
म्+र्=मृग्
स्+न्=स्नेह
म्+ल्=म्लेक्ष
स्+प्=स्पर्द्धा
म+य=म्यान्
स्+फ्=स्फूर्ति
ह्+र्=हृदय्

अन्त व्यंजनगुच्छ—प्राप्त सामग्री के आधार पर हिन्दी में निम्नलिखित व्यंजन-संयोग मिलते हैं जिन्हें कि कोष्ठक (दो) में प्रदर्शित किया गया है—

प्+त्=प्राप्त्
र्+य्=कार्य्
प्+र्=विप्र्
र्+व्=पर्व्
प्+य्=प्राप्य्
त्+व्=तत्व्
ब्+द्=शब्द्
त्+य्=सत्य्
ब्+ज्=अब्ज्
त्+न्=यत्न्
ब्+ध्=उपलब्ध्
त्+र्=इत्र्
ब्+र्=कब्र्
थ्+य्=तथ्य्
र्+भ्=गर्भ
ध्+य्=आराध्य्
र्+प्=दर्प्
च्+य्=वाच्य्
र्+फ्=बर्फ्
ज्+र्=वज्र्
र्+म्=गर्म्
ज्+य्=भाज्य्
र्+त्=गर्त्
क्+त्=वक्त्
र्+थ्=अर्थ्
स्+प्=वास्प्
र्+द्=उर्द्
स्+त्=अस्त
र्+ध्=अर्ध्
ल्+प्=अल्प्
र्+ट्=आर्ट्
क्+य्=वाक्य्
र्+ड्=कार्ड्
ग्+य्=भाग्य्
र्+च्=मिर्च्
ध्+य्=श्लाध्य
र्+ज्=कर्ज्
म्+प्=कम्प्
र्+क्=नर्क्
ण्+य्=अरण्य्
र्+ख्=मूर्ख्
म्+य्=रम्य्

र्+ग् = स्वर्ग्	म्+ब् = अम्ब्
र्+घ् = अर्घ्	श्+ठ् = ओश्ठ्
र्+स्=पर्स्	श्+ट् = कश्ट्
र्+श् = हर्श्	श्+त् = कृश्ण्
न्+त् = अन्त्	द्+य् = खाद्य्
न+थ् = पन्थ्	श्+व् = विश्व्
न्+य= अन्य्	श्+य् = अवश्य्

मध्य व्यंजनगुच्छ—प्राप्त सामग्री के आधार पर निम्नलिखित मध्य व्यंजन-संयोग मिलते हैं जिन्हें कि कोष्ठक (तीन) में प्रदर्शित किया गया है—

प्+ट् = कप्टी	र्+थ् = अर्थी
ब्+ब् = गुब्बारा	र्+द् = पर्दा
त्+प् = उत्पल	र्+ध् = स्पर्धा
द्+द् = गद्दी	र्+छ् = बर्छी
ट्+ट् = सट्टा	र्+फ् = बर्फी
ट्+ठ् = गट्ठर	स्+म् = विस्मय्
ड्+ड् = अड्डा	र्+ख् = मूर्खता
ड्+ढ् = गड्ढा	द्+ध् = श्रद्धा
क्+क् = पक्का	म्+ह = ब्रम्हा
ग्+न् = अग्नि	म्+ब् = अम्बर
न्+ट् = कन्टक्	म्+भ् = खम्भा
न्+त् = चिन्ता	म्+ध् = सम्धी
न्+ठ् = कुन्ठा	ङ्+क् = अङ्कुर
न्+ड् = पन्डा	ङ्+ख् = पङ्खा
न्+ढ् = ठन्ढक्	ङ्+ग् = पङ्गु
न्+च् = चन्चल्	ङ्+घ् = कङ्घी
न्+ज् = कुन्जर्	ल्+ह् = चूल्हा
म्+प् = कम्पित्	ल्+क् = वल्कल्
र्+क् = कर्कश्	ल्+प् = कल्पना
र्+म् = कर्मण्य्	ह+न = नन्हा
र्+त् = कीर्ति	

४.२५ स्वर-संयोग

प्राप्त सामग्री के आधार पर निम्नलिखित स्वर-संयोग मिलते हैं—

अ+ई=कई	ओ+आ=खोआ (वा)
अ+ए=गए	उ+आ=सुआ (वा)
आ+ओ=जाओ	ऊ+ई=रूई
आ+ऊ=नाऊ	उ+ए=उए, चुए (गा)
आ+ई=दाई	इ+आ=लिआ (या)
आ+ए=जाए	इ+ए=दिए
ओ+ई=कोई	इ+ओ=विओ (यो) ग्
ओ+ए=सोए	

प्राप्त सामग्री के आधार पर प्रायः दो स्वरों के ही संयोग मिलते हैं किन्तु निम्नलिखित तीन स्वरों के संयोग भी मिले हैं—

आ—इ—ए—जाइए	अ—इ—आ—सइआँ
ओ—इ—ए—सोइए	अ—उ—आ—कऊआ

४.२६ आक्षरिक प्रणाली (Syllable Pattern)

हिन्दी में निम्नलिखित आक्षरिक[1] प्रणाली मिलती है। नीचे स्वर के लिए **अ** तथा व्यंजन के लिए **क** प्रतीक प्रयुक्त किये गये हैं—

१. अ (a) आ आज्ञा	८. क अ क (sal) साल्
२. अ क (am) आम्	९. क अ क क (sərp) सर्प
३. क अ (ghi) घी	१०. कअककककक (vərtsy) वर्त्स्य
४. अ क क (əml) अम्ल्	११. क क अ क (Kle·s') क्लेश्
५. अ क क क (əstr) अस्त्र्	१२. क क अ क क (Klis't) क्लिश्ट्
६. क क अ (sri) श्री	१३. क क अ क क क (Svasthy) स्वास्थ्य
७. क क क अ (stri) स्त्री	१४. क क क अ क क (Spris't) स्पृश्ट्

स्वरों में, मात्राकाल वातावरण के अनुसार बदलता रहता है। आदि के स्वरों का मात्राकाल अन्त्य स्वरों की अपेक्षा कम होता है। द्वित्व व्यंजन-संयोग के पूर्व आए हुये स्वर का मात्राकाल अन्य स्थान के स्वरों की अपेक्षा अल्प होता है।

---

१. 'अक्षर' शब्द के अन्तर्गत उन ध्वनि समूहों की छोटी से छोटी इकाई को कहते हैं जिनका उच्चारण एक साथ हो, तथा जिन्हें विभक्त करके बोलनेपर उसका कोई अर्थ न प्रकट हो।

४.२७ अनुनासिकता

हिन्दी में अनुनासिकता ध्वनिग्रामिक है, क्योंकि अनुनासिकता के कारण अर्थ में अन्तर हो जाता है। यथा; ।भाग्। तथा ।भांग्। ।गोद्। तथा ।गोंद्।

४.२८ विवृति

विवृति के कारण भी, हिन्दी में, अर्थ में, परिवर्तन आ जाता है। इसके मुख्य चार प्रकार देखने में मिलते हैं।

अल्प विवृति—यथा; ।पाली। तथा ।पा——ली।

।खाली। तथा ।खा——ली।

।सिर्का। तथा ।सिर्——का।

इन उदाहरणों में, प्रथम में, बिना कहीं रुके, पूरे शब्द का उच्चारण करते हैं किन्तु द्वितीय में हम 'पा', 'खा' तथा 'सिर्' के बाद क्षणमात्र के लिए रुक कर 'ली', 'ली', तथा 'का'; का उच्चारण करते हैं जिससे कि अर्थ में अन्तर आ जाता है।

निलम्बित विवृति—जहाँ पर दो वाक्यों को किसी संयोजक द्वारा मिलाया जाता है वहाँ संयोजक के पूर्व यह विवृति पाई जाती है। यथा; मैं जाने ही वाला था——कि पानी बरसने लगा।

आरोही विवृति——यह प्रश्नवाचक वाक्यों के अन्त में होती है। यथा; ।वह जायेगा। ?

अवरोही विवृति——सामान्य कथनों के अन्त में प्रयोग होता है। यथा; मैं जाता हूँ।

४.२९ सुर

यद्यपि हिन्दी में सुर का विशेष महत्त्व नहीं है तथापि इसका प्रयोग कभी-कभी होता है जिससे अर्थ में भिन्नता आ जाती है। इस भिन्नता का अवबोध भी केवल उन्हीं लोगों को होता है जो भलीभाँति हिन्दी बोलते तथा समझते हैं। इस तथ्य को हिन्दी के एक वाक्य से स्पष्ट किया जा सकता है। उदाहरणार्थ 'मैं दिल्ली जा रहा हूँ' इस वाक्य को निम्नलिखित रूपों में बोला जा सकता है——

१. मैं दिल्ली जा रहा हूँ। (सामान्य भाव)

२. मैं दिल्ली जा रहा हूँ, "मैं" पर विशेष बल देकर विशेष कथन, जिसका अर्थ है कि केवल "मैं" दिल्ली जा रहा हूँ, अन्य कोई व्यक्ति नहीं।

३. मैं दिल्ली जा रहा हूँ "दिल्ली" पर विशेष बल देकर विशेष कथन जिसका अर्थ है मैं दिल्ली जा रहा हूँ, अन्यत्र नहीं।

४. मैं दिल्ली जा रहा हूँ ? (प्रश्न के रूप में विशेष कथन)

सुर के विभिन्न धरातलों को कई प्रकार से दिखलाया जा सकता है। कतिपय भाषाशास्त्री रेखाओं अथवा बिन्दुओं के द्वारा उच्च, निम्न, मध्य सुरों को द्योतित करते हैं किन्तु अन्य लोग विशेषतया अमेरिका के भाषाशास्त्री शब्द के पहले १ (निम्न) २ (मध्य) ३ (उच्च) आदि अंक देकर द्योतित करते हैं। नीचे इस अंक प्रणाली का प्रयोग करके ऊपर के वाक्यों में सुर को दिखलाया जा रहा है—

१. २ मैं + २ दिल्ली + २ जा रहा हूँ १ !

२. ३ मैं + २ दिल्ली + २ जा रहा हूँ १ !

३. २ मैं + ३ दिल्ली + २ जा रहा हूँ ? !

४. २ मैं + २ दिल्ली + ३ जा रहा हूँ !

इसे हम रेखाओं के द्वारा भी स्पष्ट कर सकते हैं। यथा—

आदि व्यंजन संयोग [कोष्ठक एक]

	प	फ	ब	भ	त	थ	द	ध	ट	ठ	ड	ढ	च	छ	ज	झ	क	ख	ग	घ	स	ह	म	न	ङ	र	ड़	ण	ल	य	व	श
प																										×			×	×		
फ																										×						
ब																										×				×		
भ																										×						
त																										×				×	×	
थ																																
द																										×				×	×	
ध																										×				×	×	
ट																										×						
ठ																										×						
ड																														×		
ढ																																
च																														×		
छ																																
ज																														×	×	
झ																																
क																										×			×	×	×	
ख																														×		
ग																										×			×	×	×	
घ																										×						
स	×	×			×	×											×	×					×	×		×				×	×	
ह																										×						
न																										×				×		
म																										×			×	×		
ण																																
र																																
ड़																																
ल																																
य																																
व																										×				×		
श																										×			×	×	×	

अन्त व्यंजन संयोग [कोष्ठक दो]

	प	फ	ब	भ	त	थ	द	ध	ट	ठ	ड	ढ	च	छ	ज	झ	क	ख	ग	घ	स	श	ह	र	ल	ण	ङ	न	म	ञ	य	व	
प					×																			×							×		प
फ																																	फ
ब							×	×							×									×									ब
भ																																	भ
त																					×			×				×			×	×	त
थ																															×		थ
द																															×		द
ध																															×		ध
ट																								×							×		ट
ठ																															×		ठ
ड																															×		ड
च																															×		च
छ																																	छ
ज																								×							×		ज
झ																																	झ
क					×																										×		क
ख																																	ख
ग																															×		ग
घ																															×		घ
स	×				×																										×		स
श									×	×																×					×	×	श
ह																																	ह
र	×	×		×	×	×	×	×	×		×		×	×			×	×	×	×	×	×				×					×	×	र
ल	×																	×															ल
ण																																	ण
न					×																										×		न
म	×		×																												×		म
ङ																																	ङ
य																																	य
व																																	व
	प	फ	ब	भ	त	थ	द	ध	ट	ठ	ड	ढ	च	छ	ज	झ	क	ख	ग	घ	स	श	ह	र	ल	ण	ङ	न	म	ञ	य	व	

मध्य व्यंजन संयोग [कोष्ठक तीन]
प फ ब भ त थ द ध ट ठ ड ढ च छ ज झ क ख ग घ न म ण ङ ड़ र ल स श ह् य व
प फ ब भ त थ द ध ट ठ ड ढ च छ ज झ क ख ग घ स श ह् ण न म ङ ल र व य

४.९ अभ्यासार्थ प्रश्न एवं उत्तर

अभ्यास १ [मराठी]

(१) कर्—करना
(२) खर्—कोयले का चूर्ण
(३) गर्—गिरी
(४) घर्—घर
(५) चर्—चरना
(६) जर्—यदि
(७) झर्—झरना
(८) टर्—चिढ़ाना
(९) ठर्—होना
(१०) डर्—डर
(११) तर्—तब
(१२) थर्—परत
(१३) दर्—प्रत्येक
(१४) धर्—पकड़ना
(१५) भर्—भरना
(१६) मर्—मृत्यु

प्रश्न—(१) व्यतिरेक के आधार पर व्यंजन ध्वनिग्रामों को निर्धारित कीजिये।

उत्तर—

।क्। ।कर्।
।ख्। ।खर्।
।ग्। ।गर्।
।घ्। ।घर्।
।च्। ।चर्।
।ज्। ।जर्।
।झ्। ।झर्।
।ट्। ।टर्।
।ठ्। ।ठर्।
।ड्। ।डर्।
।त्। ।तर्।

।थ्। ।थर्।

।द्। ।दर्।

।ध्। ।धर्।

।भ्। ।भर्।

।म्। ।मर्।

अभ्यास २ [मराठी]

१. कळ्—दुख
२. खळ्—चिपकाना
३. गळ्—काँटा
४. घळ्—घाटी
५. चळ्—चल्
६. छळ्—कष्ट देना
७. जळ्—जलना
८. झळ्—आग लगना
९. टळ्—टलना
१०. ढळ्—ढाल
११. तळ्—तल
१२. थळ्—आधार
१३. दळ्—पीसना
१४. नळ्—नल
१५. फळ्—फल
१६. बळ्—बल
१७. मळ्—मैला

प्रश्न (१) व्यतिरेक के आधार पर व्यंजन ध्वनिग्रामों को निर्धारित कीजिये।

उत्तर (१) इस प्रश्न का हल भी अल्पतम युग्मों के आधार पर पूर्व प्रश्न की भाँति ही कीजिये।

अभ्यास ३ [मराठी]

१. डबा—संदूक
२. गाड़ि—गाड़ी
३. डाक्—डाक्
४. डावा—बाँया

५. गाड़ा—बड़ी गाड़ी
६. डमरू—डमरू (वाद्य)
७. वाड़ा—बड़ा मकान

प्रश्न । (ड्) तथा (ड़्) के वितरण का स्पष्टीकरण कीजिये ।

उत्तर—

	आदि स्थिति	मध्य स्थिति	द्विस्वरान्तंगत	अन्त्य स्थिति
ड्	√	×	×	×
ड़्	×	×	√	×

[ड्]

[ड्] आदि स्थिति में आता है ।

(ड़) द्विस्वरान्तर्गत आता है ।

अभ्यास ४ **[मराठी]**

१. अन्ता—अन्त
२. जनावर्—पशु
३. कान्ती—आभा
४. वानर्—वन्दर
५. शान्ति—शान्ति
६. किनारा—किनारा
७. तान्—तान

प्रश्न—दन्त्य [न्] तथा वर्त्स्य [न] के वितरण का स्पष्टीकरण कीजिये ।

उत्तर—[न]—द्विस्वरान्तर्गत एवं अन्त्य में ।

[न्]—अन्यत्र ।

अभ्यास ५

व्रजभाषा एवं खड़ीबोली के संक्रान्ति-क्षेत्र—बुलन्दशहर—की बोली के **आधार पर ।**

[उच्चार्]

१. कोरा—बिना व्यवहार में आया हुआ

२. गोरा—गौर वर्ण का

३. घोरा—घोड़ा

४. कोड़ा—कोड़ा

५. कारा—काला

प्रश्न.

१. समस्त खंडीयध्वनियों (Segmental Sounds) का विश्लेषण कीजिये ।

२. व्यतिरक (Contrast) के आधार पर ऐसे युग्म दीजिये जो ध्वनिग्राम निश्चित कर रहे हों ।

उत्तर

१. अभ्यास ५ के समस्त उच्चारों में निम्नलिखित खंडीयध्वनियाँ उपलब्ध हैं—

[आ], [ओ], [क्], [र्], [ग्] [घ्] तथा [ड़्]

२. उपर्युक्त समस्त खंडीयध्वनियाँ अलग-अलग ध्वनिग्राम है। यथा—

।आ। ।कारा। —काला

।ओ। ।कोरा। —बिना व्यवहार में लाया हुआ

।क्। ।कोरा। —बिना व्यवहृत किया हुआ

।ग्। ।गोरा। —गौर वर्ण का

।घ्। ।घोरा। —घोड़ा

।र्। ।कोरा। बिना व्यवहार में लाया हुआ

।ड़्। ।कोड़ा। —कोड़ा

अभ्यास ६ (उर्दू)

१. क़ुल्—एक धार्मिक अनुष्ठान

२. क़द् —कद

३. चाक़ू —चाक़ू

४. तबाक़ी —बड़ा तश्त

५. कुल् —सब

६. कद् —शत्रुता

७. चाकी —गरी

८. बाकी —शेष

प्रश्न.

[क़्] एवं [क्] का वितरण ज्ञात कीजिये और यह बतलाइए कि ये भिन्न ध्वनिग्राम हैं अथवा एक ही ध्वनिग्राम के सहस्वन हैं ?

उत्तर.

[क़्]—आदि में एवं द्विस्वरान्तर्गत ।

[क]—आदि में एवं द्विस्वरान्तर्गत ।

ये दोनों ध्वनियाँ स्पष्ट ही दो भिन्न ध्वनिग्राम हैं, क्योंकि दोनों का व्यतिरेकी वितरण है ।

।क़्। ।क़ुल्।

।क्। ।कुल्।

अभ्यास ७ (व्रजभाषा : बुलन्दशहर तहसील की बोली के आधार पर)

१. तिन्का—तिनका
२. माला—माला
३. मामा—मामा
४. नाम्—नाम
५ नाला—नाला
६. पङ्खी—पंखी
७. चञ्चल—चंचल्
८ कन्खी—तिरछी नजर
९. डण्डा—डंडा
१०. गुण्—गुण
११. गुन्—गुण
१२. गान्—गान्

प्रश्न—

(१) समस्त नासिक्य ध्वनियों का विश्लेषण कीजिये ।

(२) नासिक्य ध्वनियों का विश्लेषण करने के उपरान्त उनके ध्वनिग्राम निर्धारित कीजिये । इसका आधार स्वल्पतम युग्म होने चाहिये ।

(३) परिपूरक वितरण के आधार पर नासिक्य ध्वनियों को ध्वनिग्रामरूप में सम्बद्ध कीजिये ।

(४) क्या किसी ध्वनिग्राम के दो सहस्वन मुक्त परिवर्तन में हैं ?

उत्तर—

(१) नासिक्य ध्वनियाँ—

[न्]
[म्]

[ङ]
[ञ्]
[ण्]

(२) ।न्। ।नाला।—नाला
।म्। ।माला। —माला
।न्। ।कन्खी। —कंखी
।ङ्। ।पङ्खी।—पंखी

उत्तर सं० ३

	आदि स्थिति	मध्य अथवा दो स्वरों के मध्य						अन्त्य स्थिति
		कवर्ग	चवर्ग	टवर्ग	तवर्ग	पवर्ग	दो स्वरों के मध्य	
ञ्	×	×	√	×	×	×	×	×
ण्	×	×	×	√	×	×	×	√

इस कोष्ठक के आधार पर [ञ्] केवल शब्द की मध्यस्थिति में चवर्ग के पहले आता है एवं [ण्] शब्द की मध्यस्थिति में टवर्ग के पहले एवं शब्द की अन्त्यस्थिति में भी आता है। शब्द की मध्यस्थिति में [ञ्] एवं [ण्] ध्वनियाँ [न्] के साथ परिपूरक वितरण में आ रही हैं। किन्तु शब्द की अन्त्य-स्थिति में [न्] और [ण्] दोनों आ रहे हैं। किन्तु ध्यान से देखने पर विदित होता है कि इस स्थिति में ये व्यतिरेकी वितरण में नहीं, अपितु मुक्त परिवर्तन में हैं। इस कारण [ञ्], [ण्], एवं [न्] को एक ध्वनिग्राम-रूप में सम्बद्ध कर सकते हैं।

।न्। ध्वनिग्राम के तीन सहस्वन [ण्], [ञ्] एवं [न्] हैं जिनका वितरण इसप्रकार है—

[ञ्] शब्द की मध्यस्थिति में चवर्गीय व्यंजनों के पूर्व।

[ण्] शब्द की मध्य स्थिति में टवर्गीय व्यंजनों के पूर्व एवं अन्त्य स्थिति में।

[न्] अन्यत्र। अन्तिमस्थिति में यह [ण्] के साथ मुक्त-परिवर्तन में आता है।

(४)

।न्। ध्वनिग्राम के [न्] एवं [ण्] सहस्वन मुक्त परिवर्तन में हैं।

अभ्यास ८ (साधुहिन्दी)

१. कन्धा — कंधा
२. तिन्का — ति ंका
३. चञ्चल् — चंचल्
४. पंडा — पंडा
५- चन्दा — चंदा
६. पलङ्ग — पलंग
७. कान् — कान्
८. कङ्घी — कंघी

प्रश्न—

(१) समस्त नासिक्य खंडीयध्वनियों का विश्लेषण कीजिये।

(२) नासिक्य ध्वनियों का ध्वनिग्रामिक विवेचन प्रस्तुत कीजिये।

उत्तर—

(१)

[न्]

[ञ्]

[ण्]

[ङ]

(२)

कोष्ठक में समस्त नासिक्य व्यंजन ध्वनियों की स्थिति—

	आदि-स्थिति	मध्यस्थिति				अन्त्य-स्थिति
		कवर्ग	चवर्ग	टवर्ग	तवर्ग	
न्	×	√	×	×	√	√
ञ्	×	×	√	×	×	×
ण्	×	×	×	√	×	×
ङ	×	√	×	×	×	√

।न्।

[ञ्] मध्य में, व्यंजन संयोगों में चवर्ग के पूर्व ।
[ण्] मध्य में, व्यंजन संयोगों में टवर्ग के पूर्व ।
[न्] अन्यत्र ।
[ङ] मध्य में कवर्ग के पूर्व

अभ्यास ९ (हिन्दी)

१. अड़तालिम्
२. अडिग्
३. अड़सठ्
४. अड़्
५. डलिया
६- सड़क्
७. कुन्डल्
८. खड़िया
९. कड़ुआ
१०. कन्डील

११. आडम्बर्
१२. आड़्
१३. कन्डा
१४. उड़ना

प्रश्न—

[ड्] तथा [ड़्) पृथक् पृथक ध्वनिग्राम है अथवा एक ही ध्वनिग्राम के दो सदस्य है ?

अभ्यास १० (बॉगरू)

विशेष ध्वनि चिह्न

उ़ —u̇

उ —u̇

ऊ —u

[bu̇ra] (बुरा)— बुरा
[usa] (ऊसा)— वैसा
[utər] (ऊतर्)ध– उत्तर
[bura] (बूरा)— बूरा
[bua] (बुआ)— बोओ
[kua] (कुआ)— कूप
[musa] (मूसा)— चूहा
[kalu] (काल्ू)— काला
[sadhu] (साधू)— साधु
[ṭUk] (टुक्)— थोड़ा
[ṭuk] (टूक्)— टुकड़ा
[bəṭua] (बटुआ)— बटुआ
[utṇa] (उत्णा)— उतना
[buai] (बुआई)— बुवाई
[bu̇rai] (बुराई)— बुराई
[ru̇pṇa] (रूपणा)— किसी के विरुद्ध खड़ा होना
[cu̇p] (चुप्)— चुप
[kUp] (कूप्) घास का बंडल
[u̇ra] (उ़रा) यहाँ आ

प्रश्न

१. क्या (u = ऊ), (u̇ = उ़) एवं (U = उ) भिन्न ध्वनिग्राम हैं ?

उत्तर (संकेत)

उ़ एवं ऊ भिन्न ध्वनिग्राम हैं। उ़ तथा उ़ एक ध्वनिग्राम के दो सहस्वन हैं।

।ऊ। ।बूरा। -- बूरा

।उ। ।बुरा। -- बुरा

।उ़। (उ़) आदि में 'त' व्यंजन पूर्व एवं मध्य में व्यंजन और स्वर के मध्य।

(उ़)-- अन्यत्र

अभ्यास १० (बँगला)

नोट--नीचे के अभ्यास में समस्त उच्चारों के अर्थ भिन्न हैं ।

१. आकाश्
२. आस्ते
३. आशिन्
४. बेड़ाल
५. भाशा
६. बिदेश
७. बुड़ो
८. दाँड़
९. डुर्
१०. हस्तो
११. डाल्
१२. मिश्टी
१३. ओस्थि
१४. शोकोल्
१५. आराम्
१६. आशा
१७. वाड़ी
१८. बेशी
१९. भिस्ती
२०. बिस्तोर्
२१. जोर्

२२. माग्
२३ मोस्तो
२४. रास्ता
२५. स्नान्

प्रश्न—

(१) [स्] एवं [श्] क्या पृथक-पृथक ध्वनिग्राम हैं ?
(२) [र्] एवं [ड़] का वितरण प्रस्तुत कीजिये।

अभ्यास ११

ZULU (South Africa)

१. bɔna — समुद्र
२. bɔpha — बाँधना
३. mɔsa — वंचित
४. umɔna — द्वेष
५. imɔto — मोटरगाड़ी
६. iqɔlɔ — पीठ का पिछला भाग
७. ixɔxɔ — मेढक
८. isicxɔ — शिरोभूषर्ण
९. ibɔdwe — बर्तन
१०. isithɔmbe — चित्र
११. indɔdana — पुत्र
१२. umfɔkazi — अजनवी आदमी
१३. iboni — टिड्डी
१४. umondli — अभिभावक
१५. umosi — आग पर भुनने वाला
१६. inoni — चर्वी
१७. udoli — गुड़िया
१८. umxoxi — कहानी कहनेवाला
१९. imomfu — गाय विशेष
२०. lolu — यह
२१. isitofu — स्टोव

२२. nomuthi — और वृक्ष

२३. udədilo — तुमने मनुष्य की भाँति कार्य किया।

२४. ibokisi — सन्दूक

प्रश्न—ऊपर ज़ूलू भाषा के शब्द, अर्थ सहित दिये गये हैं। इनमें [ɔ] एवं [o] ध्वनियाँ परिपूरक वितरण में हैं एवं एक ध्वनिग्राम का निर्माण करती हैं। इनके वितरण को स्पष्ट कीजिये।

उत्तर— ɔ—उच्चस्वरों के पूर्व।

o—निम्नस्वरों के पूर्व एवं अन्तिम स्थिति में।

५

पदग्रामशास्त्र

५. १० परिचय

पिछले अध्याय में ध्वनिग्रामशास्त्र के अन्तर्गत ध्वनिग्राम का विश्लेषण किया गया है। इस अध्याय में 'पद' तथा 'पदग्राम' के विषय में विचार किया जायेगा। जब हम किसी भाषा के रूप के सम्बन्ध में विचार करते हैं तो यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि वह मनुष्य की अनेक प्रवृत्तियों की मिश्रित प्रणाली है जिसे मुख्य रूप से दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। ये वर्ग हैं--

(१) ध्वनि प्रक्रियात्मक प्रणाली।

(२) व्याकरणिक प्रणाली।

इनमें ध्वनि प्रक्रियात्मक प्रणाली के अन्तर्गत (क) स्वन या ध्वनिशास्त्र तथा (ख) ध्वनिग्रामशास्त्र आते हैं और व्याकरणिक प्रणाली के अन्तर्गत (क) पदगामशास्त्र' तथा (ख) 'वाक्यरचनाशास्त्र' समाविष्ट हो जाते हैं। इसे निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है--

(१) ध्वनि प्रक्रियात्मक प्रणाली
- (क) स्वन या ध्वनिशास्त्र
- (ख) ध्वनिग्रामशास्त्र

(२) व्याकरणिक प्रणाली
- (क) पदग्रामशास्त्र
- (ख) वाक्यरचनाशास्त्र

ये दोनों प्रणालियाँ एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। इन दोनों में कोई वास्तविक सम्बन्ध नहीं है। वस्तुतः प्रथम प्रणाली में ध्वनियों का अध्ययन होता है, किन्तु इन ध्वनियों से कोई अर्थ प्रकट नहीं होता है। इसे अर्थहीन प्रणाली कहा जा सकता है। प्रत्येक ध्वनि वक्ता के मुख से निसृत होती है, और इसके अनन्तर वायु-लहर के रूप में परिणत होकर श्रोता के कर्ण तक पहुँचती है तथा प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है। इसे निम्नलिखित रूप में प्रदर्शित कर सकते हैं--

मुख → ध्वनि ~ ध्वनि-लहर → कर्ण में प्रविष्ट होकर प्रतिक्रिया।

वास्तव में श्रुत-ध्वनि से प्रभावित होकर ही श्रोता अपना विचार व्यक्त करता है। ये विचार कतिपय ध्वनियों के द्वारा ही व्यक्त किये जाते हैं, किन्तु इन ध्वनियों तथा व्यक्त विचारों में कोई सम्बन्ध नहीं होता। फ्रान्स के प्रसिद्ध भाषा-शास्त्री मार्तिने ने इस के लिए 'विषय' तथा 'रूप' शब्दों का प्रयोग किया है। उनके अनुसार व्यक्त विचार 'विषय' हैं और वह जिस रूप में व्यक्त किया जाता है, वह रूप है। यह 'रूप' प्रत्येक भाषा में पृथक होता है। इसीलिए किसी भाषा में व्यक्त किया गया भाव या विचार तो दूसरी भाषा में अनूदित किया जा सकता है किन्तु किसी भाषा के रूप का अनुवाद नहीं हो सकता।

भाषा के उपर्युक्त रूप पर यदि विचार करें तो ज्ञात होगा कि यह कतिपय ध्वनियों का क्रम मात्र है। जब किसी भाषा विशेष में कुछ ध्वनियाँ किसी निश्चित क्रम में सजकर आती हैं तो उन से अर्थ बोध होता है। यह अर्थबोधयुक्त रूप ही 'पद' कहलाता है। यह अवश्य है कि पद के अर्थ की निश्चितता एवं स्थिरता के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। इसका कारण यह है कि पद का अर्थ प्रयोग पर अवलम्बित होता है। इसे निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है—

पद ⟨ अर्थ (अनिश्चित एवं अस्थिर)
ध्वनिग्रामीय आकार
(एक या एक से अधिक ध्वनिग्रामों का क्रम)

वस्तुतः ध्वनि-ग्रामीय आकार वाले अर्थवान रूप को ही पद कहा जाता है। यदि हम किसी उच्चार (वाक् = utterence) का विश्लेषण करें तो पहले उसे पद या पदों में विभक्त कर सकते हैं। पुनः यदि पदों का भी आगे विश्लेषण करें तो उन्हें ध्वनिग्रामों में विभक्त कर सकते हैं। इसप्रकार किसी उच्चार में सर्व प्रथम 'पद' रूप को ही महत्त्व दिया जाता है। किसी उच्चार में इन्हीं पदों का एक विशेष क्रम होता है; इसी का अध्ययन पदग्रामशास्त्र का विषय होता है।

संक्षेप में हम पदग्रामशास्त्र के अन्तर्गत उच्चार की अर्थवान इकाइयों का अध्ययन करते हैं। ये अर्थवान इकाइयाँ किस क्रम से उच्चार में आ सकती हैं, यही हमारे अध्ययन का लक्ष्य होता है। दूसरे शब्दों में पदग्रामशास्त्र में रूप एवं अर्थयुक्त रूपों एवं उच्चार में इनके विभिन्न क्रमों का अध्ययन किया जाता है।

५.११ भाषा के विश्लेषण की इकाइयाँ

यह पहले कहा जा चुका है कि मनुष्य भाषा के द्वारा ही अपने विचार को व्यक्त करता है। भाषा कई इकाइयों से निर्मित होती है। इन इकाइयों तक कैसे

पहुँचा जाय, इसकी भी जानकारी आवश्यक है। इसके लिये किसी वैज्ञानिक पद्धति को अपनाना ही तर्कसंगत एवं श्रेयस्कर है।

किसी अपरिचित भाषा की इकाइयों की जानकारी के लिए सर्वप्रथम उस भाषा की द्विभाषीय सामग्री प्राप्त करना आवश्यक है। द्विभाषीय सामग्री से तात्पर्य यह है कि जिस भाषा की इकाई का ज्ञान प्राप्त करना है उसकी भाषा सम्बन्धी सामग्री का अनुवाद किसी ऐसी भाषा में सुलभ हो जिससे विश्लेषण-कर्ता सुपरिचित हो। विश्लेषणकर्ता को भाषा की वृहत्तर इकाई अर्थात् वाक्य से कार्य आरम्भ करना चाहिए और अल्पतर या न्यूनतर इकाई तक पहुँचना चाहिए। वृहत्तर इकाई एक अनुच्छेद (पैराग्राफ) तथा अर्थवान अल्पतर या न्यूनतर इकाई एक पद की हो सकती है। इसे निम्नलिखित तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

उच्चार < ध्वनिग्रामीय आकार / अर्थ > पद → ध्वनिग्रामों का न्यूनतम या अल्पतम क्रम।
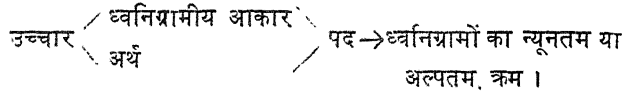
किसी उच्चार या वाक् में दो तत्त्व होते हैं—

(१) ध्वनिग्रामीय आकार (२) अर्थ। इन्हीं दोनों को लेकर भाषा के निम्न-लिखित दो स्तर हो जाते हैं—

(१) ध्वनिग्रामीय

(२) पदग्रामीय

किसी भी भाषा का निर्माण इन्हीं दो स्तरों के संयोग से होता है। इसी कारण कतिपय भाषाविद् भाषा की द्वैध अवस्था मानते हैं। जिसप्रकार किसी भवन के निर्माण के लिये सर्वप्रथम मिट्टी की आवश्यकता होती है, इसके उपरान्त मिट्टी से ईंटें और ईंटों से दीवारें तथा दीवारों से भवन बनता है, उसीप्रकार भाषा रूपी भवन के निर्माण के लिये सर्वप्रथम ध्वनि आवश्यक है। ध्वनि से ध्वनिग्राम, ध्वनिग्राम से पद तथा पदों से वाक्य का निर्माण होता है।

अब दूसरे प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता है। वह प्रश्न यह है कि आखिर भाषा की इकाइयों के विश्लेषण की आवश्यकता ही क्या है? बात यह है कि नदी की धारा के समान मनुष्य की विचारधारा भी अखण्डरूप में प्रवहमान रहती है। जिसप्रकार मनुष्य अपने लाभ के लिये नदी की धारा को कई स्थानों में अवरुद्ध करके उसे खण्डित कर देता है उसीप्रकार वह अपनी अखण्ड विचार धारा को भी खण्डों में विभक्त कर सकता है। चूँकि अखण्डरूप में भाषा का अध्य-

यन सम्भव नहीं है, इसीलिए उसे सुविधानुसार कतिपय खण्डों में विभाजित करना आवश्यक हो जाता है। भाषाविद् नितान्त वैज्ञानिक पद्धति से यह कार्य सम्पन्न करता है। वह भाषा को ऐसे खण्डों में विभाजित करता है जिन से अर्थ व्यक्त किया जा सके ।

५.१२ पद, सहपद तथा पदग्राम

पद—स्वनों का वह संयोग है जिसका आकार तथा अर्थ होता है ।

सहपद—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, पद ऐसे स्वनों का संयोग है जिसका अर्थ होता है। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि प्रत्येक स्वन के समान ही प्रत्येक पद भी केवल एक बार ही उच्चरित होता है और तदुपरान्त उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। इन्हीं स्वनों के संयोग से निर्मित पद दूसरी बार भी उच्चरित हो सकता है। इस समान ध्वनि के संयोग से दूसरी बार निर्मित रूप को, पहले के समान ही, दूसरा पद कहा जा सकता है। उदाहरण के लिये । च् । , । आ । तथा । क् । इन तीन ध्वनियों के संयोग से निर्मित हिन्दी का । चाक् । रूप लिया जा सकता है। इस रूप को हम जितनी बार उच्चरित करेंगे उतनी ही बार यह भिन्न किन्तु समान पद होगा। इन्हें हम एक सहपद के रूप में गठित कर सकते हैं; परन्तु इस गठन के पूर्व निम्नलिखित दो बातों के सम्बन्ध में पूर्णरूप से निश्चित होना चाहिए—

(१) क्या समान स्वनों का समान क्रम में संयोग हुआ है ?

(२) क्या इन संयोगों से निर्मित रूपों का अर्थ समान है ? इसप्रकार के ध्वन्यात्मक तथा अर्थगत समानता वाले पदों को सहपद के नाम से अभिहित किया जाता है ।

पदग्राम—इन सहपदों को जब परिपूरक तथा मुक्त वितरण के आधार पर गठित किया जाता है तब ये सहपद कहलाते हैं ।

इसे निम्नलिखित उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

(१) मैं जाता हूँ ।

(२) मैं जा रहा हूँ ।

(३) वह जा रहा है ।

ऊपर के उच्चारों का यदि विश्लेषण किया जाय तो निम्नलिखित पद, सहपद एवं पदग्राम उपलब्ध होंगे—

(१) **पद**

(क) । मैं । । जा । । ता । । हूँ ।

(ख) ।मैं। ।जा। ।रहा। ।हूँ।

(ग) ।वह। ।जा। ।रहा। ।है।

(२) **सहपद**

[-मैं-] [-वह-] [-जा-] [-ता-] [-रहा-] [-हूँ-] [-है-]

(३) **पदग्राम**

{मैं} उत्तम पुरुष—एक वचन द्योतक।

{वह} अन्य पुरुष एक वचन द्योतक।

{जा} क्रिया-पद।

{ता} वर्त्तमान अनिश्चय द्योतक।

{रहा} वर्त्तमान अपूर्ण द्योतक।

{है} — वर्त्तमान सहायक क्रिया पदग्राम; इसके, नीचे के दो सहपद है—

[-है-] अन्य पुरुष एक वचन के साथ

[-हूँ-] उत्तम पुरुष एकवचन के साथ

५.१३ पदग्राम की परिभाषा

भाषाशास्त्र के विभिन्न विद्वानों ने पदग्राम की परिभाषा भिन्न-भिन्न प्रकार मे दी है। नीचे इन्हीं परिभाषाओं पर विचार किया जाता है—

(१) **डि सासे**—धातु के अतिरिक्त रचना-तत्व से निर्मित शब्द को पदग्राम कहते हैं।

अपनी परिभाषा में डि सासे ने पदग्राम के स्थान पर 'सेमेन्टीम' शब्द का प्रयोग किया है। इस परिभाषा में यह बात स्पष्ट नहीं होती कि धातु से डि सासे का क्या तात्पर्य है? यदि उसका धातु से वही तात्पर्य है जो संस्कृत में होता है तो इस परिभाषा के अनुसार 'जाता' आदि रूप पदग्राम की संज्ञा नहीं प्राप्त कर सकेंगे। पुनः यदि रचनातत्त्व से बने हुए शब्द पदग्राम का रूप धारण कर लेते हैं तो पदग्राम और शब्द में कोई अन्तर नहीं रह पाता; किन्तु यह अन्तर करना आवश्यक है, क्योंकि किसी शब्द में एक से अधिक भी पदग्राम हो सकते हैं।

(२) **ब्लूम फिल्ड**—पदग्राम वह भाषीय रूप है जिसका भाषा विशेष

(१) De Saussure —The formative element of a word, as opposed to root which is called the Semanteme.

(२) Bloomfield—A lingiustic form which bears no partial phonetic-semantic resemblance to any other form in the Language.

के किसी अन्य रूप से किसीप्रकार का ध्वन्यात्मक एवं अर्थगत सादृश्य नहीं होता।

इस परिभाषा में सब से बड़ी त्रुटि यह है कि इसमें शून्य सहपद के सम्बन्ध में कोई संकेत नहीं है जो आवश्यक है। बात यह है कि अनेक भाषाओं में शब्दों के क्रम से ही सम्बन्ध-भेद का बोध होता है। उदाहरण के लिये अँग्रेजी का निम्न-लिखित एक वाक्य लिया जा सकता है—

'मोहन किल्ड सोहन' (Mohan killed Sohan) ,इस वाक्य में, यदि मोहन और सोहन के क्रम को बदल दिया जाय तो अर्थ बिल्कुल विपरीत हो जायेगा, क्योंकि कर्तृत्व एवं कर्मत्व बदल जायेगा।

इस परिभाषा में एक और दोष यह है कि इसके द्वारा पद तथा पदग्राम का अन्तर स्पष्ट नहीं हो पाता।

(३) ब्लाक—कोई भी भाषीय रूप, चाहे वह मुक्त अथवा आबद्ध हो और जिसे और अल्पतम या न्यूनतम अर्थवान रूप में खण्डित न किया जा सके, पदग्राम होता है।

ऊपर की परिभाषा में अर्थ पर विशेष बल दिया गया है, किन्तु अमेरिका के आधुनिक भाषाविद् जिनमें हैरिस तथा हिल प्रमुख हैं, अर्थ को त्याज्य मानते हैं। यह बात इस अर्थ में भी ठीक है कि पदग्राम का कोई निश्चित अर्थ नहीं होता और इसका जो भी अर्थ होता है वह सन्दर्भ पर निर्भर करता है। इस परिभाषा में भी प्रायः वही त्रुटि है जो ब्लूमफिल्ड की परिभाषा में है। इस में ब्लाक पद तथा पदग्राम के अन्तर को स्पष्ट नहीं कर पाये हैं।

(४) हॉकेट—किसी भाषा के उच्चार में पदग्राम, न्यूनतम स्वतः अर्थवान तत्त्व होते हैं।

(५) ग्लीसन—पदग्राम न्यूनतम उपयुक्त व्याकरणीय अर्थवान रूप हैं।

---

(३) Any form, whether bound or free, which can not be divided into smaller meaningful parts, is a morpheme.

(४) Hockett - Morphemes are smallest individually meaningful elements in the utterences of a language.

(५) Gleason - The morpheme is the smallest unit which is grammatically pertinent.

(६) बैज़ेल—पदग्राम वितरणीय क्रियाशील तत्त्व या परिपूरक वितरणीय क्रिया की इकाइयों का समूह है।

बैज़ेल की ऊपर की परिभाषा में ही, सर्वप्रथम, सहपद को परिपूरक वितरण के आधार पर पदग्राम में गठित करने का स्पष्टरूप से उल्लेख है। पदग्राम की यह परिभाषा औरों की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक है।

(७) हिल—पदग्राम, ध्वनिग्राम का आवर्तक अनुक्रम है या आवर्तक अनुक्रमीय ध्वनिग्रामों का समूह है जो उसीप्रकार के आवर्तक या आवर्तक अनुक्रमों के समूह से विरोध में हो।

यद्यपि हिल ने अपनी परिभाषा में अर्थ को स्थान नहीं दिया है तथापि विरोध के रूप में अप्रत्यक्ष रूप से अर्थ का आशय आ जाता है।

(८) हैरिस—उच्चारण के वे अंश जो एक दूसरे से पूर्णरूप से स्वाधीन होते हैं, किन्तु जो समान या अनुरूप वितरण के रूप में आते हैं, पदग्रामीय खण्ड हैं। पदग्राम ऐसे खण्डों के वे समूह है जो स्वतंत्रतापूर्वक एक दूसरे को स्थानापन्न करते हैं या परिपूरक वितरण में रहते हैं।

हैरिस की, ऊपर की परिभाषा सर्वथा वैज्ञानिक है।

ऊपर की परिभाषाओं को ध्यान में रखकर पदग्राम की निम्नलिखित परिभाषा दी जा सकती है—

---

(६) Bazell- Morphemes are distributional functions or class of units having complementary distributional functions.

(७) Hill- A morpheme is a recurrent sequence of phonemes or a class of recurrent sequences of phonemes which contrasts with other sequences or class of sequences of the same type.

(८) Harris- Parts of utterences which are maximally independent of others but show identical or analogous distributions or the morphemic segments. Morphemes are classes of such segments which freely substitute for each other or are in complementary distribution.

पदग्राम, वस्तुतः, परिपूरक वितरण या मुक्त वितरण मे आए हुए महपदों का समूह है ।

५.१४ मुक्तरूप तथा आबद्धरूप एवं शब्द

मुक्तरूप तथा आबद्धरूप

इस वात का कई बार उल्लेख किया जा चुका है कि मनुष्य भाषा के माध्यम से ही अपना विचार व्यक्त करता है । सुविधा की दृष्टि से सम्पूर्ण विचारधारा को पहले वाक्य या वाक्यों में विभक्त कर लिया जाता है । इन वाक्यों मे प्रयुक्त रूपों के भी खण्ड हो सकते हैं । वे खण्डरूप जो स्वतंत्र अर्थवान रूप में वोले जाते हैं, "मुक्तरूप" कहलाते है । इसीप्रकार जो खण्डरूप स्वतंत्र अर्थवान रूप में नहीं बोले जाते हैं, "आबद्धरूप" कहलाते हैं ।

शब्द—शब्द वे भाषाशास्त्रीय रूप हैं जिनका वितरण एवं अर्थ पूर्णतया स्वतंत्र रूप में होता है तथा जिनके पूर्व एवं पश्चात् मौन रहना पड़ता है। शब्द और पदग्राम का अन्तर आगे स्पष्ट किया जायेगा । नीचे मुक्त तथा आबद्धरूपों के उदाहरण दिये जाते है ।

(१) मुक्तरूप—	राम्, घोड़ा, लड़का ।	
(२) मुक्तरूप+आवद्धरूप—	लड़के	[लड़क् + ए];
	घोडे	[घोड़ + ए];
	दासता	[दास् + ता] ।
(३) आबद्ध रूप + मुक्तरूप—	अपमान्	[अप + मान्];
	कुपुत्र	[कु + पुत्र],
	सुपुत्र	[सु + पुत्र]
(४) मुक्तरूप + मुक्तरूप—	गृह-दाह; मुँह-जोर,	
	काम + काज ।	
(५) आबद्धरूप + आवद्धरूप —	संस्कृत–तारतम्य	
	अंग्रेजी–Per-ceive; Con-ceive.	

ऊपर के रूपों को निम्नलिखित अंग्रेजी तथा हिन्दी शब्दों के उदाहरण मे स्पष्ट किया जाता है—

(१) House (२) Simplest (३) Covering (४) uneasy (५) Conductor (६) manly (७) Stamp (८) Disprove । इस उदाहरण में १ से लेकर ८ तक के रूप, शब्द हैं, जिनमें से २,३,४,५,६ तथा ८ में क्रमशः —st, —ing, un— —or, —ly, तथा dis—

आवद्धरूप है, क्योंकि इनका स्वतः कोई अर्थ नहीं है, किन्तु अन्य रूप — house, simple, cover, easy, conduct, man, stamp तथा prove, मुक्तरूप हैं, क्योंकि इन सभी शब्दों के अपने स्वतंत्र अर्थ हैं। इसीप्रकार हिन्दी के (१) गृह (२) मार्ग (३) दासता (४) रमणीय (५) लावारिस तथा (६) असफल रूपों में ३, ४, ५ तथा ६ के—ता, —ईय, ला—, और अ–, रूप आवद्ध एवं 'गृह', 'मार्ग', 'दास' 'रमण', वारिस तथा 'सफल' मुक्तरूप हैं।

शब्द—संकर तथा संश्लिष्ट

ऊपर शब्द की परिभाषा दी जा चुकी है वस्तुतः शब्द के दो भेद किए जा सकते हैं—(१) संकर (२) संश्लिष्ट।

संकर—संकर वे शब्द हैं जिनमें एक या एक से अधिक आवद्ध रूप होते हैं। उदाहरणार्थ हिन्दी के दासता (दास+ता), लड़कपन (लड़क+पन), अनवरोधी (अन्+अवरोध्+ई), तथा पंडिताई (पंडित्+आई) संकरशब्द हैं। इसीप्रकार अंग्रेजी के singer (sing+er), manly (man+ly), conductor (conduct+or), तथा disprove (dis+prove) शब्द भी संकर हैं।

संश्लिष्ट—वे शब्द हैं जो पूर्णतः दो या दो से अधिक न्यूनतम मुक्त-रूपों से निर्मित होते हैं। ये सामासिक शब्द होते हैं। यथा; डाक्खाना (डाक्+खाना); रेलगाड़ी (रेल्+गाड़ी); दीपगृह (दीप+गृह)। इसीप्रकार अंग्रेजी के Blackbird (black+bird); Drugstore (Drug+store); Soninlaw (Son+inlaw), postagestamp (postage+stamp); Taxcollector (Tax+collector), शब्द संश्लिष्ट के सुन्दर उदाहरण हैं।

पदग्राम तथा शब्द में अन्तर—पदग्राम तथा शब्द के उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् नीचे इन दोनों का अन्तर स्पष्ट किया जाता है।

पदग्राम भाषा की न्यूनतम अर्थवान इकाई है। इसका निर्माण किसी भाषा के एक या एक से अधिक ध्वनिग्रामों को एक विशेषक्रम में रखने से होता है; किन्तु शब्द व्याकरणीय वर्ग है और इसका निर्माण एक या एक से अधिक पद-ग्रामों को एक विशेषक्रम में रखने से होता है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि पदग्राम में एक या एक से अधिक ध्वनिग्रामों का विशिष्ट क्रम रहता है, किन्तु शब्द में एक या एक से अधिक पदग्राम का क्रम रहता है। एक

शब्द में कम से कम एक या एक से अधिक पदग्राम हो सकते हैं, किन्तु एक पदग्राम एक से अधिक शब्द का नहीं हो सकता। उदाहरणार्थ 'राम' तथा 'काम' शब्दरूपों को लिया जा सकता है। इन में दोनों रूप पद भी हैं तथा शब्द भी। गणित की भाषा में यहाँ पद=शब्द के है। अब तीन शब्दों—'लघुतम', 'चमकीला' तथा 'मुँहजोर'—का एक दूसरा उदाहरण लिया जा सकता है। इस उदाहरण में, वास्तव में, शब्दों की संख्या तो तीन है किन्तु पदों की संख्या छै है। ये छै पद क्रमशः 'लघु', 'तम्', 'चमक्', 'ईला', 'मुँह्', एवं 'जोर्' हैं। यहाँ शब्द पद से बड़ा है।

५.१५ उच्चार के रूपों का विश्लेषण

उच्चार का विश्लेषण पदग्रामशास्त्र का प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण विषय है। यहाँ पर इसी सम्बन्ध में विचार किया जायेगा। उच्चार में प्रयुक्तरूप, निम्नलिखित रूप में हो सकते हैं—
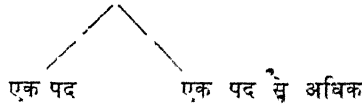
एक पद से अधिक शब्दों के निम्नलिखित रूप सम्भव हैं—

(१) मुक्तरूप + मुक्तरूप
(२) मुक्तरूप + आबद्धरूप
(३) आबद्धरूप + मुक्तरूप
(४) आबद्धरूप + आबद्धरूप

जैसा कि पहले कई स्थानों पर कहा जा चुका है, भाषाशास्त्र की दृष्टि से उच्चारों का खण्ड करके ही उनका वैज्ञानिक अध्ययन सम्भव है। उच्चाररूप एक पद या उससे अधिक का हो सकता है जिसपर पूर्व प्रकरण में सविस्तार विचार किया जा चुका है।

५.१६ पदग्रामिक विश्लेषण

साधारण मनुष्य के लिये तो शब्द या उच्चार का केवल इतना ही महत्त्व है कि उसके द्वारा अर्थ का बोध होता है, किन्तु भाषाशास्त्री केवल इतने से ही सन्तोष नहीं करता। वह और आगे बढ़ता है और प्रत्येक शब्द या उच्चार को न्यूनतम अर्थवान खण्डों में विभाजित करके उसका विश्लेषण करता है। उदाहरण के लिये संस्कृत का एक शब्द या उच्चार 'पठति' लिया जा सकता है। साधारण मनुष्य तो इस शब्द या उच्चार का केवल "पढ़ता है," यह अर्थ जानकर

ही सन्तुष्ट हो जाता है, क्योंकि उसके दैनिक जीवन में इस शब्द या उच्चार का इतना ही महत्त्व है, किन्तु भाषाशास्त्री तो इसे ।पठ्। + ।अ। + ।ति। रूप में खण्डित कर के ही इसका विश्लेषण करता है ।

भाषाशास्त्र का एक मुख्यकार्य शब्द या उच्चार को खण्डों में विभाजित करना है, किन्तु इस सम्बन्ध में सब से बड़ी कठिनाई यह है कि शब्द या उच्चार को खण्डों में विभाजित किया कैसे जाय ? उदाहरणार्थ यदि हम ऊपर के शब्द या उच्चार को ही लें तो इसके कई प्रकार से खण्ड कर सकते हैं; यथा—।प। + ।ठति। अथवा ।प्। + ।अ। + ।ठ्। + ।अ। + ।त्। + ।इ। अथवा ।पठ्। + ।अ। + ।त्। + ।इ। आदि ।

ऊपर के खण्डों में कौन उपयुक्त है, इसे प्रायः सभी संस्कृतज्ञ जानते हैं । वे 'पठति' शब्द या उच्चार को देखते ही जान जाते हैं कि इसमें 'पठ्' धातु है जिसमें "अ" विकरण तथा ति-प्रत्यय संयुक्त करके 'पठति' रूप सिद्ध हुआ है ।

जिन भाषाओं से हम परिचित होते हैं उनके शब्दों या उच्चारों के खण्ड करने में हमें कठिनाई नहीं होती है, किन्तु जब हम किसी अपरिचित भाषा का विश्लेषण करना प्रारम्भ करते हैं, तो शब्दों या उच्चारों के खण्ड करने की समस्या विकट रूप धारण कर लेती है । इसीलिये भाषाशास्त्री के लिये शब्द या उच्चार को खण्डों में विभाजित करके भाषा-विश्लेषण के सिद्धान्तों का निर्माण करना आवश्यक हो जाता है । इसके लिये वह उसी भाषा के कतिपय अन्य पदों को भी लेता है, किन्तु यहाँ भी उसे जिस दूसरी कठिनाई का सामना करना पड़ता है वह यह है कि उस भाषा के किसी भी शब्द या उच्चार के लेने से उसका काम नहीं बन पाता । उदाहरणार्थ यदि 'पठति' के खण्ड करने के लिये भाषाशास्त्री 'चलिष्यति' शब्द या उच्चार को ले तो उसे अपने इष्ट-साधन में विशेष सहायता न मिलेगी । उपयुक्त खण्डों को प्राप्त करने के लिये उसे यह आवश्यक होगा कि वह 'पठति' के अनुरूप ही संस्कृत के अन्य शब्द या उच्चार ले । इसप्रकार के पद 'चलति', 'भजति' 'वदति' आदि होंगे । इसप्रकार इन शब्दों या उच्चारों के उपयुक्त खण्ड निम्नलिखित होंगे—

पठ् + अ + ति
चल् + अ + ति
भज् + अ + ति
वद् + अ + ति

ऊपर उच्चारों के खण्ड करने के ढंग का उल्लेख किया गया है । वास्तव

मे मनुष्य विच्छिन्न पदों के द्वारा अपना विचार प्रकट नही करता है। वह तो निर्धारित क्रम के पदों मे निर्मित वाक्यों द्वारा ही अविच्छिन्नरूप में अपना मनोभाव व्यक्त करता है। उदाहरण के लिये हम निम्नलिखित वाक्य ले सकते है—

श्याम बड़ा भुलक्कड़ है।

जो लोग हिन्दी भाषा से परिचित हैं वे सहज में ही ऊपर के वाक्य को निम्न- लिखित रूप में उपयुक्त खंडों में विभाजित कर लेंगे—

।श्याम्। ।बड़ा। ।भुलक्कड़। ।है। ।

ऊपर के शब्दों में ।श्याम्। ।बड़ा। तथा ।है। के और न्यून अर्थवान खण्ड नहीं हो सकते, किन्तु ।भुलक्कड़। शब्द को पुनः दो न्यूनतम अर्थवान खण्डों ।भूल्। + ।अक्कड़। में विभाजित किया जा सकता है। इस विभाजन प्रक्रिया को प्राप्त करने के लिये हमें ऊपर के वाक्य के अनुरूप ही और वाक्य लेने पड़ेंगे; यथा—

।श्याम् बड़ा घुमक्कड़ है।

।श्याम बड़ा पियक्कड़् है।

ऊपर के तीनों शब्दों ।भुलक्कड़। ।घुमक्कड़। तथा ।पियक्कड़। में, कुछ अंशों में, रूपगत तथा अर्थगत समानता है, इस आधार पर ही इन तीनों शब्दों को हम निम्नलिखित रूप में, खंडों में विभाजित कर सकते हैं—

*भूल~भुल् + अक्कड़्

घूम~घुम् + अक्कड़्

पीय्~पिय् + अक्कड़्

जो लोग हिन्दी भाषा से अपरिचित है वे भी ऊपर की पद्धति का अनुसरण करके ही इन शब्दों का इसीरूप में विभाजन करेंगे। आधुनिक भाषाशास्त्री शब्दों का वर्गीकरण रूप के आधार पर ही करते हैं। प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि ने भी शब्दों का वर्गीकरण इसी रूप में किया है। इसप्रकार के वर्गीकरण से सबसे बड़ा लाभ यह है कि शब्दों को न्यूनतम अर्थवान खण्डों, अर्थात् पदों में विभाजित करके सहज में ही उनका विश्लेषण किया जा सकता है।

यदि किसी भाषा के अनेक उच्चार प्राप्त हों तो उसके पदों को खण्डों में

---

*सन्धि (Morphophonemics) के अनुसार ही भूल्, घूम् तथा पीय् में जब—अक्कड़—प्रत्यय संयुक्त होता है तो आदि के दीर्घ 'ऊ' तथा 'ई' ह्रस्व 'उ' तथा 'इ' में परिणत हो जाते हैं।

विभाजित किया जा सकता है। उदाहरण के लिये हिन्दी के निम्नलिखित उच्चार लिये जा सकते हैं—

(१) उसे देख।
(२) वह देखता है।
(३) वह देख रहा है।
(४) मैं देखूँगा।
(५) तू देखेगा।
(६) तू देख।
(७) मैं देखूँ।
(८) मैं देख रहा हूँ।
(९) मैं देख रही हूँ।
(१०) तू उसे देख।

ऊपर के वाक्यों को यदि पदों में खण्डित करना चाहें तो इनके निम्नलिखित पद-रूप होंगे—

१. [उस्]
२. [को]
३. [ए]
४. [वह]
५. [मैं]
६. [तू]
७. [देख्]
८. [ता]
९. [रह्]
१०. [ऊँ]
११. [गा]
१२. [आ]
१३. [है]
१४. [हूँ]
१५. [ई]

यहाँ एक प्रश्न यह उठता है कि उच्चारों को पदरूपों में, किस आधार पर, खण्डों में विभाजित किया जाय, क्योंकि ऊपर के आधार पर खण्डन करते समय जो एक समस्या उठती है, यह है कि समान ध्वनिक्रम रूपों के विभिन्न अर्थ हो सकते हैं। इस सम्बन्ध में बिहारी का निम्नलिखित दोहा द्रष्टव्य है—

कनक कनक ते सौगुनी, मादकता अधिकाय।
यह खाये बौरात नर, वह पाये बौराय।

यदि ऊपर के ।क्+अ+न्+अ+क्। ध्वनिग्राम क्रम से निर्मित 'कनक्' रूप को ऊपर के आधार पर वर्गीकृत करें तो यह एक पदरूप होगा, किन्तु चूँकि यहाँ दोनों ।कनक्। के अर्थ भिन्न हैं, अतः दोनों उच्चारों के {कनक्} {कनक्} दो भिन्न पदरूप होंगे।

५.१७ पदरूप निर्धारण सम्बन्धी सिद्धांत

पदरूपों के निर्धारण के सम्बन्ध में निम्नलिखित दो सिद्धान्तों को सदैव स्मरण रखना चाहिए—

सिद्धान्त—(१)

यदि समान ध्वनिग्रामों का क्रम समान हो, किन्तु अर्थ में भिन्नता हो तो वे भिन्न पदरूप होंगे । यथा :—

।मनुष्य को सदैव् काम् करना चाहिए।।

।काम् मनुष्य को हीन् एवम् पतित् बना देता है।।

ऊपर । काम् । में हिन्दी के तीन ध्वनिग्राम (स्वनग्राम) । क्, आ, म् । एक ही क्रम में हैं, किन्तु इन दोनों के अर्थ भिन्न हैं, अतएव ये दो भिन्न पद भी होंगे । पद की परिभाषा देते समय इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि पद वस्तुत: ध्वनिग्रामों का अल्पतम अथवा न्यूनतम अर्थवान आवर्तन होता है। चूँकि यहाँ अर्थ में भिन्नता है अतएव ये दोनों दो विभिन्न पदरूप होंगे ।

सिद्धान्त—(२)

यदि दो भिन्न ध्वनिग्राम क्रम में अर्थगत समानता हो तो भी वे दोनों ध्वनि-ग्राम-क्रम एक कोटि या श्रेणी में नहीं रखे जा सकते । दूसरे शब्दों में केवल अर्थगत समानता का आधार ही दो पदरूपों को एक कोटि में रखने के लिये पर्याप्त नहीं है । उदाहरणार्थ अर्थगत समानता वाले हिन्दी तथा अंग्रेजी के निम्न-लिखित युग्मों को लिया जा सकता है—

हिन्दी—

।पृथ्वी। ।धरित्री।

।उदक्। ।जल्।

अंग्रेजी—

।Boy। ।Lad।

।Large। ।big।

यद्यपि ऊपर के युग्मों में अर्थ की समानता है तथापि रूप (स्वनग्राम) वैभिन्य के कारण ये सभी भिन्न पदकोटि में आयेंगे ।

५.१८ अधिक अभेद, अधिक भेद

उच्चारों को खण्डों में विभाजित करते समय विश्लेषणकर्ता को दो प्रकार की भूलों से सदैव बचना चाहिए—

(१) अधिक अभेद ।

(२) अधिक भेद ।

अधिक अभेद—अधिक अभेद से यह तात्पर्य है कि जहाँ खण्ड करना चाहिए उसके आगे खण्ड किया जाय । उदाहरण के लिए हिन्दी का ।देखता। शब्दरूप

लिया जा सकता है। इसके दो खण्ड होंगे—।देख्।+ ।ता।। यदि इससे आगे खण्ड किया जाय तो उसमें अधिक अभेद का दोष होगा।

अधिक भेद—जहाँ खण्ड करना चाहिए वहाँ खण्ड न करके यदि उसके पहले ही खण्ड कर दिया जाय तो वहाँ अधिक भेद होगा। उदाहरण के लिये हिन्दी का ।करम्। शब्दरूप लिया जा सकता है। इसे ।करम्। के बाद ही खण्डित करना चाहिए ; किन्तु यदि विश्लेषणकर्ता इसे ।करा+।म्। अथवा ।का+।रम्। रूपों में खण्डित करे तो इसमें अधिक भेद का दोष उपस्थित हो जायेगा।

५.१९ पदग्रामिक विश्लेषण की पद्धतियाँ

पदग्रामिक विश्लेषण के लिये भषाशास्त्री कई पद्धतियों का प्रयोग करते हैं जिनमें निम्नलिखित दो पद्धतियाँ मुख्य हैं।

(१) **अर्थपद्धति**—डी० सासे, ब्लूमफिल्ड तथा ब्लाक एवं टैगर आदि प्रसिद्ध भाषाशास्त्री पदग्रामिक विश्लेषण का मुख्य आधार अर्थ मानते हैं। इनके अनुसार, ध्वनिग्राम का अल्पतम अर्थवान आवर्त्तन, पद है। जब इन पदों को परिपूरक वितरण एवं अर्थगत समानता के आधार पर गठित किया जाता है तो पदग्राम का निर्माण होता है और पदरूप में इनके प्रत्येक सदस्य को 'सहपद' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है।

(२) **रूपपद्धति**—इसके समर्थक अमेरिका के प्रसिद्ध भाषाशास्त्री प्रो० ज़ैलिग हैरिस, हिल तथा उनके अनुयायी हैं। इनके अनुसार पदग्रामिक विश्लेषण के लिये अर्थ को आधार मानना युक्तियुक्त नहीं है, क्योंकि यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो किसी भी शब्द का अर्थ निश्चित एवं सार्वभौम नहीं होता। देशकाल की सीमा के अन्तर्गत एक शब्द का विभिन्न सन्दर्भों में अर्थ भी विभिन्न हो जाता है। इन विद्वानों के अनुसार पदग्रामिक विश्लेषण का आधार वास्तव में रूप होना चाहिए और इसी के आधार पर ये लोग उच्चार का खण्ड भी करते हैं। इसके लिये वे किसी भाषा विशेष के बोलने वालों से यह प्रश्न पूछते हैं कि अमुक उच्चार समान हैं अथवा नहीं। यदि ये उच्चार समान हुए तो वे उन्हें एक कोटि का मानते हैं।

रूपपद्धति के अनुगमन से भी बिहारी की 'कनक' वाली समस्या का हल हो जाता है, क्योंकि उस भाषा का बोलनेवाला दोनों उच्चारों में प्रयुक्त ।कनक। को भिन्न समझेगा।

भाषा के विश्लेषण की यह पद्धति किंचित जटिल एवं दुरूह है। किन्तु

प्रोफेसर ज़ैलिग हैरिस तथा उनके छात्र चाम्स्की एव अन्य अनुयायी इस पद्धति को गणित के सिद्धान्तों के समान पूर्ण एवं सुनिश्चित बनाने में संलग्न है। इस पद्धति में जो सब से बड़ी कठिनाई है वह यह है कि पद-विश्लेषण मे किसी न किसी रूप में अर्थ का सहारा लेना ही पड़ता है। एक बात और है; यदि उच्चार का विश्लेषण केवल पदों तक ही करना हो तब तो अर्थ के बिना किसी न किसी प्रकार काम चल जायगा, किन्तु पदग्राम के निर्धारण के लिये अर्थ पर निर्भर होने के लिये बाध्य होना ही पड़ता है।

वर्गबन्धन

अब यहाँ यह प्रश्न स्वाभाविकरूप से उठता है कि क्या इस पद्धति के द्वारा पदग्रामों को भी प्राप्त किया जा सकता है? इसका स्पष्ट उत्तर यह है कि केवल पदों को खण्डों में विभाजित करके ही पदग्राम की उपलब्धि नहीं हो सकती। उसके लिए यह आवश्यक है कि इन खंडित पदों को वर्गो में भी बाँधा जाय। यह वर्गबन्धन पदों के परिपूरक वितरण एवं अर्थगत समानता के आधार पर किया जा सकता है। नीचे अवधी से एक उदाहरण दिया जाता है। यथा——

एक वचन	वहुवचन
घोड़ा	घोड़न् (घोड़ा~घोड़+न्)
घर्	घरन (घर्+अन्)

उपर्युक्त उदाहरण मे [न्] तथा [-अन्-] का वितरण इसप्रकार से प्रकट किया जा सकता है——

[-न्] स्वरान्त पुल्लिग शब्दों के साथ।

किन्तु [--अन्-] व्यंजनान्त पुल्लिग शब्दो के साथ।

इन दोनो पदों का वितरण परिपूरक है और साथ ही साथ इनमें अर्थ की समानता भी है। वस्तुतः दोनों ही पदों मे एक से अधिक (वहुवचन) का भाव प्रकट होता है। यही कारण है कि ये दोनों पद एक ही पदग्राम के अन्तर्गत गठित किये जाते है तथा ये दोनो पद एक ही पदग्राम के दो सदस्य या सहपद माने जाते है।

इसे स्पष्ट करने के लिये संस्कृत का निम्नलिखित उदाहरण भी द्रष्टव्य है--

१. पठामि (पठ्+आमि)

२. पठसि (पठ्+अ)+(सि)

३. पठति (पठ्+अ)+(ति)

ऊपर के रूपों मे [-आमि-], [-सि-] तथा [-ति-] को उनके वितरण के

आधार पर एक ही पदग्राम (वर्तमानकाल, एक वचन) के अन्तर्गत वर्गबद्ध कर सकते हैं, क्योंकि इनका वितरण परस्पर वर्जनकारी एवं परिपूरक है।

{वर्तमानकाल, एक वचन, पदग्राम} के निम्नलिखित सहपद हैं। इनका वितरण नीचे दिया जाता है:—

[–आमि] उत्तम पुरुष एक वचन।

[–मि] मध्यमपुरुष एक वचन।

[–ति] अन्यपुरुष एक वचन।

कई भाषाओं में ऐसा भी होता है कि एक ही रूप एक से अधिक स्थानों पर प्रयुक्त किया जाता है। अँगरेजी के निम्न उदाहरणों

(१) Rama's |s|

(२) |Cats| |s|

(३) |Dogs| |s|

(४) |goes| |s|

में प्राप्त |–s| जो कि उच्चारों को खण्डित करने के पश्चात् उपलब्ध होगा, रूप की दृष्टि से एक ही है, किन्तु क्या सभी |s| रूपों को एक साथ वर्गबद्ध किया जा सकता है? वस्तुतः सावधानी से देखने पर यह ज्ञात होगा कि हम प्रथम |s| को द्वितीय तृतीय अथवा चतुर्थ |s| के साथ वर्गबद्ध नहीं कर सकते, क्योंकि इनमें अर्थगत समानता का अभाव है, यद्यपि इनका वितरण परिपूरक है।

१ {–s} सम्बन्धकारक का भाव प्रकट करता है।

२ तथा ३ {–s} बहुवचन का भाव प्रकट करता है।

४ {–s} वर्तमानकाल एक वचन का भाव प्रकट करता है।

इसके विपरीत हम अँगरेजी बहुवचन द्योतक |–s| |–z| एवं |–+z| पदों को एक पदग्राम के रूप में वर्गबद्ध करते हैं, क्योंकि इनका वितरण परिपूरक होने के साथ-साथ, इनके अर्थ में भी समानता रहती है। इनमें अर्थगत समानता इसलिए है कि इन रूपों से एक से अधिक (बहुवचन) का भाव प्रकट होता है। इन रूपों के वितरण को स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित उदाहरण लिया जा सकता है:—

(१) blade— blades

(२) lion— lions

(३) flower— flowers

(४) pledge— pledges

(५) noise— noises
(६) choice— choices
(७) chief— chiefs
(८) hat— hats
(९) cat— cats

उपर्युक्त परम्परागत लिखितरूपों को ध्वनिग्रामीयरूप में निम्नलिखित प्रकार से लिखा जाता है। इसप्रकार की लिखावट के बिना पदग्रामीय विश्लेषण सम्भव नहीं है—

१. bleyd— bleydz
२. layn— laynz
३. flohr— flohrz
४. pleys— pleys+z
५. nɔyz— nɔyz+z
६. voys— vys+z
७. ciyf— ciyfs
८. hæt— hæts
९. kæt— kæts

उपर्युक्त उदाहरण में प्रथम तीन शब्दों में बहुवचन वाले रूप के अन्त में ।–z।, तथा उसके बाद तीन शब्दों में ।+z। एवं अन्तिम तीन शब्दों में ।–s। का प्रयोग किया गया है । यदि इन रूपों के वितरण को देखें तो ज्ञात होगा कि]–z], [–+z] तथा [–s] का विरतण परस्पर वर्जनकारी एवं परिपूरक है ? क्योंकि

[z] ।d। ।n। ।r। के बाद आता है ।
[+z] । s, z, s । के बाद आता है।
[s] t, p, f के बाद आता है ।

अतएव [z], [+z] तथा [s] परिपूरक वितरण में हुए और इन तीनों रूपों को एक पदग्राम के अन्तर्गत गठित किया जायगा। यें तीनों रूप एक ही पदग्राम के तीन भिन्न सदस्य या सहपद कहे जायेंगे ।

इस प्रकार { बहुवचन द्योतक } पदग्राम के निम्नलिखित सहपद हुए—

[z]
[+z]

पीताम्बर
धर-पकड़
दस-कन्ध
संस्कृत— राजमार्ग
लम्बोदर
दशानन
अँगरेजी— फुट्-बॉल
रेड-कोट
ओवर-लुक
एक्स-रे

स्वतंत्र शब्द

अनेक भाषाओं में सम्बन्ध तत्त्व अर्थतत्त्व से संयुक्त न होकर पृथक एवं स्वतंत्र शब्द के रूप में रहता है। हिन्दी-के,ने, में, को, से, संस्कृत-च, अपि, एवं तथा अँगरेजी के in, to, on आदि रूप इसके उदाहरण हैं।

संयुक्तीकरण

प्रायः संसार की अधिकांश भाषाओं में सम्बन्धतत्व अर्थतत्व के साथ संयुक्त रहता है। यह संयुक्तीकरण—प्राथमिक माध्यमिक एवं अन्तिम—तीनों स्थितियों में हो सकता है। इसी आधार पर संयुक्तीकरण के तीन वर्ग किये जा सकते हैं—

(१) प्राथमिक या पूर्वस्थिति वाला रूप, जिसे संस्कृत तथा हिन्दी में 'उपसर्ग' के नाम से अभिहित किया जाता है।

(२) माध्यमिक अथवा मध्यस्थिति वाला रूप।

(३) अन्तिम अथवा अन्तस्थिति वाला रूप, जो संस्कृत एवं हिन्दी में 'प्रत्यय' के नाम से संबोधित किया जाता है।

(१) प्राथमिकस्थिति वाला संयुक्तीकरण रूप अथवा उपसर्ग—

इसके निम्नलिखित उदाहरण हैं:—

हिन्दी—अ-, अन्-, दुर्- तथा भर्- आदि। यथा—अचेत्, अन्सुना, दुर्जन्, भर्पेट्।

संस्कृतः—प्र-, परा-, अप-, सम्- आदि। यथा—प्रमाद, पराभव, अपहरण्, सम्भावना।

अँगरेजी— Re-, per-, un तथा dis आदि। यथा—Receive perceive, uncover, dislike, आदि।

(२) माध्यमिकस्थिति वाला संयुक्तीकरण रूप—निम्नलिखित उदाहरणों के आधार पर माध्यमिक संयुक्तीकरण की प्रक्रिया को स्पष्ट किया जा सकता है। यथा—

हिन्दी— चलना — चलाना

चलाना — चलवाना

इस उदाहरण में—आ—तथा —वा—आदि रूप माध्यमिक संयुक्तीकरण के उदाहरण हैं। इसके उदाहरण अन्य भाषाओं में भी उपलब्ध हैं। यथा—

मुण्डा भाषा—

(१) दल् — मारना

दपल् — परस्पर मारना

(२) मंझि — मुखिया

मपंझि — मुखिया लोग

लैटिन—

विची — मैंने (विजय की) जीत लिया

विन्ची— मैं जीता।

अँगरेजी—

स्टुड — भूतकाल द्योतक

स्टैन्ड — वर्तमानकाल द्योतक

टगलाग (फिलिपाइन की एक भाषा)—

सूलत् (स् ऊ ल् अ त्)=लेख

सुमूलत् (स् उ म् ऊ ल् अ त्)=लिखनेवाला

सिनूलत् (स् इ न् ऊ ल अ त्)=लिखा गया

(३) अन्तिमस्थिति वाला संयुक्तीकरण रूप या प्रत्यय—

हिन्दी—पा,-ता,-पन,-आई,-आऊ, आका आदि। यथा—

मोटापा	दासता
लड़कपन्	गोराई
खाऊ	लड़ाका

अँगरेजी—ly,-ness,-tion,or आदि यथा—

badly	boldness
intimation	conductor

५.२५ द्वित्त्व रूप

मूल शब्द या उसके किसी खण्ड की पुनरावृत्ति करने से भी कुछ भाषाओं में सम्बन्धतत्व का बोध हो जाता है। यथा;

हिन्दी— रोटी-वोटी, घर-वर्

अँगरेज़ी— पुह–पुह
बो–बो

मराठी— घोड़ा–बिड़ा

उपर्युक्त प्रक्रियाओं के अतिरिक्त अन्य प्रक्रियायें भी सम्बन्धतत्व को प्रकट करने वाली हो सकती हैं। किन्तु यहाँ मुख्य-मुख्य प्रक्रियाओं पर ही विचार किया गया है। यहाँ पर यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि किसी भाषा विशेष में ऊपर की एकाधिक प्रक्रियाओं द्वारा सम्बन्धतत्व को प्रकट किया जा सकता है।

५.२६ शब्द-रूपावली तथा रूप-वर्ग

प्रत्येक भाषा का अपना एक विशेष ढाँचा होता है। इसका अर्थ यह है कि हम एक गठन के उच्चार में, एक कोटि के शब्द के स्थान पर, उसी कोटि के किसी भी शब्द को स्थानापन्न कर सकते हैं। दूसरे शब्द को उस ढाँचे के अन्दर रखने पर भी गठन का परिवेश अपरिवर्तनीय रहता है।

इस बात को हम एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं। अगर कोई यांत्रिक यह जानना चाहता है कि किसी मशीन के दो पुरजों की चूड़ियाँ समान हैं अथवा नहीं, तो इसके लिए वह एक आधारभूत पुरजा लेगा और उसमें उन दोनों पुरजों को रखकर देखेगा। अगर दोनों पुरज़ों की चूड़ियाँ ठीक-ठीक बैठ जाती हैं तो वे दोनों पुरजे समान होंगे। भाषाशास्त्रीय शब्दावली में आधारभूत पुरज़े को हम गठनात्मक-परिवेश एवं दोनों पुरज़ों को रूप-वर्ग की दो ईकाइयों के नाम से अभिहित कर सकते हैं। ये दोनों पुरज़े एक दूसरे के स्थान पर स्थानापन्न किए जा सकते हैं।

भाषाशास्त्र के अन्तर्गत रूप-वर्ग की विभिन्न इकाइयाँ यद्यपि अर्थ की दृष्टि से समान नहीं होंगी किन्तु गठनात्मकरूप से वे समान होंगी। भाषाशास्त्रीय रूपों का जब एक वर्ग किसी शब्द-रूपावली की एक स्थिति में ठीक-ठीक बैठ जाता है तब उसे रूप-वर्ग कहते हैं। उदाहरण के लिये, निम्नलिखित रूप में, हिन्दी के दो गठनात्मक परिवेश बनाये जा सकते हैं—

(क) लड़का अच्छा है।

(ख) लड़के अच्छे हैं।

(ग) वह अच्छा लड़का जाता है ।
(घ) वे अच्छे लड़के जाते हैं ।

लड़का हरि श्याम घर बाग तू वह	अच्छा है	लड़के घर बाग वे	अच्छे हैं ।

वह अच्छा	लड़का घोड़ा बालक	जाता है
वे अच्छे	लड़के घोड़े बालक	जाते हैं ।

ऊपर जो 'शब्द-रूपावली' शीर्षक दिया गया है वह अंग्रेजी 'पैराडिग्म' का अनुवाद है । पैराडिग्म शब्द ग्रीक भाषा का है और उसका अर्थ है, साँचा या ढाँचा । वस्तुतः शब्द-रूपावली* (paradigm) रूपात्मक विभिन्नताओं की पद्धति है जो किसी परिवेश में रूपात्मक विभिन्नताओं की समानान्तर पद्धति से सम्बन्धित होती है ।

५.२७ शून्यप्रत्यय या शून्यसहपद

जब किसी शब्द-रूपावली का वर्णन करते समय कोई रूप उसके गठन के साँचे में बाधक होता है तब अभाव की पूर्ति के लिये उस रूप में प्रत्यय के समान शून्यसहपद संयुक्त किया जाता है । प्रसिद्ध वैय्याकरण पाणिनि ने संस्कृत भाषा के व्याकरण में इस पद्धति को अपनाया है तथा उन्होंने शून्य रूप प्रत्ययों के कोई न कोई काल्पनिक नाम देकर उनके द्वारा रूप-प्रक्रिया को समझाने की कोशिश

*A paradigm is a system of morphemic variations which is co-related with a parallel system of variations in environment.

की है। आज के भाषाशास्त्री भी भाषा के विश्लेषण के लिये शून्य प्रत्यय का प्रयोग करते है।

शून्य प्रत्यय को स्पष्ट करने के लिये हिन्दी की बुलन्दशहर की बोली से एक उदाहरण लिया जा सकता है। यहाँ छोरा (लड़का) शब्द का एकवचन तथा बहुवचन में समान रूप रहता है, यद्यपि यहाँ की भाषा में बहुवचन बनाने के लिये कई प्रत्यय हैं। यथा; छोरा जाता है (ए० व०), छोरा जाते हैं (ब० व०)। यहाँ बहुवचन के 'छोरा' रूप में शून्य प्रत्यय है और इसका विश्लेषण इसप्रकार किया जायेगा—

ए० व०—छोरा
ब० व०—छोरा+ϕ

ठीक यही दशा भोजपुरी में भी है। वहाँ बहुवचन के रूप सम्पन्न करने के लिये ।–'न'। , ।–'न्ह'। प्रत्यय संयुक्त किए जाते हैं, किन्तु 'लइका' (लड़का) का प्रयोग एकवचन तथा बहुवचन में समानरूप से होता है। इसप्रकार वहाँ भी बहुवचन में ऊपर की भाँति ही शून्यप्रत्यय माना जायेगा।

अँग्रेज़ी में बहुवचन के रूप सम्पन्न करने के लिये निम्नलिखित प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं:—

।–s। , । –z। , । –ẓ। –en। , । –rən।

ऊपर के कोई न कोई सहपद एकवचन के साथ संयुक्त होकर बहुवचन के रूप बनाते हैं। किन्तु अँग्रेज़ी में अपवादस्वरूप कुछ शब्द ऐसे हैं जिनके एकवचन तथा बहुवचन के रूपों में कोई अन्तर नहीं होता। उदाहरणार्थ अंग्रेज़ी के sheep शब्द का एकवचन तथा बहुवचन में एक ही रूप रहता है। इसके बहुवचन रूप का विश्लेषण इसप्रकार करेंगे—

ए० ब० sheep
ब० व० sheep+ϕ

ऐसे ही स्थलों में, भाषा की रचनात्मक संगति की दृष्टि से, उन एकवचन-वाची शब्दों में शून्यप्रत्यय मानकर बहुवचन रूप की व्याख्या की जाती है। इस प्रकार शून्यप्रत्यय एक सहपद हो जाता है जिसका वितरण ऊपर के बहुवचन के सहपदों के वितरण में परिपूरकरूप में होता है।

५.२८ विभक्ति तथा व्युत्पादक प्रत्यय

किसी भाषा के प्रत्यय प्रायः दो प्रकार के होते हैं—(१) विभक्ति (Inflectional) (२) व्युत्पादक (Derivational)।

विभक्ति प्रत्यय उन पदग्राम समूहों के अन्त में संयुक्त होते हैं जिनसे उनका सम्वन्ध रहता है, किन्तु व्युत्पादक प्रत्यय वे होते हैं जिनका अन्य प्रत्यय अनुगमन करते हैं। उदाहरण के लिये "लड़का" पदग्राम लिया जा सकता है। कर्ता कारक, एकवचन में इसका रूप 'लड़का' ही रहेगा किन्तु बहुवचन में इसका रूप "लड़के" हो जायेगा। यहाँ {—ए} विभक्तियुक्त प्रत्यय है। अब उदाहरणार्थ एक युग्म ।लड़का। तथा ।लड़कपन। का लिया जा सकता है। यहाँ {—पन} व्युत्पादक प्रत्यय है।

यहाँ विभक्ति तथा व्युत्पादक प्रत्ययों के अन्तर को भी भलीभाँति समझ लेना चाहिए। वास्तव में विभक्तियुक्त प्रत्यय के बाद कोई अन्य प्रत्यय संयुक्त नहीं हो सकता किन्तु व्युत्पादक प्रत्यय के बाद अन्य प्रत्यय संयुक्त हो सकते हैं। उदाहरण के लिए ।मूर्ख। तथा ।रुक्। पदोंको लिया जा सकता है। इनमें {—ता} एवं {—आवट्} व्युत्पादक प्रत्ययों को संयुक्त करके ।मूर्खता। तथा ।रुकावट। पद बनेंगे। इनमें विभक्तियुक्त प्रत्यय {—ओं} एवं {—एँ} संयुक्त करके ।मूर्खताओं। तथा ।रुकावटें। पदग्राम सम्पन्न होंगे।

५.२९ अभ्यासार्थ प्रश्न एवं उत्तर

अभ्यास १. (ब्रजभाषा) [बुलन्दशहर तहसील की बोली के आधार पर]

बैचैन्
चैन्
बैचैनी
अचैन्
उथला
उथली
पूत्
कपूत्
चाल्
कुचाल्
घात्
कुघात्

प्रश्न—१. समस्तपद छाँटिये ?

उत्तर—१. [—चैन्]
[बै—]

[–ई]
[–अ]
[उथल्–]
[–आ]
[–ई]
[–पूत्]
[क्–]
[चाल्]
[कु]
[घात्]
[कु–]

अभ्यास २. (हिन्दी)

उपज्
उपजाऊ
चल्
चलाऊ
कमा
कमाऊ
खा
खाऊ

प्रश्न—(१) समस्त पदों का विश्लेषण कीजिए

(१) पदग्राम (Morpheme) निर्धारित कीजिए ।

उत्तर (१) [उपज्]
[आऊ]
[चल्]
[आऊ]
[कमा]
[ऊ]
[खा]
[ऊ]

(२) **पदग्राम**

{उपज्}
{चल्}
{कमा}
{खा}
{वाला अर्थ द्योतक} पदग्राम के दो सहपदग्राम हैं—
[आऊ]—व्यंजनान्तपश्चात्
[ऊ]—अन्यत्र

अभ्यास ३. (भोजपुरी)

१. ग्वालिनि
२. सोहागिनि
३. दुलहिनि
४. नागिनि
५ तेलिनि
६. धोबिनि

प्रश्न—

१. समस्त पदों का विश्लेषण कीजिए ।

२. समस्त पदग्राम निश्चित कीजिए ।

उत्तर

१. १. [ग्वाल्] २. [इनी] ३. [सोहाग्] ४ [इनी]
५. [दुलह्] ६. [इनी] ७. [नाग्] ८. [इनी]
९. [तेल्] १० [इनी] ११. [धोब्] १२. [इनी]

२. {ग्वाल्}
{सोहाग्}
{दुलह्}
{नाग्}
{तेल्}
{धोब्}
{इनी}—स्त्री प्रत्यय ।

अभ्यास ४. (भोजपुरी)

१. देखली

२. देखले
३. देखलऽ
४. देखलसि
५. देखल्

प्रश्न १. समस्त पदों का विश्लेषण कीजिए ।

[देखल्]
[ई]
[ए]
[ऽ]
[असि]

अभ्यास ५. कानुरी भाषा (नाइजेरिया)

अर्थ

१. gana = लघु
२. kura = विशाल
३. kurugu = लम्बा
४. karite = सुन्दर
५. dibi = बुरा
६. nəmgana = लघुता
७. nəmkura = विशालता
८. nəmkurugu = लम्बाई
९. nəmkarite = सुन्दरता
१०. nəmdibi = बुराई

(ऊपर नाइजेरिया प्रदेश के कानुरी भाषा के कुल१० शब्द दिए गए हैं। इन्हें ध्यानपूर्वक देखकर नीचे के प्रश्नों का उत्तर दीजिए ।)

१. ऊपर के शब्दों में किसप्रकार के प्रत्ययका प्रयोग किया गया है। उसका रूप एवं अर्थ लिखिये ।
२. इस भाषा में । keji । शब्द का अर्थ 'मीठा' है। 'मिठाई' अर्थ वाले शब्द का इस भाषा में क्या रूप होगा ।
३. भलाई अर्थ में इस भाषा में । nəmnɔla । शब्द मिलता है। 'भला' अर्थ वाले शब्द का क्या रूप होगा ।

उत्तर—१. ऊपर के शब्दों में पूर्व प्रत्यय (उपसर्ग) का प्रयोग किया गया है। यह पूर्व प्रत्यय । nəm । है जो संज्ञा-वाची प्रत्यय है। हिन्दी भाषा में ।ता। अथवा ।ई। प्रत्यय लगाकर यह रूप निष्पन्न होता है ।
२. nəmkeji = मिठाई
३. nɔla = भला

अभ्यास ६. गान्डा भाषा (उगान्डा)

१. omukazi = स्त्री	६. abakazi = स्त्रियाँ
२. omusawo = डाक्टर	७. abasawo = डाक्टर लोग
३. omusika = उत्तराधिकारी	८. absika = उत्तराधिकारी लोग
४. omuwala = लड़की	९. abawala = लड़कियाँ
५. omulenzi = लड़का	१०. abalenzi = लड़के

प्रश्न—

१. ऊपर के शब्दों में किसप्रकार के प्रत्ययों का प्रयोग किया गया है। उनका रूप एवं अर्थ लिखिए।

२. इस भाषा में जुड़वा लोगों के लिए । abalongo । शब्द है। 'जुड़वा' अर्थ वाले शब्द का क्या रूप होगा।

उत्तर—१. ऊपर के शब्दों में पूर्व प्रत्ययों (उपसर्गों) का प्रयोग हुआ है—

१. । omu । —एकवचन द्योतक

२. । aba । —बहुवचन द्योतक

३. । omulongo । = जुड़वाँ

अभ्यास ७. ब्रजभाषा (बुलन्दशहर तहसील की बोली के आधार पर)

उच्चार	अर्थ
यौ —	यह
यू —	यह
यै —	यह
ये —	ये
या —	इस
इत् —	इस
इन —	इन

प्रश्न

१. समस्त पद-रूपों का विश्लेषण कीजिए।

२. पदों को पदग्राम में सम्बद्ध कीजिए।

उत्तर

१. पदरूप

[य्], [औ], [उ], [ऐ], [ए], [आ], [इ] [, त्], [न्]

२. पदग्राम

{ निकटवर्ती संकेतवाचक सर्वनाम मूल पदग्राम } के दो सहपद हैं—

।य्। अविकारी एवं विकारी एकवचन निकटवर्ती संकेतवाचक सर्वनाम, मूल।

।इ। विकारी एकवचन एवं बहुवचन निकटवर्ती संकेतवाचक सर्वनाम, मूल।

{अविकारी एकवचन पुंल्लिग निकटवर्ती संकेतवाचक सर्वनाम प्रत्यय} पदग्राम के तीन सहपद हैं जो मुक्त-परिवर्तन में वितरित हैं—

। औ~उ~ऐ ।

{ए} अविकारी बहुवचन पुंल्लिग निकटवर्ती संकेतवाचक सर्वनाम प्रत्यय पदग्राम ।

{ विकारी पुंल्लिग एकवचन निकटवर्ती संकेतवाचक सर्वनाम प्रत्यय } पदग्राम के दो सहपद हैं—

।त्। – 'इ' मूल के साथ जुड़ता है ।

।आ। – 'य्' मूल के साथ जुड़ता है ।

{न्} विकारी पुंल्लिग बहुवचन निकटवर्ती संकेतवाचक सर्वनाम प्रत्यय पदग्राम ।

६

वाक्यांश अध्ययन

६.१० भूमिका

जब हम विविध भाषाओं का अध्ययन करते हैं तो यह स्पष्टतया देखते हैं कि उनके रूपवर्ग तथा वाक्यविन्यास में कोई अन्तर नहीं होता है। उदाहरण के लिये—

। वह जाता है
वह खाता है
वह पीता है।

आदि वाक्यों को लिया जा सकता है। इनमें, । जाता है, खाता है, पीता है।, आदि एक रूपवर्ग है। इसके स्थान पर, । लिखता है, पढ़ता है, चलता है, हँसता है।, आदि रखकर हम देखते हैं ये भी इसी रूपवर्ग के अन्तर्गत आ जाते हैं। वास्तव में, । जाता है, खाता है, हँसता है, पीता है।, आदि पूर्ण वाक्यों के अंग हैं।

६.११ वाक्यांश (कार्य)

वाक्यविन्यास के सम्बन्ध में विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि **वाक्यरचना** के दो रूप होते हैं—

(१) एक ओर तो वाक्यांश एक विशेष रूप में गठित होते हैं।

(२) दूसरी ओर ये पूर्ण वाक्य में विशेष स्थान ग्रहण करते हैं।

(१) **अन्तः केन्द्रमुखी संरचना**

यदि कोई वाक्यांश वही भाव प्रकट करता है जो उसका कोई सन्निकट मौलिक अंश करता है तो इसप्रकार के वाक्यांश को "अन्तः केन्द्रमुखी" वाक्यांश कहेंगे और इसप्रकार की संरचना 'अन्तः केन्द्रमुखी संरचना' कहलायेगी। उदाहरण स्वरूप 'मीठा फल' वाक्यांश लिया जा सकता है। यहाँ 'फल्' तथा 'मीठा फल्' का कार्य एक ही है क्योंकि जैसे हम यह कह सकते हैं कि। 'मुझे फल् दो' 'फल् खाओ' 'फल् ले जाओ' उसीप्रकार हम यह भी कह सकते हैं कि 'मुझे मीठा फल् दो', 'मीठा फल् खाओ', 'मीठा फल् ले जाओ'।

'मीठा फल्' वाक्यांश में 'फल्' का वही कार्य है जो 'मीठा फल्' का। इस कारण यहां 'फल्' विशेष्य है एवं 'मीठा' गुणसूचक (विशेषण) है। इसप्रकार की 'अन्तः केन्द्रमुखी संरचना,' जिसमें केवल एक विशेष्य है, गौण अथवा गुण-सूचक संरचना कहलाती है।

अन्य 'अन्तः केन्द्रमुखी' संरचना में दो या दो से अधिक विशेष्य होते हैं, किन्तु कोई गुणसूचक नहीं होता है, यथा—'दूध् और भात्', 'चीनी, घी, और दूध्', 'नोन तेल और लकड़ी' इनमें दो या दो से अधिक विशेष्य होते है और प्रायः एक या एक से अधिक संयोजक होता है।

यदि किसी बड़े वाक्यांश में 'अन्तः केन्द्रमुखी संरचना' के विभिन्न स्तर हों तो उस संरचना के अन्त में एक या एक से अधिक विशेष्य हो सकते हैं। उदा-हरणस्वरूप 'कतिपय अत्यंत मीठे फल्', वाक्यांश में, 'कतिपय' विशेषण होगा और 'अत्यंत मीठे फल्' विशेष्य। आगे विश्लेषण करने से यह ज्ञात होता है कि 'अत्यंत' 'मीठे' का और 'मीठे' 'फल्' का गुणसूचक है। यहाँ पर 'फल्' विशेष्यों का भी विशेष्य है। यह अन्तिम विशेष्य (फल्) जो पूर्ण वाक्यांश के भाव को द्योतित करता है, वस्तुतः पूरे वाक्यांश का केन्द्र है।

पुनः 'ये फल्' वाक्यांश अन्तः केन्द्रमुखी तथा गुणसूचक है, क्योंकि यह वाक्यांश वही कार्य द्योतित करता है जो इस वाक्यांश का मौलिक अंश 'फल्'। यहाँ पर जो किञ्चित भिन्नता है, उसपर विचार करना आवश्यक है। वस्तुतः 'फल्' के पूर्व तो अनेक विशेषण रखे जा सकते हैं, किन्तु 'ये' के पूर्व कोई विशेषण नहीं रखा जा सकता। दूसरे शब्दों में हम यह नहीं कह सकते कि 'मीठे ये फल्' अथवा 'सुन्दर् ये फल्'। इसप्रकार के प्रयोग हिन्दी की गठन के विरुद्ध होंगे। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि 'ये' शब्द वास्तव में आगे की संरचना को समाप्त कर देता है। इसके पूर्व कोई गुणसूचक विशेषण नहीं रखा जा सकता, किन्तु इसी वर्ग का अर्थात् सर्वनाम रूप का गुणसूचक शब्द अवश्य रखा जा सकता है, जैसे-'सम्पूर्ण ये फल्'। समाप्तसूचक मुक्त संरचना को भी हम 'अन्तः केन्द्रमुखी संरचना' ही कहेंगे, क्योंकि मुख्य भाव अपरिवर्तित रहता है और 'ये फल्' भी 'फल्' की ही भाँति सत्तावाची संरचना है।

(२) बहिःकेन्द्रमुखी संरचना—

यदि कोई वाक्य वही कार्य द्योतित नहीं करता है जो उसके किसी भी सन्नि-कट मौलिक अंश द्वारा द्योतित होता है तो इसप्रकार की संरचना 'बहिकेन्द्रमुखी संरचना' कहलाती है और इसप्रकार के वाक्यांश को 'बहि केन्द्रमुखी' वाक्यांश

कहते हैं। उदाहरणस्वरूप, । राम् के लिये, बैलों का। आदि परसर्गीय युक्त वाक्यों में न तो कोई विशेष्य है और न कोई गुणसूचक।, अतएव ये 'वहि:केन्द्र मुखी सरचना है। पूर्ण भाव द्योतित करने के लिये हमें 'राम के लिये उपहार', 'राम के लिये प्रतीक्षा', 'बैलों के लिये चारा', 'बैलों का घर' आदि कहना पड़ेगा।

७

बोलीशास्त्र (Dialectology)

७.१० उपबोली, बोली, भाषा

उपबोली का सम्बन्ध वास्तव में किसी व्यक्ति की वाक्-प्रवृत्ति (Speech-habit) से है। जब हम किसी निर्धारित समय में इन वाक्-प्रवृत्तियों का अध्ययन करते हैं तो यह उपबोली का अध्ययन होता है। उपबोली की परिभाषा इसप्रकार दी जा सकती है—'किसी व्यक्ति के निर्धारित समय की वाक् प्रवृत्तियों की समष्टि ही उपबोली है।' इसके कतिपय अपवाद भी हैं। बँगला अथवा मराठी भाषा-भाषी लड़के, हिन्दी-क्षेत्र में, घर में, एक उपबोली तथा हिन्दी-भाषियों से हिन्दी में वार्तालाप करते समय दूसरी उपबोली का उपयोग करते हैं। इसप्रकार एक ही समय में ये दो उपबोलियों का प्रयोग करते हैं। दो भाषाओं की सीमा के लोगों की उपबोली का निर्धारण भी कठिन होता है, क्योंकि इनमें दोनों भाषाओं की प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। ऐसी उपबोली को सीमावर्ती उपबोली की संज्ञा दी जा सकती है।

यद्यपि किसी उपबोली का सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है, किन्तु लोग प्रायः इसप्रकार का अध्ययन नहीं करते। वास्तव में उपबोली के रूप में भी किसी समूह विशेष की वाक्-प्रवृत्तियों का अध्ययन ही उनका लक्ष्य होता है। फिर भी उपबोली की स्पष्ट धारणा महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि विश्लेषणात्मक दृष्टि से विचार करने पर कोई भी भाषा उपबोलियों के संकलनरूप में ही दृष्टिगोचर होती है। भाषा वस्तुतः वह आधारभूत वस्तु है जिसके द्वारा मानव सामूहिक वृत्तियों को प्राप्त एवं उनका संवहन करता है किन्तु भाषण (Speaking) सामूहिक वृत्ति नहीं है। हम सम्पूर्ण जाति के अधिकांश भाषीय वृत्तियों को प्रत्यक्ष रूप से नहीं देख सकते। इसीप्रकार किसी एक व्यक्ति के भाषीय वृत्तियों को भी हम नहीं देख सकते। प्रत्यक्ष रूप में या तो हम, केवल, व्यक्तियों को बोलते हुए देख सकते हैं या इन बोलियों के लिखित रूप को देख सकते हैं।

जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है, कोई भी भाषा एक प्रकार की उपबोलियों का संकलनमात्र है। बोली भी ठीक यही वस्तु है, किन्तु दोनों में तनिक भेद हैं। जब हम एक ही साथ भाषा एवं बोली दोनों की चर्चा करते हैं तो हम स्पष्टरूप में यह देखते हैं कि भाषा में अन्तर्भुक्त समस्त उपबोलियों में जिस मात्रा में समानता मिलती है उसकी अपेक्षा बोली में अन्तर्निहित समस्त उपबोलियों में अधिक मात्रा में समानता उपलब्ध होती है। कोई भी व्यक्ति रोहतक में प्रयुक्त हिन्दी की उपबोलियों एवं काशी में प्रचलित उपबोलियों को एक बोली अथवा भाषा के अन्तर्गत न रख सकेगा। इसीप्रकार एक ही भाषा बोलने वालों के सम्बन्ध में विचार करते हुए हम यह नहीं कह सकते कि इनमें से कुछ लोग उस भाषा की एक बोली का प्रयोग करते हैं और अन्य लोग 'वास्तविक भाषा' बोलते हैं। सच बात तो यह है कि प्रत्येक व्यक्ति कोई न कोई एक बोली ही बोलता है। इसप्रकार का अन्तर होते हुए भी इन दोनों पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग प्राय: शिथिल रूप में होता है। हिन्दी भाषा के क्षेत्र की चर्चा करते हुए हम उत्तर-प्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार एवं राजस्थान को इसके अन्तर्गत मानते हैं, किन्तु कभी-कभी हम बिहारी तथा राजस्थानी हिन्दी की भी बातें करते है। इसमें न तो कोई हर्ज है और न ग़लती ही है। भाषा एवं बोली के प्रयोग में सापेक्षिक रूप में जो भी शैथिल्य है वह दोष की अपेक्षा गुण ही है, क्योंकि उपबोलियों की समानता की मात्रा को दृष्टि में रखकर इस सम्बन्ध में हम अनेक नये पारिभाषिक शब्द गढ़ सकते हैं।

यहाँ पर हम दो दृष्टिकोणों से विचार करेंगे। ये दोनों वाह्य दृष्टिकोण हैं और इनमें इस बात की आवश्यकता नहीं है कि शोधकर्ता जिन उपबोलियों के सम्बन्ध में खोज कर रहा है वह उनकी रूपरेखा भी जाने। इन दोनों दृष्टिकोणों का भाषा सम्बन्धी हमारे दैनिक जीवन की मान्यताओं से सम्बन्ध है और इन दोनों से दो सिद्धान्त उद्‌भूत होते हैं। इनमें से पहला यह है कि जो लोग एक ही भाषा बोलते हैं वे एक दूसरे की बातें समझ लेते हैं। इसके विपरीत जो लोग एक दूसरे की बातें नहीं समझ पाते, वे निश्चितरूप से दो विभिन्न भाषाओं का प्रयोग करते हैं। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि भाषा सम्बन्धी तथ्य इतने सरल नहीं हैं कि सीधे तौर पर उन्हें वर्गीकृत किया जाँय; किन्तु फिर भी इन दो सिद्धांतों को ध्यान में रखकर उपबोलियों के वर्गीकरण के विषय में यहाँ विचार किया जायेगा।

कल्पना किया कि हमें संसार के दो ऐसे व्यक्ति मिले हैं जो एक भाषी हैं,

(वे दोनों केवल एक भाषा ही जानते हैं) । तब ये दोनों एक एक उपबोली का प्रयोग करेंगे । यदि ये दोनों , दैनिक जीवन की एक दूसरे की बातें बिना कठिनाई के समझ लेते हैं तो हम यह कह सकते हैं कि ये दोनों उपबोलियाँ परस्पर बोधगम्य हैं । इसीप्रकार यदि वे दोनों एक दूसरे की बातें बिल्कुल नहीं समझ सकते तो उनकी बोलियाँ परस्पर बोधगम्य नहीं हैं । यदि वे दोनों थोड़ी देर तक सुनने के बाद, एक दूसरे की बातें, अंशतः समझ पाते हैं तो इस समस्या का हल दो प्रकार से किया जा सकता है ।

इनमें से एक प्रकार तो यह है कि प्रत्येक एक युग्म (जोड़ी) बोली के सम्बन्ध में, प्रश्नोत्तर करके यह निश्चित किया जाय कि बोधगम्यता के सम्बन्ध में उनकी स्थिति क्या है ? यह ढंग उतना कृत्रिम नहीं है जितना समझा जाता है ।

दूसरा प्रकार यह है कि हम बोधगम्यता की मात्रा का निर्धारण करें ।

७.११ पूर्ण अथवा शून्य बोधगम्यता--

यदि हम आरम्भ में, एक उपबोली चुन लें और उसके साथ ही अन्य उपबोलियों को भी रखें तो हम इस बात का पता लगा सकते हैं कि इनमें कौन सी उपबोलियाँ ऐसी हैं जिनकी प्रथम एवं एक दूसरे से बोधगम्यता है । इसप्रकार के अध्ययन के परिणामस्वरूप उपबोलियों के ऐसे समूह बन जायेंगे जिन्हें हम भा-सुबोध (--Simplex) की संज्ञा दे सकते हैं । नीचे के चित्र में इसे स्पष्ट किया गया है। इसमें प्रत्येक बिन्दु एक बोली का प्रतिनिधित्व करता है और इन्हें जोड़ने वाली रेखीयें पारस्परिक बोधगम्यता अथवा सुबोधता का द्योतन करती हैं । यह चित्र इसप्रकार है--
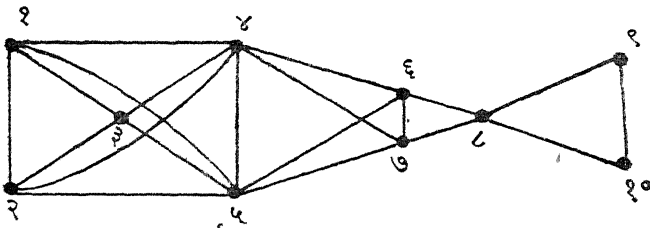
ऊपर के चित्र को देखने से उपबोलियों के निम्नलिखित पाँच समूह उपलब्ध होते हैं--

(क) १--२--३--४--५

*भा = भाषा

(ख) ४–५–६–७
(ग) ६–७–८
(घ) ८–९–१०
(ङ) ११

ऊपर के समूहों में १–२–३–४–५–६ मिलकर एक 'भा-सुबोध' का निर्माण नहीं करते, क्योंकि ६ एवं १, २, ३ पारस्परिक बोधगम्य नहीं हैं। इसीप्रकार केवल १–२–३–४ से भी एक 'भा-सुबोध' का निर्माण नहीं होता, क्योंकि ये चारों पारस्परिक ही बोधगम्य नहीं हैं अपितु ५ से भी इनकी बोधगम्यता है।

यदि दो उपबोलियाँ परस्पर बोधगम्य नहीं हैं तो इन दोनों के बीच एक ऐसी उपबोली मिल सकती है जो दोनों के बीच सम्बन्ध जोड़ने वाली कड़ी का काम कर सकती है। ऐसी कड़ी-उपबोली कम से कम ऐसे दो युग्मों का निर्माण कर सकती है जो परस्पर बोधगम्य हों। साधारणतया हम लघुतम कड़ी, खोज सकते हैं। ऊपर के चित्र के देखने से ज्ञात होता है कि १ एवं १० उपबोलियाँ परस्पर बोधगम्य नहीं हैं; किन्तु हम १, ५, ६, ८ तथा १० (अथवा ५ के बदले ४ या ६ के बदले ७) : १ और ५ कड़ियों को ले सकते हैं जो परस्पर बोधगम्य हैं। इसीप्रकार ५ और ६; ६ और ८; ८ और १० भी बोधगम्य है। यदि दो उपबोलियाँ या तो परस्पर बोधगम्य हैं या कम से कम एक कड़ी द्वारा जुड़ी हुई है तो वे परस्पर शृंखलाबद्ध हैं। कड़ी-बोली (शृंखला-बोली) द्वारा आबद्ध इसप्रकार की उपबोलियों के समूह को भा–दुर्बोध (L–Complex) की संज्ञा दी जा सकती है। 'भा–दुर्बोध' (L–Complex) के अन्तर्गत कोई भी उपबोली+वे अन्य सभी उपबोलियाँ आती हैं जो एक ओर तो प्रथम उपबोली से शृंखलाबद्ध होती हैं तथा दूसरी ओर परस्पर भी शृंखलाबद्ध रहती हैं। ऊपर के चित्र में ११ को छोड़कर अन्य सभी उपबोलियाँ 'भा–दुर्बोध' का निर्माण करती हैं।

अनेक स्थितियों में उपबोलियों का एक समूह जो परम्परा से भाषा कहलाता है और भाषा के रूप में जिसका नाम भी प्रख्यात होता है, 'भा–सुबोध' एवं 'भा-दुर्बोध,' दोनों होता है। अमेरिका के आदिम निवासियों की कई भाषाएँ ऐसी ही हैं। प्राचीनकाल में ये अल्पसंख्यक, किन्तु स्वतंत्र जातियों की भाषाएँ थीं।

अन्य उदाहरणों में परस्पर सम्बन्ध बहुत स्पष्ट नहीं है। यदि हिन्दी से हमारा पश्चिमी तथा पूर्वी-हिन्दी क्षेत्र की सभी उपबोलियों से तात्पर्य है तो यह (हिन्दी) भाषा 'भा-सुबोध' से बड़ी तथा 'भा-दुर्बोध' से छोटी है।

बिहारी (मैथिली, मगही और भोजपुरी) एवं बँगला की सभी उपबोलियाँ एक 'भा–दुर्बोध' के अन्तर्गत आयेंगी। ये सभी परस्पर बोधगम्य नहीं हैं किन्तु इनके सीमावर्नी एक गाँव से दूसरे गाँव में जाते हुए बराबर श्रृंखला-उपबोलियाँ मिलती जायेंगी। इसीप्रकार फ्रेंच तथा इतालीय की सभी उपबोलियाँ साधारणरूप से एक ही 'भा-दुर्बोध' के अन्तर्गत आयेंगी। यहाँ पैरिस निवासियों के लिए सिसली की बोली दुर्बोध है, किन्तु दोनों की सीमा पर श्रृंखला-उपबोलियाँ वर्तमान हैं।

चीनी भाषा की समस्या तो और भी जटिल है। इसकी सभी उपबोलियाँ एक 'भा-दुर्बोध' का निर्माण करती हैं। इसके अन्तर्गत कम से कम पाँच प्रकार की उपबोलियाँ ऐसी हैं जो परस्पर सर्वथा अबोधगम्य हैं। इन्हीं में एक मंडारिन भी है जिसे लगभग तीस करोड़ व्यक्ति समझते हैं। अन्य उपबोलियों को शेष लोग बोलते हैं।

इस सम्बन्ध में एक विचार, बोली-आकुंचन (Dialect Flexion) का भी है। यदि समूह में उपबोलियों की संख्या "स" है तब उपबोलियों युग्मों (युग्म=य) की संख्या इसप्रकार होगी—

$$य = \frac{स (स-१)}{२}$$

अब कल्पना किया कि समस्त समूह में परस्पर बोधगम्य उपबोलियों की संख्या "ब" है तब इन बोलियों के आकुंचन (आकुंचन=आ) का इंडेक्स इस प्रकार होगा —

$$आ = \frac{य-ब}{य}$$

यदि उपबोलियों के अधिकांश युग्म परस्पर बोधगम्य हैं, तब आकुंचन अनुच्च होगा, किन्तु यदि अधिकांश अबोधगम्य हैं तो आकुंचन उच्च होगा। हिन्दी का इंडेक्स बहुत अनुच्च होगा किन्तु इसकी अपेक्षा बँगला और उड़िया का उच्च होगा। इसीप्रकार अँग्रेजी का इंडेक्स भी पर्याप्त अनुच्च होगा, किन्तु जर्मन का उच्च होगा। चीनी का इंडेक्स तो बहुत ही उच्च होगा।

यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि ऊपर उपबोलियों की भौगोलिक स्थिति पर विचार नहीं किया गया है। मनुष्य कितनी सरलता से एक दूसरे की बातें समझ लेता है और उसके परस्पर बात करने के ढंग में कितनी समानता है, ये दोनों, वस्तुतः भाषण के परिणाम है और इसका थोड़ा बहुत सम्बन्ध उस स्थान से भी है जहाँ वे

रहते हैं। इसप्रकार उपबोलियों एवं बोलियों का सम्बन्ध भूगोल से भी है। किन्तु यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि भूगोल केवल एक सहायक उपादान है। यदि हिन्दी एवं बँगला की शृंखला-बोली बोलनेवाले सभी लोगों को अफ्रीका के किसी टापू में भेज दिया जाय तो इस स्थानान्तरकरण का भाषीय प्रभाव कुछ भी न होगा; वहाँ भी लोग भा–दुर्बोध' के रूप में एकमात्र हिन्दी एवं बँगला की शृंखला बोली ही बोलेंगे। किन्तु समय की प्रगति के साथ-साथ इस परिस्थिति में अन्तर आ सकता है। कल्पना किया कि उस टापू में फ्रेंच लोग पहले से ही बसे हुए हैं तो धीरे-धीरे वहाँ गये हुए लोग भी फ्रेंच सीखने लगेंगे और इसप्रकार वहाँ दो 'भा-दुर्बोध' का प्रादुर्भाव हो जायेगा। यहाँ हमें लोगों के उपबोली सम्बन्धी भेद-भाव एवं उनके भौगोलिक वितरण के अन्तर को स्पष्टतया समझ लेना चाहिए। सच तो यह है कि भौगोलिक वितरण भाषा में परिवर्तन लाने वाला एक आकस्मिक कारण है।

७.१२ परस्पर बोधगम्यता की मात्रा एवं उसके प्रकार

पश्चिमी अफ्रीका में ऐसे भाग हैं जहाँ बोली–आकुंचन काफी ऊँचा है, यद्यपि सभी उपबोलियाँ एक 'भा–दुर्बोध' की मानी जाती हैं।

यहाँ के कतिपय क्षेत्रों में पारस्परिक बोधगम्यता की विभिन्न मात्राओं के अस्तित्व को स्पष्टरूप से स्वीकार किया जाता है। यहाँ 'क' ग्राम के निवासी निकट के 'ख' ग्राम की बोली को 'दो दिन' की और यहाँ से कुछ दूर 'ग' ग्राम की बोली को 'एक सप्ताह' की बोली कहते हैं। इस कथन का यह तात्पर्य है कि प्रथम दशा में भाषा के व्यावहारिक ज्ञान के लिए केवल दो दिन और दूसरी दशा के लिए केवल एक सप्ताह पर्याप्त है।

'क' और 'ख' गाँव के लोग किस प्रकार समन्वय कर लेते हैं इसका ठीक-ठीक रूप ज्ञात नहीं है। हो सकता है कि यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति अपने ढंग से ही बोलता हो और अन्य लोगों के बोलने के विभिन्न ढंगों को वह समझ लेता हो। अथवा यह भी हो सकता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने बोलने के अभ्यास को भी परिवर्तित कर लेता हो।

अन्य कतिपय अवस्थाओं में हमें समन्वय की विधि ज्ञात है। डेन्मार्क के निवासी जो नार्वे की भाषा से अनभिज्ञ हैं और नार्वे के निवासी जो डेन्मार्क की भाषा नहीं जानते, परस्पर सम्पर्क स्थापित करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। शिक्षित लोगों की बात दूसरी है। इन्हें एक दूसरे से वार्तालाप करने में कठिनाई नहीं होती; प्रत्येक अपनी भाषा बोलता है और अनुभव से दूसरे की भाषा

समझ लेता है। इसे हम अर्द्ध-द्वैभाषिकता (Semi-bilingualism) की संज्ञा दे सकते हैं। यहाँ श्रोता द्वै-भाषिक तथा वक्ता एक-भाषिक होता है। इसीप्रकार मंडारिनक्षेत्र के सभी चीनी पिपिंग की भाषा तो समझ लेते हैं (क्योंकि पिपिंग एक महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक एवं राजनीतिक केन्द्र बन गया है) किन्तु पिपिंग के निवासी मंडारिन के अन्य प्रकारों (भेदों) को, उस क्षेत्र में बिना रहे हुए नहीं समझ सकते।

ऊपर के तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि पारस्परिक बोधगम्यता केवल मात्रा की ही वस्तु नहीं है अपितु वह सदैव पारस्परिक भी नहीं है।

इधर हाल में इस सम्बन्ध में जो अध्ययन हुए हैं उसमें अध्येताओं ने इस समस्या को हल करने एवं दो बोलियों के बीच पारस्परिक बोधगम्यता को प्राप्त करने का प्रयत्न किया है। इसके लिए अध्येता, सर्वप्रथम, दोनों बोलियों का पृथक-पृथक रिकार्ड तैयार करता है। तत्पश्चात वह इस रिकार्ड के आधार पर दोनों बोलियों के 'कन्टेन्ट' (अंगीभूत तत्त्वों) की अलग-अलग सूची तैयार करता है। इसके बाद दोनों बोलियों के बोलने वालों के सामने ये रिकर्ड रखे जाते हैं और कन्टेन्ट की सूची के आधार पर दोनों की पारस्परिक बोधगम्यता का प्रतिशत निकाला जाता है। इधर इस प्रणाली से अमेरिका के आदिवासियों की कई बोलियों की परस्पर बोधगम्यता का प्रतिशत प्राप्त किया गया है।

७.१३ समान साँचा तथा व्यापक साँचा

(१) **संकेत रव**—पिछले पृष्ठों में उपबोलियों के अन्तर के सम्बन्ध में विचार करते समय परस्पर बोधगम्यता के परीक्षण की चर्चा की जा चुकी है। यह परीक्षण वस्तुतः बाह्य वस्तु है। जब हम इसके नियमों को दो बोलियों के अध्ययन में लगाते हैं तो उस समय न तो हमें इन बोलियों के ढाँचे की जानकारी की आवश्यकता होती है और न उसके सम्बन्ध में कुछ कहने की ही ज़रूरत होती है। किन्तु उपबोलियों के सम्बन्ध में हमें गहराई से विचार करने की ज़रूरत है और इस बात की जानकारी प्राप्त करने की आवश्यकता है कि वस्तुतः दो बोलियों की पारस्परिक बोधगम्यता की मात्रा एवं इन दोनों के ढाँचे की समानता में क्या सम्बन्ध है ? जैसी कि आशा की जाती है, जब दो उपबोलियों में घनिष्ठ समानता होगी तो उनमें पारस्परिक बोधगम्यता भी होगी। किन्तु इससे यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि यदि उनमें थोड़ी भी असमानता होगी तो बोधगम्यता का अभाव हो जायेगा। दो विभिन्न संकेतों (कोडों=codes) के होते हुए भी लोग परस्पर दो उपबोलियों को समझ लेते हैं। इसके कारणों पर विचार करने से हमें कतिपय ऐसी

महत्वपूर्ण युक्तियाँ ज्ञात होंगी जिनकी सहायता से हम उपबोलियों को भी उसी प्रकार वर्गीकृत कर सकेंगे जिस प्रकार हम भाषाओं का वर्गीकरण करते हैं।

इसके प्रथम कारण की खोज के लिए हमें पुनः रव (Noise) के संबन्ध में विचार करना होगा। जिन लोगों की उपबोलियाँ प्रायः समान होती हैं, वे बाह्य रव की अत्यधिक मात्रा में होने पर भी एक दूसरे की बातें समझ जाते हैं। यह बाह्य रव, वाक्-संकेत श्रोता के कानों से बराबर टकराता रहता है। इसप्रकार का सरणि-रव (Channel Noise) कभी-कभी संपर्क को असंभव अथवा कठिन बना देता है किन्तु ऐसा बहुत कम ही होता है। इसका परिणाम यह होता है कि जब वक्ता कुछ बोलता है तो उसके वाक्-संकेत में इतने अधिक तत्त्व रहते हैं कि उनसे कम तत्वों को ही प्राप्त करके श्रोता वक्ता के संदेश को भलीभाँति-समझ लेता है। सरणि-रव सूचना के कुछ तत्वों को अवश्य नष्ट कर देता है, किन्तु जब तक उसमें पर्याप्त तत्त्व रहते हैं तब तक संपर्क में किसीप्रकार की बाधा नहीं उपस्थित हो सकती।

(२) सरणि रव

जब दो व्यक्ति वाक् द्वारा परस्पर सम्पर्क स्थापित करते हैं तो यह भी एक प्रकार का रव—संकेतरव—है। इस संकेतरव के बावजूद भी लोग एक दूसरे की बातें क्यों समझ लेते हैं इसका भी कारण वही है जो सरणिरव का है। जब सूचना रूप में किसी व्यक्ति के मुख से कोई वाक्-संकेत निसृत होता है तो उसमें वे तत्व अधिक मात्रा में होते हैं जिन्हें सुनकर उसे समझा जा सकता है। इनमें से कुछ तत्व श्रोता विशेष के लिए अनावश्यक भी हो सकते हैं। इसका कारण यह है कि वक्ता की वाक्-वृत्ति (speech habit) श्रोता से किंचित भिन्न भी हो सकती है, किन्तु यदि दोनों की वाक्-वृत्तियों में पूर्ण समानता है तो श्रोता उसे समझ लेगा।

दोनों प्रकार के रवों (noises) का प्रभाव संचार (communication) पर एक ही होता है। यदि उपबोलियों के किसी युग्म विशेष में संकेतरव का सर्वथा अभाव है (अर्थात् दोनों प्रकार की वाक्वृत्तियाँ समान हैं) तो 'सरणिरव' की अधिक मात्रा होने पर भी संचार सर्वथा सम्भव है। यदि अन्य उपबोलियों के युग्म में संकेतरव अधिक मात्रा में है किन्तु सरणिरव न्यून मात्रा में है तो भी संचार सम्भव है। अपने दैनिक जीवन में हम बराबर इसका अनुभव करते हैं। जब हम किसी बँगला अथवा तमिळ भाषा-भाषी से आमने-सामने बातें करते हैं तो उसकी टूटी फूटी हिन्दी समझने में हमें कठिनाई नहीं होती,

किन्तु उशी से जब हम टेलीफोन पर बातें करते हैं तो उन्हें समझना कठिन हो जाता है।

७.१४ उभयनिष्ठ-आन्तरिक साँचा

यदि किसी भाषा-भाषी समूह के लोग नियमतः वाक् द्वारा अपने विचार व्यक्त करते हैं तो उनकी उपबोलियों में प्रथम उपादान यह होगा कि उनमें उभयनिष्ठ विशिष्टताएँ उपलब्ध होंगी। इन उभयनिष्ठ विशिष्टताओं को हम इन बोलियों के उभयनिष्ठ आन्तरिक साँचा (common core) के नाम से अभिहित करेंगे।

यदि हम सरणिरव को पृथक कर दें तो कोई भी उपबोली अन्य उपबोलियों के बोलनेवाले के लिये तब तक बोधगम्य रहेगी जब तक वह उभयनिष्ठ आन्तरिक साँचे के अन्तर्गत रहेगी।
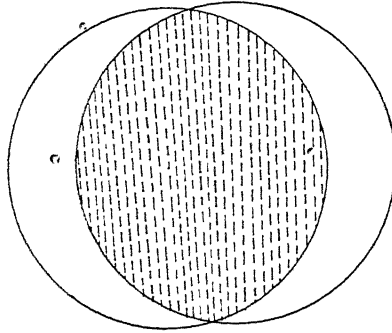
(दो उपबोलियाँ समान साँचे के सहित; प्रत्येक-वृत उपबोलियों का प्रतिनिधित्व करता है और रेखायुक्त भाग उभयनिष्ठ आन्तरिक साँचे का है)

ऊपर के चित्र में यह स्पष्टरूप से प्रदर्शित किया गया है कि दो उपबोलियाँ उभयनिष्ठ आन्तरिक साँचे में हैं। सिद्धान्तरूप में तीन उपबोलियाँ पारस्परिक बोधगम्य हो सकती हैं किन्तु वे उभयनिष्ठ साँचे के अन्तर्गत नहीं हो सकतीं। इसे नीचे के चित्र में दिखलाया गया है।
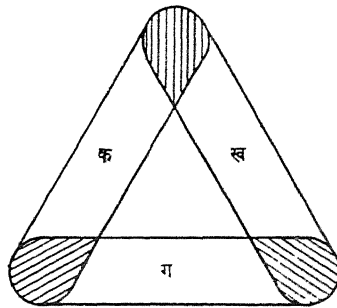
इनमें 'क' और 'ख' उभयनिष्ठ आन्तरिक साँचे के अन्तर्गत हैं। यही स्थिति 'क' और 'ग' तथा 'ख' और 'ग' की भी है। किन्तु जब हम क, ख और ग को एक साथ लेते हैं तो ये उभयनिष्ठ आन्तरिक साँचे के अन्तर्गत नहीं आते। यदि 'क' उपबोली में वाक् की उत्पत्ति होती है तो उसे 'ख' और 'ग' उपबोलियों के लोग समझ सकते हैं किन्तु इसका आधार सम्पूर्ण संकेत के विभिन्न भाग होंगे। किन्तु व्यावहारिकरूप में यह स्थिति न आयेगी।

ऐसी भी स्थिति हो सकती है जिसमें सैकड़ों, हजारों अथवा लाखों विभिन्न उपबोलियों में कुछ न कुछ उभयनिष्ठ आन्तरिक साँचा मिल जाय। इस आधार पर हम केवल पूर्ण समान तत्व वाली उपबोलियों का ही अध्ययन नहीं कर सकते हैं, किन्तु किंचित समान तत्व वाली उपबोलियों का भी अध्ययन प्रस्तुत कर सकते हैं।

७.१५ अर्द्ध द्वैभाषिकता

उपभाषाओं के ढाँचे के भेद के समक्ष पारस्परिक बोधगम्यता का एक दूसरा महत्वपूर्ण कारण भी है। कोई भाषक अपनी भाषा को अपने संकेतों की सीमा में ही अवरुद्ध रख सकता है, किन्तु उसे इस रूप में प्रशिक्षित किया जा सकता है कि बिना कुछ कहे वह दूसरी भाषा समझ ले। आगे के चित्र में यही दिखाया गया है। भीतरी वृत्त प्रत्येक भाषक की उत्पादक उपबोली की सीमा प्रदर्शित करता है और बाहरी वृत्त उसके अवबोधन की उस सीमा को द्योतित करता है जिसके लिये वह प्रशिक्षित किया गया है। संकेतख के निर्माण के बिना ही 'क' की भाषा 'ख' की उत्पादक बोली से बाहर की हो सकती है। यह 'ख' के लिये

संकेतरव केवल तभी होगी जब यह बड़े वृत्त के बाहर होगी। यही स्थिति अर्द्ध द्वैभाषिकता की होगी।
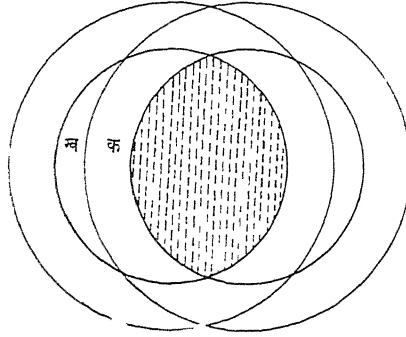
(समान साँचा सहित दो उपबोलियों के उत्पादक एवं संग्रहणशील नियंत्रण प्रदर्शित करता हुआ चित्र)

इस चित्र में बायें का वृत्त 'क' की बोली का प्रतिनिधि है। छोटावृत्त उसके उत्पादक नियंत्रण तथा बड़ा वृत्त संग्रहणशील नियंत्रण का क्षेत्र प्रदर्शित करता है। इसीप्रकार दायें का वृत्त 'ख' की बोली का प्रतिनिधित्व करता है। रेखायुक्त क्षेत्र उनका समान (उत्पादक) ढाँचा है। यदि 'क' कुछ कहता है तो 'ख' क्षेत्र में जाता है। 'ख' इसे समझ तो लेता है किन्तु वह स्वयं इसे कहने में असमर्थ है। जब यह 'र' क्षेत्र में जाता है तो यह 'ख' के लिए संकेत-रव हो जाता है।

७.१६ व्यापक साँचा

सभी चित्रों की व्याख्या हमें क्षणिक रूप में करनी चाहिए क्योंकि मनुष्य के उत्पादक एवं संग्रहणशील नियंत्रण का क्षेत्र अत्यधिक अस्थिर है और उसमें निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। मनुष्य सदैव भाषा सीखता रहता है। उसके भाषा सीखने की क्रिया कभी बन्द नहीं होती। आज जो कुछ किसी व्यक्ति के संग्रहण-शील नियंत्रण क्षेत्र के बाहर है, कल वही उसके भीतर हो सकता है। आज जो कुछ उसके उत्पादक उपबोली के बाहर है, वह कल उसके भीतर हो सकता है। इसी अर्थ, इसी सन्दर्भ में, उपबोलियों के किसी समूह के लिये व्यापक साँचे की बात की जा सकती है। दो बोलियाँ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में एक दूसरे के सम्पक में होती हैं और इनका आन्तरिक साँचा भी समान होता है। चाहे उत्पादन रूप से हो या संग्रहणशील रूप से, व्यापक साँचे के गोदाम के अन्तर्गत

किसी भी उपबोली के सभी तत्व आ जाते हैं। ऊपर के चित्र में तीन उपबोलियों को समान साँचे एवं व्यापक सांचे में प्रदर्शित किया गया है। इससे व्यापक साँचे का रूप बहुत कुछ स्पष्ट हो जायेगा।

शिक्षित लोग व्यापक साँचे में ऐसे रूप ला सकते हैं जो किसी भी बोली में उपलब्ध नहीं है। साहित्य अथवा लिखितरूप में अनेक ऐसे शब्द प्रयुक्त होते हैं जो लोगों के दैनिक व्यवहार में कभी नहीं आते। किन्तु कुछ लोग, यदि चाहें तो, अपनी उपबोली में ऐसे शब्दों का प्रयोग कर सकते हैं। आज की हिन्दी के "जिजिविषा", 'प्रभविष्णु', 'ऋत' आदि शब्द ऐसे ही हैं।

७.१७ विनियोग

जिसप्रकार पारस्परिक बोधगम्यता के द्वारा बिभिन्न भाषाओं की हम सूक्ष्म सीमा निर्धारित कर सकते हैं उसीप्रकार हम उभयनिष्ठ साँचे एवं व्यापक साँचे के द्वारा भी यही कार्य सम्पन्न कर सकते हैं। फिर भी इन दोनों के रूप में हमें एक ऐसी पद्धति का ज्ञान होता है जिसके द्वारा हम भाषा समूह की भांति ही उपबोलियों के समूह का भी वर्गीकरण कर सकते हैं। इसके अति-रिक्त इनमें एक और विशिष्टता यह है कि कभी-कभी उपबोलियों के सम्बन्ध में जो वर्णनात्मक वक्तव्य अन्तर्विरोधी प्रतीत होते हैं, वे इनकी सहायता से वैध सिद्ध हो जाते हैं।

विनियोग के रूप में हम पहला कार्य यह कर सकते हैं कि किसी एक बोली को पृथक रूप में ले सकते हैं और इसके साथ उन अन्य उपबोलियों को वर्गीकृत कर सकते हैं जो इसके समान साँचे वाली हैं। इस प्रक्रिया में हमें इन सभी उप-बोलियों की पारस्परिक एवं प्रथम बोली से तुलना करनी पड़ेगी तथा समान साँचे वाली उपबोलियों को एक वर्ग में रखकर अन्य उपबोलियों को पृथक करना होगा।

बोलियों का इसप्रकार वर्गबन्धन कर लेने के पश्चात् हम अध्ययन एवं वर्णन के विभिन्न मार्ग अपना सकते हैं। इनमें एक मार्ग तो यह हो सकता है कि किसी एक उपबोली अथवा बोली का अध्ययन किया जाय। यह अध्ययन अन्य उपबोलियों के सन्दर्भ में नहीं होना चाहिए। कतिपय भाषाशास्त्रियों का यह मत है कि केवल इसप्रकार का अध्ययन ही उपयुक्त है क्योंकि ध्वनिग्रामिक अध्ययन वस्तुतः किसी उपबोली अथवा बोली का ही सम्भव है। किन्तु यह आग्रह वास्तव में विश्वास-प्रद नहीं है, क्योंकि अध्ययन का दूसरा मार्ग यह भी है कि उपबोलियों के कुल समूह का अध्ययन समान साँचे के सन्दर्भ में किया जाय। एक तीसरा मार्ग, समूह की सम्पूर्ण उपबोलियों का व्यापक साँचा निर्धारित करना है। यह कार्य विभिन्न

उपबोलियों के नमूने के आधार पर एक साथ ही कार्य करके सम्पन्न किया जा सकता है। इस तीसरी प्रणाली से अध्ययन करते समय यदि एक ही स्वर को दो विभिन्न उपबोलियों के लोग दो भिन्न-भिन्न ढंगों से उच्चरित करते हैं तो उन्हें दो पृथक ध्वनिग्राम (स्वनग्राम) मानना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त यदि कोई भाषक एक ही उपबोली में एक स्वर को कुछ शब्दों में एकप्रकार से तथा दूसरे शब्दों में दूसरे प्रकार से उच्चरित करता है और वितरण में उनमें व्यतिरेक भी है तो उन्हें दो भिन्न स्वर मानना होगा।

व्यापक साँचे के अन्तर्गत इस तीसरे प्रकार के अध्ययन से यह लाभ है कि इससे उपबोलियों अथवा बोलियों के साँचों का अन्तर स्पष्ट हो जाता है।

हम व्यावहारिकरूप में किसीभाषा की बोलियों एवं विभिन्न भाषाओं का अध्ययन व्यापक साँचे में कर सकते हैं। नीचे हम स्वरों का एक व्यापक साँचा प्रस्तुत कर रहे हैं, तत्पश्चात हम इस बात की विवेचना करेंगे कि इनमें से कौन स्वर विभिन्न बोलियों में उपलब्ध हैं:—

स्वर का व्यापक साँचा

(१) ई (i) (६) ई(ɨ) (११) ऊ (u)
(२) इ (I) (७) अ॒ (ɑ:) (१२) उ (ʊ)
(३) ए (e) (८) अ (ə) (१३) ओ (o)
(४) ए॒ (ɛ) (९) अ (ʌ) (१४) ओ॒ (ɔ)
(५) ऐ (ae) (१०) आ a (१५) औ (ɔ (१६) आ॒ (a)

साधु हिन्दी तथा हिन्दी-प्रदेश की कतिपय बोलियों में ऊपर के व्यापक साँचे के निनलिखित स्वर उपलब्ध हैं—।

(१) साधु हिन्दी—१, २, ३, ५, ८, १०, ११, १२, १३, १५।
(२) ब्रज—१, २, ३, ५, ८, १०, ११, १२, १३, १५।
(३) बाँगरू—१, २, ३, ५, ६, ८, १०, ११, १२, १३, १५।
(४) अवधी—१, २, ३, ४, ८, १०, ११, १२, १३, १५।
(५) भोजपुरी—१, २, ३, ४, ९, १०, ११, १२, १३, १५।

उपर्युक्त समस्त बोलियों में कुछ स्वर समानरूप से प्रयुक्त हुए हैं। यही स्वरों का समान साँचा (common core) कहलाता है। इसे उपर्युक्त बोलियों में प्रयुक्त स्वरों के सन्दर्भ में इसप्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं—

१, २, ३, १०, ११, १२, १३, १५।

यथा—

ई	(i)	ऊ	(u)
इ	(I)	उ	(u)
ए	(e)	ओ	(o)
आ	(a)	औ	(ɔ)

हम अध्ययन की सुविधा के लिये इस समान साँचे को 'य्' नाम से अभिहित कर सकते हैं। इस सन्दर्भ में अब हमें यह विचार करना है कि ऊपर की भाषाओं के अतिरिक्त और कौन से स्वर प्रयुक्त हुए हैं। इन्हें हम इसप्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं—

साधु हिन्दी—य्+५, ८
ब्रज—य्+५, ८
बाँगरू—य्+५, ६, ८,
अवधी—य्+४, ८,
भोजपुरी—य्+४, ९

समान साँचे और व्यापक साँचे के तुलनात्मक अध्ययन से यह बात सहज ही में स्पष्ट हो जाती है कि साधुहिन्दी एवं ब्रज में जितनी अधिक बोधगम्यता है उतनी साधुहिन्दी और बाँगरू में नहीं है। इसके अतिरिक्त यह बोधगम्यता बाँगरू, ब्रज, अवधी एवं भोजपुरी में क्रमशः कम होती गयी है। साधुहिन्दी और अवधी में बोधगम्यता की मात्रा जितनी कम है, उससे और अधिक कम मात्रा साधुहिन्दी और भोजपुरी में है। व्यापक साँचे और समान साँचे के अध्ययन से यही लाभ है।

८

पुनर्निर्माण शास्त्र

८.१० पुनर्निर्माण शास्त्र

जब हम किसी भाषा में, उपलब्ध लिखित सामग्री की खोज प्रारम्भ करते हैं तो हमें पता चलता है कि यद्यपि बोलचाल के रूप में उस भाषा का बहुत पहले से उपयोग हो रहा है किन्तु उसकी लिखित सामग्री बहुत बाद की है। उदाहरण के लिये हम ब्रजभाषा को ले सकते हैं। इसमें सूर के पूर्व की ब्रजभाषा की तो हमें आज बहुत कम सामग्री प्राप्त है। इसीप्रकार पुरानी हिन्दी के रूप में यदि हम बारहवीं-तेरहवीं शताब्दि के नमूनों को लें तो उन पर अपभ्रंश की छाप मिलेगी। इसके पूर्व की भाषा के नमूने तो हमें विविध शिलालेखों, प्राकृत, पालि, पाणिनीय एवं वैदिक संस्कृत में मिलेंगे। यहाँ एक यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि क्या कोई ऐसा भी ढंग है जिससे हम वेद पूर्व भाषा का भी ज्ञान प्राप्त कर सकें? इसका उत्तर, हाँ, है। आज भाषाशास्त्र ने नवीन प्रणालियों के रूप में ऐसे साधन उपलब्ध कर दिये हैं जिनकी सहायता से हम वेद के पूर्व की भाषा का भी ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। यह तो हुई एक ऐसी भाषा की बात जिसकी मौखिक एवं लिखित परम्परा काफी पुरानी है। आज विश्व में ऐसी अनेक भाषाएँ हैं जिनमें दो-तीन सौ वर्षों से पुरानी लिखित सामग्री नहीं है। अफ्रीका की बान्टू एवं उत्तरी अमेरिका की अलगोक्डियन ऐसी ही भाषाएँ हैं। इनमें यूरोपीय लोगों के आगमन के पूर्व का कोई रेकर्ड नहीं है। इन भाषाओं के उद्गम का पता लगाने के लिये भी हम नवीन प्रणालियों का सहारा ले सकते हैं। ये प्रणालियाँ 'पुनर्निर्माण', 'बोली भूगोल', एवं 'भाषाकाल निर्धारण' की हैं। यदि सामूहिक रूप में हम इनका नामकरण करना चाहें तो इन्हें "भाषाशास्त्रीय प्राग् इतिहास" प्रणाली के नाम से अभिहित कर सकते हैं।

भाषा के इतिहास के सन्दर्भ में इस प्राग् इतिहास से उस युग से तात्पर्य है जिसकी कोई भाषीय लिखित सामग्री उपलब्ध नहीं है। ऊपर की प्रणालियों में से पहली प्रणाली पुरानी है। यह दूसरी बात है कि इसके सम्बन्ध में पुष्ट नियम

अभी हाल ही में बने हैं। दूसरी प्रणाली का उपयोग स्वतत्र रूप से नही किया जा सकता है। इसके द्वारा, कुछ सीमा तक, केवल परिणामों की जाँच ही सम्भव है। 'भाषाकाल निर्धारण' प्रणाली तो अभी नितान्त शैशवावस्था मे है किन्तु इसका भविष्य अति उज्जवल है।

इन प्रणालियों की विवेचना के पूर्व कतिपय ज्ञातव्य बातों का उल्लेख यहाँ आवश्यक है। बात यह है कि जिन भाषाओं अथवा बोलियों मे लिखित सामग्री का सर्वथा अभाव है उनके सम्बन्ध में, अप्रत्यक्ष रूप से, ऐतिहासिक सूचना प्राप्त करने का एकमात्र आधार ये प्रणालियाँ ही हैं। किन्तु जिनके सम्बन्ध में प्राचीन लिखित सामग्री उपलब्ध है, उनमें भी इनका भली भाँति प्रयोग किया जाता है। यहाँ यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि इन दूसरी प्रकार की भाषाओं मे इनके प्रयोग की आवश्यकता ही क्या है ? इसका एक उत्तर यह है कि इन प्रणालियों की सत्यता की प्रमाणिकता के लिए भी इन भाषाओ में इनका प्रयोग आवश्यक है। उदाहरणस्वरूप—जब हम तुलनात्मक सामग्री का उपयोग करते हुए रोमान्स भाषाओ का अध्ययन करते है और इसके परिणामस्वरूप उभयनिष्ठ पूर्वज भाषा का पुर्ननिमाण करके उसकी तुलना लैटिन मे उपलब्ध सामग्री से करते हैं, तो दोनों मे आश्चर्यजनक समता मिलती है। इसप्रकार के परिणामो से तुलनात्मक प्रणाली के द्वारा पुर्ननिमाण की प्रक्रिया को सहज मे ही प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाती है।

८.११ तुलनात्मक प्रणाली द्वारा पुर्ननिर्माण

तुलनात्मक प्रणाली [Comparative Method] द्वारा जब हम यह देखते हैं कि दो सम्बन्धित भाषाओं में एक ही ध्वनिप्रयुक्त होती है तो, जब तक अन्यथा सिद्ध न हो जाय, हम यह मान लेते हैं कि पूर्वज भाषा मे यह ध्वनि होगी। इसप्रकार के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा हम दो भाषाओ के बीच ऐसे ध्वनि-नियमों का पता लगाते हैं जिनके द्वारा उनके अन्तर्गत के स्वरों एवं व्यंजनों के परिवर्तन की गतिविधि का ज्ञान हो जाता है। इससे स्पष्ट करने के लिए संस्कृत, ग्रीक, लैटिन आदि से यहाँ तुलनात्मक सामग्री प्रस्तुत की जाती है।

"वह बैठता है" के लिए ग्रीक एवं संस्कृत में क्रमशः hēstai एवं āstē (आस्ते) क्रियारूप मिलते हैं। ग्रीक सन्ध्यक्षर 'ai' का संस्कृत में ē (ए) समरूप मिलता है। ग्रीक-सन्ध्यक्षर 'ai' का संस्कृत 'e' रूप, दोनों भाषाओं के कई शब्दों में मिलता है, यथा—hentai : āsatē 'वे बैठते हैं'; pher-ontai : bharante 'वे अपने लिए ले जाते हैं, आदि।

इसके आगे ग्रीक 'ai' तथा संस्कृत 'ē' दोनों का लैटिन समरूप 'æ

मिलता है; यथा, ग्रीक aitho 'मैं जलाता हूँ', लैटिन æstus 'गर्मी' : संस्कृत ēdhas 'जलाने की लकड़ी; लैटिन ædēs मन्दिर (सम्भवतः, पावक-स्थान); ग्रीक aion : लैटिन ævum जीवन-काल। दो मध्यग व्यंजनों के समरूप तो अनेक शब्दों में मिलते हैं, यथा— ग्री०— esti : सं० asti 'वह है'; ग्री० potnia : सं० patnī (पत्नी); ग्री० genos : सं० janas (जनस्)। ग्रीक 'ē' का समानरूप संस्कृत 'ā' है; यथा, ग्री० tithēsi : सं० (दधाति) dadhāti 'वह रखता है', ग्री० hēmi : सं० sāmi। ग्रीक का आदि 'h' उत्तमपुरुष, एकवचन एवं बहुवचन hēmai एवं hēmetha में उपलब्ध है। ये क्रमशः प्राचीनरूप *ēhmai तथा *ēhmetha एवं *ēsmai तथा *ēsmetha से विकसित हुए हैं। (मिलाओ ग्री० himeros, 'इच्छा' : सं० ismas (इष्मस्), कामदेव का एक नाम।

ऊपर के विवेचन में केवल यह स्पष्ट किया गया है कि ग्रीक hēstai तथा संस्कृत āste दोनों कैसे प्राग्भारोपीय से प्रसूत हुए हैं। अभी तक यहाँ पूर्वज भाषा के शब्द के रूप के निर्माण के लिये यत्न नहीं किया गया है। यह कार्य विद्वानों ने इस रूप में सम्पन्न किया है—ग्री० 'ai' : सं० 'ē' : प्राग्भारोपीय 'ai; ग्री० मध्यग व्यंजनगुच्छ—st = सं०—st—(—स्त—) = पूर्वज भाषा—st—(—स्त—); ग्री० 'ē' : सं० 'ā', प्राग्भारोपीय (पूर्वज) ē।

अब हम संस्कृत 'pitā' (पिता) शब्द को लेते हैं। आर्मनीय में इसके रूप hair, ग्रीक में patēr लैटिन में pater, प्राचीन आयरिश में athir, गॉथिक में fadar मिलते हैं। यहाँ संस्कृत तथा अन्य इरानीय भाषाओं में अन्तिम –r' [—र्] का अभाव है, क्योंकि संस्कृत में यह कतिपय शब्दों में ही वर्तमान है; यथा, सं० dadur (उन्होंने दिया) : लैटिन dedēre। ऊपर के उदाहरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि प्राग्-भारोपीय में भी, कतिपय अवस्थाओं में, अन्तिम 'r' (र्) का अभाव था।

जहाँ तक द्वितीय अक्षर की मात्रा का सम्बन्ध है, संस्कृत एवं ग्रीक में समानता है; यथा, ग्री० ē = सं० ā = प्रा० भारोपीय ē। आर्मनीय 'hair' से ऊपर के विचार की सम्पुष्टि होती है, क्योंकि वहाँ प्राग्-भारोपीय 'ē' के स्थान पर सर्वत्र 'i' मिलता है; यथा, आर्मनीय mair : सं० mātā (माता) ग्री० mātēr। लैटिन में 'r' के पूर्व दीर्घस्वर, नियमतः ह्रस्व हो जाता है; यथा, कर्तृवाच्य amo (मैं प्रेम करता हूँ) के अतिरिक्त कर्मवाच्य amor रूप। गॉथिक fadar में अन्तिम '—ēr' का रूप—ar मिलता है।

हम यह पहले देख चुके हैं कि प्राग्-भारोपीय 't' संस्कृत एवं ग्रीक, दोनों, में मिलता है। यह लैटिन में भी उपलब्ध है; यथा, लै० 'est' (वह है) ; सं० trayas : लै० trēs 'तीन'। आर्मनीय में स्वरमध्यग 't', 'y' में परिणत हो जाता है और कतिपय अवस्थाओं में इस 'y' का लोप भी हो जाता है; यथा, mair 'माता'। प्राचीन आयरिश में स्वर के बाद का 't', 'th' में परिणत हो जाता है; यथा, brathir : लैटिन frēter (भाई)। गॉथिक fadar में 'th' थ् [θ] के स्थान पर सदैव द् [δ] मिलता है; यथा, गॉ० thrija : लै० tria 'तीन'। यदि प्राग् भारोपीय में 't' के पूर्व का स्वर, स्वराघात रहित हो तो प्राग्-जर्मनीय में यह थ् 'th' [θ], द् 'd' [δ] में परिणत हो जाता है। इसीप्रकार प्राग्-जर्मनीय में अन्य अघोष ऊष्म वर्ण भी सघोष में परिणत हो जाते हैं। इससे यह तात्पर्य निकलता है कि प्राग्-भारोपीय में जिस अक्षर पर स्वराघात होता था उसी पर जर्मनीय में भी होता था।

अंग्रेजी 'father' के प्रथम अक्षर का 'a' ऊपर की अन्य सभी भाषाओं [ग्रीक, लैटिन, गॉथिक आदि] में वर्तमान है, केवल संस्कृत pita में यह 'i' रूप में उपलब्ध है। यही बात अन्य अनेक शब्दों में भी मिलती है; यथा, सं० sthitas : ग्री० statos : लै० status; सं० duhitā : ग्री० thugater; सं० kravis : ग्री० creas 'कच्चा मांस। किन्तु अनेक स्थानों पर अन्य भाषाओं की भांति ही संस्कृत में भी 'a' वर्तमान है; यथा, सं० ajāmi : ग्री० ago, लै० ago; सं० ajras; ग्री० agros, लै० ager, गॉ० akrs, 'खेत'; सं० apa : ग्री० apo, लै० ab, गॉ० af 'से'। अनेक विद्वान् प्राग्-भारोपीय में दो विभिन्न ध्वनिग्रामों की कल्पना करते हैं, एक 'a' जो प्रायः सभी भाषासमूहों में वर्तमान है, दूसरा 'ə' जो भारत-इरानी वर्ग में तो 'i' हो जाता है किन्तु अन्य वर्गों में यह 'a' रूप में ही मिलता है। 'पिता' अंग्रेजी father के प्राग्-भारोपीय रूप के पुनर्निर्माण में 'ə' का ही प्रयोग होता है।

संस्कृत pitā [पिता] का आदि 'p' ग्रीक एवं लैटिन में भी प्राप्त है। प्राग्-भारोपीय में भी यह इसी रूप में मिलता है, किन्तु आर्मनीय में यह 'h' में परिणत हो जाता है; यथा, आर्म० hing : सं० panca, ग्री० pente 'पाँच'; आर्म० heru : सं० parut, ग्री० perusi, 'गत वर्ष'। अन्य केल्टिक भाषाओं की भाँति ही प्राचीन आयरलैण्ड की भाषा से 'p' का लोप हो गया है; यथा, प्रा० आय० orc : लै० porcus, अं० pig, 'सूअर'; प्रा० आय० ro : सं० pra, ग्री० pro। प्राग्भारोपीय 'p' गॉथिक एवं अन्य जर्मनीय

भाषाओं में 'f' में परिणत हो जाता है; यथा, सं० panca : ग्री० pente, गॉ० fimf 'पाँच'; लै० piscis 'मछली', गॉ० fisks ।

ऊपर pitṛ, 'father' में (संस्कृत, ग्रीक एवं गॉथिक,) स्वराघात की प्रक्रिया हम देख चुके हैं। संस्कृत तथा ग्रीक में स्वराघात अन्तिम अक्षर पर है। गॉथिक के द्वितीय अक्षर में 'th" (θ) का "d" (δ) में परिवर्तन इस धारणा को और भी पुष्ट कर देता है। इसप्रकार 'पिता' का प्राग्भारोपीय में पुनर्निमित रूप pətér होगा।

ऊपर कतिपय ध्वनिग्रामों के पुनर्निर्माण के सम्बन्ध में तथ्य दिये गये हैं। नीचे संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, एवं गॉथिक के संख्यावाची शब्द देकर उनके आधार पर प्राग् ऐतिहासिक शब्दों का पुनर्निमाण किया गया है।

संस्कृत	ग्रीक	लैटिन	गॉथिक	भारोपीय
duā dvā	dyo dodeca	duo	twa	*duō, dwō
tryas	treis	trēs	threis	*treyes
catvāras	tettares	quattuor	fidwor	*Kwetwōres
panca	pente	quinque	fimf	*penkwe
ṣaṭ	hex	sex	saihs	*seks
sapta	hepta	septem	sibun	*septm
aṣṭau	octó	octō	ahtau	*oktōu
nava	ennea	novem	niun	*newn
daśa	deca	decem	taihun	*dekm

ऊपर के तथ्यों को ध्यानपूर्वक देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि पुनर्निर्माण में अनेक ध्वनि सम्बन्धी नियम काम कर रहे हैं। यहाँ कतिपय नियम दिये जाते हैं:—

भा० का 'oi' ग्रीक में इसीरूप में रहता है किन्तु लै० में यह 'u' तथा गॉ० में 'ai' में परिणत हो जाता है। भा० के 'ă', 'ĕ' एवं ŏ सं० में ă में परिणत हो जाते हैं। इसीप्रकार भा० के 'āu', 'ōu' तथा 'ōu' सं० में 'au' में परिवर्तित हो जाते हैं। भा० के (सघोष) 'm̥' तथा 'n̥' सं० एवं ग्री० में 'a' लै० में em', 'en' तथा गा० में 'um', 'un' में परिणत हो जाते हैं। भा० के 'e' के पूर्व का 'kw' सं० में c (च) तथा ग्री० में 't' हो जाता है। भा० का अग्र 'क' सं० में प्रायः 'श' में परिणत हो जाता है। भा० के द्वितीय अक्षर के 'qu' के पूर्व का आदि 'p' लै० में 'qu' हो जाता है। भा० के 'w' का

ऐटिक ग्री० में लोप हो जाता है। भा० का 'p', 't', 'k' गॉ० में 'f', 'th', 'h' हो जाता है, किन्तु स्वराघातरहित स्वर के बाद यह 'b', 'd', 'g' में परिणत हो जाता है।

डा० टर्नर ने नेपाली शब्दों की व्युत्पत्ति देते समय पुनर्निर्माण की प्रकिया का भी प्रयोग किया है। यहाँ केवल दो नेपाली शब्दों की व्युत्पत्ति दी जाती है—
* भुरो—हिं० भूरा, रंग विशेष, यथा, यह कपड़ा भूरे रंग का है; क० बरा, मगरा शक्कर, भुरो, सफेद; बं०, उ० भुरा, भूरे रंग की चीनी, मगरा शक्कर; पं० लं० भूरा, रंग विशेष; सिं० भुरो; गु० भूरूँ; म० भुरा, भुर्का, गंदा सफेद < * bhrūra (भा० * bhrowe-ro)

घर्—हिं० घर [पा०, प्रा०, घरं < भा०*gwhoro—अग्नि, गर्मी, अग्नि-स्थान] रो० खेर, खर; क०, गर; प० प० घरो; भ० घर् कु०, अ० बँ० घर्; उ० घर; बि०, हिं०, पं०, लं० घर्; सिं०, घरु; गु०, म०, घर्; सिंघ० गर।

अमेरिका के मूल निवासी किसी समय दो सौ से अधिक भाषाओं का उपयोग करते थे। इनमें से अनेक भाषाओं के एक भी बोलने वाले आज मौजूद नहीं हैं। इन भाषाओं में लिखित सामग्री भी यूरोप के लोगों के आगमन के पूर्व से ही उपलब्ध नहीं है। जो भी सामग्री जहाँ भी उपलब्ध है, उसे आज अमेरिका के भाषाशास्त्री व्यवस्थित रूप देकर उसका विवरणात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं। इसके साथ ही वे इस बात की भी खोज कर रहे हैं कि ये भाषायें किन कतिपय मूल भाषाओं से उद्भूत हुई हैं। यह कार्य पुनर्निर्माण के द्वारा सम्पन्न हो रहा है। केलिफोर्निया

---

* अ०—असमिया; उ०—उड़िया;
क०—कश्मीरी; कु०—कुमाउनी
गु०—गुजराती; प० प०—पश्चिमी पहाड़ी
पं०—पंजाबी; बँ०—बँगला
बि०—बिहारी; भ०—भद्रवाही (पश्चिमी पहाड़ी की एक बोली)
भा०—भारोपीय; म०—मराठी
रो०—रोमनी (जिप्सी); लँ—लँहदा
सिं—सिन्धी; सिंघ—सिंघली
हिं—हिन्दी

विश्वविद्यालय की डॉ० मेरी हास पुर्ननिमाण का यह कार्य बहुत सफलता के साथ कर रही हैं। आप इन भाषाओं की विशेषज्ञा हैं और पुर्ननिर्माण सम्बन्धी आपके अनेक लेख अमेरिका के प्रतिष्ठित भाषाशास्त्र की पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं।

९

बोली भूगोल

९.१० किसी भी भाषा में क्षेत्रीय विभिन्नतायें सदैव से ही रही हैं। साहित्य के अन्तर्गत भी इन विभिन्नताओं को अनेक साहित्यकारों ने अपने साहित्य में स्थान दिया है। यों साहित्य की भाषा साहित्यिक भाषा होती है, साधु भाषा होती है; किन्तु कभी-कभी यथार्थ का दिग्दर्शन कराने के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि लोक-संस्कृति की भी अभिव्यक्ति की जाय। यह एक मान्य तथ्य है कि किसी भी लोक-संस्कृति की वास्तविकता को व्यक्त करने के लिये सबसे सशक्त माध्यम लोकवाणी है।

भारतीय संस्कृत नाटकों में पात्रानुसार विभिन्न लोक बोलियों को प्रयुक्त करने की परम्परा मिलती है। यहाँ उच्चवंश के व्यक्ति यदि संस्कृति में बातें करते हैं तो स्त्रियाँ एवं शूद्र प्राकृतों में भाषण करते हैं।

आधुनिक युग में भी उपन्यासों और कहानियों में विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित आख्यानों का वर्णन करते समय, क्षेत्रीय प्रभाव उत्पन्न करने के लिए क्षेत्रीय या आंचलिक बोलियों का प्रयोग किया जाता है।

किन्तु साहित्य के अन्तर्गत प्रयुक्त क्षेत्रीय बोलियाँ शास्त्रीय अर्थ में शुद्ध, प्रामाणिक एवं वैज्ञानिक नहीं होती हैं। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि भाषाशास्त्रीय दृष्टि से इनका वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाय। इसके लिये सर्वप्रथम भाषा सम्बन्धी एक प्रश्नावली बनाकर विभिन्न क्षेत्रों से सामग्री एकत्र की जाती है तथा इस कार्य के लिए कई सौ शब्द तथा वाक्यांश चुन लिये जाते हैं और स्थान के अनुसार उनके अन्तर्गत ध्वनि एवं व्याकरण सम्बन्धी जो अन्तर होते हैं, उनका अध्ययन किया जाता है। उदाहरणार्थ नीचे के चित्र में एक शब्द के उच्चार में क्षेत्रगत विभिन्नतायें प्रदर्शित की गयी हैं—

चित्र में, विभिन्नतायें, सम्वाक् रेखाओं द्वारा प्रदर्शित की गयी हैं। सौ मील की दूरी पर बसे दो नगरों या कस्बों की बोलियाँ परस्पर एक दूसरे से विभिन्न लक्षणों में भिन्नता रखती है। अगर कोई व्यक्ति समस्त लक्षणों की विभिन्नताओं

को ज्ञात करना चाहता है तो इन समस्त लक्षणों की विभिन्नता को कोई एक बोलीगत रेखा निर्दिष्ट नहीं कर सकती है। इससे भिन्न, भाषीय लक्षणों के अन्तर की प्रत्येक रेखा की अपनी सीमा होती है। इसी सीमा को शास्त्रीय अर्थ में सम्वाक् रेखा [Isoglose] कहते हैं।

नोट—प्रस्तुत अध्याय का मानचित्र डॉ० अम्बा प्रसाद "सुमन" द्वारा प्रदत्त है।

१०

भाषाकाल निर्धारण

१०.१०—संसार में आज ऐसी अनेक भाषाएँ हैं जिनमें शिलालेख आदि एवं प्राचीन साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। इन सामग्रियों एवं अन्य आन्तरिक साक्ष्यों के आधार पर ही हम, मोटे तौर पर, भाषाओं के उद्गमकाल का पता लगाते हैं। काल-निर्धारण के क्षेत्र में हम ज्यों-ज्यों पीछे की ओर जाते हैं, त्यों-त्यों हमें कठिनाई का सामना करना पड़ता है। उदाहरणस्वरूप वेदों की रचना कब हुई, अवेस्ता की भाषा से इसका पार्थक्य कब हुआ, वह कौन युग था जब भारत-हत्ती से भारोपीय एवं उसके बाद की वैदिक संस्कृत, ग्रीक, लैटिन आदि भाषाएँ विखंडित होकर अस्तित्व में आई थीं, इन तथ्यों को जानने के लिये आज हमारे पास बहुत सीमित साधन हैं। इधर हाल में भाषाशास्त्रियों ने 'भाषाकालनिर्धारण' की एक नई प्रणाली ढूँढ़ निकाली है। इसे ग्लॉटोक्रॉनालोजी, [Glottochronology] कहते हैं। आरम्भ में प्रायः सभी प्रणालियाँ अपूर्ण रहती हैं और धीरे- धीरे उनमें पूर्णता आती है।

यही हाल भाषाकालनिर्धारण-प्रणाली (Glottochronology) का भी है। आशा है कि भविष्य में अन्य प्रणालियों की भाँति यह भी पूर्ण प्रणाली बन जायेगी और इसके द्वारा हम दो सम्बन्धित भाषाओं के समय का निर्धारण कर सकेंगे।

१०.११ भाषाकाल निर्धारण प्रणाली का आधार

अब यहाँ इस बात पर विचार करना आवश्यक है कि इस प्रणाली का आधार क्या है ? जब हम संसार की विविध भाषाओं के शब्दकोषों पर विचार करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि उनमें अनेक शब्द तो वहाँ के वातावरण एवं संस्कृति के अनुसार विशेषरूप से प्रयुक्त होते हैं, किन्तु प्रत्येक भाषाभाषी जाति में कुछ ऐसी आधारभूत वस्तुएँ हैं जिनके लिए सभी भाषाओं में शब्द होते हैं। यह आधारभूत वस्तुएँ प्रत्येक भाषा के बोलने वालों के दैनिक जीवन का अपरिहार्य अंग होती हैं। इन वस्तुओं में, उदाहरणार्थ, पारिवारिक सम्बन्ध, दैनिक भोजन, आखेट, वस्त्र,

अस्त्र-शस्त्र आदि होते हैं। ऐसी उभयनिष्ठ आधारभूत वस्तुओं को द्योतित करने वाली शब्दावली को हम 'आधारभूत शब्दावली' मान सकते हैं। यहाँ आधारभूत शब्दावली को अर्थगत सन्दर्भ में ही ग्रहण करना चाहिए। विभिन्न भाषाओं में इनके रूप भिन्न-भिन्न होते हुए भी अर्थ प्रायः एक ही होते हैं।

ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता है, त्यों-त्यों इन शब्दों में से कतिपय शब्द लुप्त होते जाते हैं और उनके स्थान पर कभी-कभी नये शब्द और कभी-कभी उनके पर्यायवाची शब्द आ जाते हैं। इन शब्दों का स्थानान्तरण कितने वर्षों में किस प्रकार से होता है, इसे ठीक-ठीक बतलाना अत्यधिक कठिन है, क्योंकि इस स्थानान्तरण के अनेक कारण हैं। फिर भी यदि हम एक सहस्र वर्ष या अर्द्ध सहस्र वर्ष के स्थानान्तरण के प्रतिशत का अध्ययन करें तो स्थानान्तरण की गति बहुत कुछ स्थिर होगी।

कल्पना किया कि 'क' भाषा की आधारभूत शब्दावली इस रूप में स्थानान्तरित होती है कि एक सहस्र वर्ष के अन्त में उसकी 'स' प्रतिशत शब्दावली सुरक्षि त रह जाती है; तब दूसरे हजार वर्षों में इस सुरक्षित 'स' प्रतिशत की 'स' प्रतिश त शब्दावली ऐसी होगी जो सुरक्षित रहेगी। इसप्रकार से '२स^{२}' शब्दावली सुरक्षित रहेगी।

पुनः कल्पना किया कि कोई मूल भाषा समय की प्रगति से दो विभाषाओं में विखण्डित हो जाती हैं। तब एक सहस्र वर्ष के उपरान्त ये दोनों भाषाएँ मूलभाषा की आधारभूता शब्दावली की 'स' प्रतिशत शब्दों को सुरक्षित रखेंगी; किन्तु दोनों की सुरक्षित शब्दावलियाँ एक दूसरे से स्वतंत्र होंगी। हाँ, दोनों में समानरूप से व्यवहृत होने वाले शब्द पुनः 'स^{२}' होंगे।

अब कल्पना किया कि किसी भाषा की एक अवस्था की आधारभूता शब्दावली हमें ज्ञात है। पुनः उसी भाषा की दूसरी अवस्था की आधारभूता शब्दावली भी हमें ज्ञात है किन्तु इन दोनों अवस्थाओं के बीच का समय अज्ञात है तो प्रथम अवस्था की शब्दावली का जो प्रतिशति दूसरी अवस्था की शब्दावली में सुरक्षि त है उसके द्वारा हम दोनों अवस्थाओं के बीच के समय को निर्धारित कर सकते हैं।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है यह प्रणाली अभी आरम्भिक अवस्था में है औ र इसमें अनेक त्रुटियाँ हैं। इसमें पहली त्रुटि तो यही है कि, क्या भाषाओं में स्पष्टरूप से कोई आधारभूता शब्दावली है भी? और जब इसप्रकार की शब्दा-

व़ली को ही निश्चित करना कठिन है तो उसके परिवर्तन के आधार पर समय को निर्धारित करना कहाँ तक उचित है ? इस सम्बन्ध में यहाँ इतना ही कथन पर्याप्त है कि यह प्रणाली अभी कामचलाऊ है और भविष्य में इसके पूर्ण होने की आशा है ।

परिशिष्ट—१

हिन्दी के ध्वनिग्राम

ले० डॉ० कैलाश चन्द्र भाटिया, एम० ए०, पी-एच० डी०,

प्राध्यापक, हिन्दी-संस्कृत विभाग, मु० विश्वविद्यालय, अलीगढ़ ।

० हिन्दीप्रदेश

शब्दार्थ की दृष्टि से हिन्दी का अर्थ है 'हिंद का'। इस अर्थ में तो हिन्दी शब्द का प्रयोग भारत में बोली जानेवाली किसी आर्य अथवा अनार्य भाषा के लिये हो सकता है, किन्तु व्यवहार में हिन्दी उस बड़े भूमिभाग की भाषा मानी जाती है जिसकी सीमा पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर-पश्चिम में अंबाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल के पूर्वी छोर तक के पहाड़ी प्रदेश, पूरब में भागलपुर, दक्षिण-पूर्व में रायपुर तथा दक्षिण-पश्चिम में खंडवा तक पहुँचती है। इस भूमिभाग के निवासियों के साहित्य, पत्र-पत्रिका, शिक्षा-दीक्षा बोलचाल आदि की भाषा हिन्दी है। शिष्ट बोलचाल के अतिरिक्त स्कूली शिक्षा की भाषा एकमात्र खड़ी-बोली हिन्दी ही है। इस विशाल भू-भाग में से राजस्थानी भाषाओं, बिहारी क्षेत्र की भाषाओं एवं पहाड़ी भाषाओं को निकालकर हिन्दी भाषा की सीमाएँ रह जाती है—उत्तर में तराई, पश्चिम में पंजाब के अंबाला और हिसार के ज़िले तथा पूर्व में फैजाबाद, प्रतापगढ़ और इलाहाबाद के जिले, दक्षिण की सीमा में कोई परिवर्तन नहीं होता और यह रायपुर तथा खंडवा पर ही जाकर ठहरती है। इस सीमित क्षेत्र में भी पश्चिमीहिन्दी के देहली, आगरा, मथुरा, अलीगढ़, मुरादाबाद आदि की खड़ीबोली के उच्चारण ही परिनिष्ठित हिन्दी के उच्चारण स्वीकार किये जाते हैं। लेखक का यह सौभाग्य है कि वह जन्म तथा प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा की दृष्टि से मथुरा से संबंधित है और उच्चशिक्षा के लिए कई वर्ष आगरा भी रहा और आजकल अलीगढ़ में है। इस पश्चिमी क्षेत्र के उच्चारण के आधार पर ही इस लेख को प्रस्तुत किया जा रहा है।

१.० हिन्दी के ध्वनिग्राम (स्वनिम[1])

१.१ स्वर :

१.१.१ मूलस्वर :

ह्रस्व—अ (ə), इ (i), उ (u)

दीर्घ स्वर—आ (a:), ई (i:), ऊ (u:), ए (e:), ऐ (ɛ:), ओ (o:), औ (ɔ:)

विशेष —ऑ (ɔ:) विशेषरूप से अँग्रेजी के आगत शब्दों में प्रयुक्त ।

स्वरों का चार्ट :
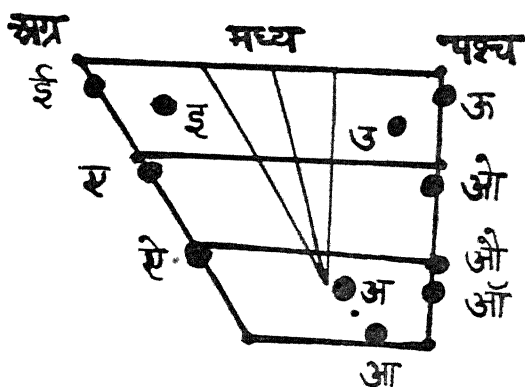
१.१.२ संध्यक्षर स्वर—ऐ (अइ-əi), औ (अउ-əu)

संध्यक्षर स्वरों का चार्ट :

---
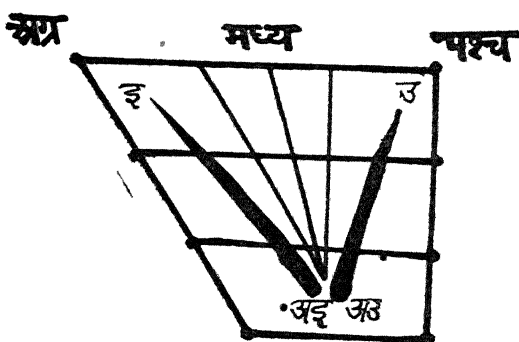
१. हिन्दी में ध्वनिग्राम अँग्रेजी पारिभाषिक शब्द 'फ़ोनीम' के अर्थ में व्यवहृत होता है; इस संबंध में अभी एकरूपता का अभाव है । अतएव सभी व्यवहृत शब्दों को नीचे दिया जा रहा है ।

१. २ स्वरों की ध्वनिग्रामीय व्यवस्था :

१. २. १ **मूलस्वर**

संख्या	ध्वनि-ग्राम	प्रधान सस्वन	स्वर का विवरण तथा वितरण	उदाहरण ध्वन्यात्मक	ध्वनिग्रामीय	अर्थ
१	।ई।	[ई]	अग्र संवृत दीर्घ स्वर आदि मध्य अन्त ईख् लील् लाली	[कील्]	।कील।	लोहे या काठ की मेख या खूटी
२	।इ।	[इ]	अग्र संवृत ह्रस्व स्वर, ई की अपेक्षाकृत निम्नस्थानीय है आदि मध्य अन्त इन किस पति[२]	[किल्] [किन्]	।किल्। ।किन्।	निश्चय किसका का बहुवचन
३	।ए।	[ए]	अग्र अर्द्ध संवृत दीर्घ स्वर आदि मध्य अन्त एक् बेल् ले	[केला]	।केला।	एक प्रकार का फल
४	।ऐ।	[ऐ]	अग्र अर्द्ध विवृत दीर्घ स्वर आदि मध्य अन्त ऐब् बैल् है	[कैलास्]	।कैलास।	हिमालय की एक चोटी

संख्या	ध्वनिग्राम	प्रधान संस्वन	स्वर का विवरण तथा वितरण	उदाहरण ध्वन्यात्मक	ध्वनिग्रामीय	अर्थ तथा विशेष
५	।अ।	[अ̍]	अर्द्ध विवृत मध्य ह्रस्व स्वर मध्य स्थिति अन्त्य[१] कल्	[कल्]	।कल।	आनेवाल या बीता हुआ दिन

अँग्रेजी शब्द	'फ़ोनीम'	'एलोफ़ोन'
बाबू श्यामसुन्दरदास	ध्वनिमात्र	भाषण ध्वनि
डॉ० धीरेन्द्र वर्मा	ध्वनिश्रेणी	ध्वनि
डॉ० बाबूराम सक्सेना	ध्वनिग्राम	ध्वनि
डॉ० उदय नारायण तिवारी	ध्वनिग्राम	सहस्वन
डॉ० विश्वनाथ प्रसाद	स्वनिम	संस्वन

२. प्रायः अन्त्य 'इ' का उच्चारण या तो दीर्घ हो जाता है या फुसफुसाहट मात्र होता है।

१. अन्त्य स्थिति में 'अ'- के उच्चारण के संबंध में पर्याप्त मत-वैभिन्य है : देखिए लेखक का 'हिन्दी-अक्षर'-राजर्षि अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ ५४७—५७३।

मैंने इस स्थिति के उच्चारण का विशेष अध्ययन कर निम्नलिखित तीन कोटियाँ मानी हैं :

अ—वे शब्द जिनके अन्त में सम- लम्ब, अन्त, अन्त्य 'अ' नहीं है काइमोग्राफ

संख्या	ध्वनि-ग्राम	प्रधान संस्वन	ध्वनिग्राम का विवरण तथा वितरण	उदाहरण ध्वन्यात्मक	उदाहरण ध्वनि-ग्रामीय	अर्थ
		[अ]	यह संस्वन ।अ। की अपेक्षा कुछ अधिक विवृतावस्था में उच्चरित होता है, प्रायः आदि स्थिति में, जैसे अब्	[अब्]	।अब।	इस समय
६	।आ।	[आ]	मध्य विवृत दीर्घ स्वर आदि मध्य अन्त आम् काम् खा	[काल्]	।काल।	समय
७	।ऑ।	[ऑ]	पश्च अर्द्ध विवृत दीर्घ स्वर आदि मध्य ऑल् बॉल् (खेल में आल आउट तथा फुटबाल)	[कॉल्]	।कॉल।	पुकार 'अंग्रेजी' आगत शब्द 'टेलीफोन में विशेष प्रयुक्त
८	।औ।	[औ]	पश्च अर्द्धविवृत-संवृत दीर्घ स्वर आदि मध्य अन्त औरत् कौर् नौ	[कौल्]	।कौल।	उत्तम कुल में उत्पन्न

स्थानीय दो व्यंजन ध्वनियों का गुच्छ हो — पर लेखक द्वारा चच्चरित 'अन्त' का रेखाचित्र संलग्न है ।

t n ʌ

आ—वे शब्द जिनके अन्त में भिन्न-स्थानीय व्यंजन ध्वनियों का गुच्छ हो — क्षुद्र — अन्त्य 'अ' उन उच्चारणों में सुनाई पड़ता है जहाँ बहुत सँभलकर बोला जाता है अन्यथा अ—का अस्तित्व नहीं है ।

इ—वे शब्द जिनके अन्त में अर्द्ध-स्वर के साथ व्यंजन-गुच्छ हो — कार्य — अन्त्य 'अ' कुछ न कुछ अवश्य सुनाई पड़ता है । हो सकता है अर्द्ध स्वर के कारण कुछ स्वरत्व सुनाई पड़ता हो ।

डॉ० विश्वनाथ प्रसाद, निदेशक, हिन्दी निदेशालय, अन्त्य स्थिति में स्वरत्व स्वीकार नहीं करते हैं। आप इस स्वरवत् ध्वनि को 'राग' की संज्ञा देते हैं।

संख्या	ध्वनि-ग्राम	प्रधान सस्वन	ध्वनिग्राम का विवरण तथा वितरण	उदाहरण ध्वन्यात्मक	उदाहरण ध्वनिग्रामीय	अर्थ
९	।ओ।	[ओ]	पश्च अर्द्ध संवृत दीर्घ स्वर आदि मध्य अन्त ओर् कोर् जो	[कोल्]	।कोल।	सूअर, अलीगढ़ की एक तहसील
१०	।उ।	[उ]	पश्च संवृत ह्रस्व स्वर आदि मध्य अन्त उस् बुन् पशु	[कुल्]	।कुल।	सब या कुटुम्ब
११	।ऊ।	[ऊ]	पश्च संवृत दीर्घ स्वर ।उ। की अपेक्षा उच्चतर है आदि मध्य अन्त ऊन् दूर् भू	[कूल्]	।कूल।	किनारा

१. २. २ संध्यक्षर स्वर :

संख्या	ध्वनि-ग्राम	प्रधान सस्वन	ध्वनिग्राम का विवरण तथा वितरण	उदाहरण ध्वन्यात्मक	उदाहरण ध्वनिग्रामीय	अर्थ
१.	।औ।	।अउ।	मध्य अर्द्धविवृत से पश्च अर्द्धविवृताभिमुखी संध्यक्षर स्वर अधिकांशतः अर्द्ध स्वरों से पूर्व उच्चरित या संस्कृत तत्सम शब्दों में उच्चरित, आदि मध्य अउपचारिक पउआ	[कउआ]	।कौआ।	एकपक्षी
२	।ऐ।	।अइ।	मध्य अर्द्ध विवृत से अग्र अर्द्धसंवृताभिमुखी संध्यक्षर स्वर अधिकांशतः संस्कृत तत्सम शब्दों तथा अर्द्धस्वरों से पूर्व उच्चरित, आदि मध्य अइयाश् मइआ	[गइआ]	।गैया।	गाय-एक एक पशु

१. २. ३ स्वर संबंधीटिप्प णियां

१. अ, इ, उ स्वरों के आ, ई, ऊ स्वर क्रमशः केवल दीर्घ रूप नहीं हैं, वरन् क्रमशः अ और आ में ,इ और ई में , उ और ऊ में उच्चारण-स्थान की दृष्टि से भी अन्तर है जिससे स्वरों के गुण पृथक् हो जाते हैं ।

२. प्रत्येक स्वर शब्द के प्रारम्भ, मध्य या अन्त में आ सकता है । केवल ह्रस्व स्वरान्त शब्दों में स्वर या तो लुप्त हो जाते हैं या दीर्घ रहते हैं ।

३. हिन्दी के लिखित रूप में 'ऋ' का प्रचलन होते हुए भी उसका बहुप्रचलित उच्चारण 'रि' होने के कारण इसे पृथक् ध्वनिग्राम स्वीकार नहीं किया गया है।

२.० अनुनासिकता

हिन्दी में अनुनासिकता का भी विशेष महत्त्व है। किसी भी स्वर को अनुनासिक तथा निरनुनासिक दोनों ही रूपों में व्यवहृत किया जा सकता है, जिससे अर्थ-भेद होता है अतएव हिन्दी में अनुनासिकता का ध्वनिग्रामीय (स्वनिमात्मक) महत्त्व है।

२. १ शुद्ध स्वर के भेद—

२.१.१ आदि स्थिति	।आधी।	½ हिस्सा
	।आँधी।	धूलमय तेज हवा
२.१.२ मध्य स्थिति	।भाग्।	हिस्सा, विभाजन
	।भाँग्।	मादक पदार्थ
	।बाट।	मार्ग, प्रतीक्षा करना
	।बाँट।	तोलने का पदार्थ
२.१.३ अन्त्य स्थिति	।भागो।	क्रिया विशेष
	।भागों।	भाग का बहुवचन

२. २ सभी स्वर सानुनासिक हो सकते हैं :

अ – अँ – हँसना
आ – आँ – आँसू
इ – इँ – बिँदिया
ई – ईं – आईं
उ – उँ – उँगली
ऊ – ऊँ – ऊँघ
ए – एँ – बातें – नोट इसका उच्चारण में 'ऐं' जैसा ही हो जाता है
ऐ – ऐं – भैंस
ओ – ओं – सोंठ – इसका उच्चारण भी औं 'जैसा होता है जैसे 'औंघ' में

३. स्वर संयोग

३.० हिन्दी में सभी स्वरों का विभिन्न स्थितियों में संयोग भी पाया जाता

है। हिन्दी की उपभाषाओं एवं बोलियों में स्वर संयोगों की संख्या अधिक है। स्वर-संयोगों के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं :

३.१ दो स्वरों के संयोग :

'अ' के साथ	अआ	अई	अऊ	अए	
	गआ	कई	गऊ	गए	
'आ' के साथ	आआ	आई	आऊ	आए	आओ
	पाआ	दाई	नाऊ	जाए	जाओ
'इ' के साथ	इआ			इए	इओ
	लिआ			दिए	विओग
उ ऊ के साथ	उआ	ऊई		उए	
	सुआ	रूई		चुए	
'ए' के साथ	एआ	एई		एए	
	खेआ	खेई		खेए	
'ओ' के साथ	ओआ	ओई		ओए	
	खोआ	कोई		खोए	

३.१.२ जिसको हम तालिका रूप में भी इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं—

द्वितीय स्वर

प्रथम स्वर	अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ
अ		+		+		+	+		
आ		+		+		+	+		+
इ		+					+		+
उ। ऊ		+		+			+		
ए		+		+			+		
ओ		+		+			+		

३. १. ३ संध्यक्षर स्वर के साथ संयोग

संध्यक्षर स्वरों के साथ भी संयोग की अवस्थाएँ मिलती हैं,

अइ – आ गइआ

अउ – आ हउआ

३. २ तीन स्वरों का संयोग

तीन स्वरों का भी संयोग पाया जाता है। जिन शब्दों में ये संयोग पाये जाते हैं उनमें 'य' और 'व' श्रुतियाँ भी आ जाती हैं—

इ से प्रारम्भ इ आ ऊ – पिआऊ

आ से प्रारम्भ आ इ ए – गाइए

अ से प्रारम्भ अ इ आ – भइआ

अ उ आ – कउआ

सामान्यतः 'अइ' तथा 'अउ' एक संध्यक्षर स्वर है पर बहुत मन्दगति के उच्चारण में इसप्रकार का संयोग भी सुना जा सकता है।

ओ से प्रारम्भ ओ इ ए – सोइए

तीन स्वरों के इन संयोगों को हम निम्नलिखित रूप से तालिका में प्रस्तुत कर सकते हैं—

प्रथम स्वर	द्वितीय स्वर		तृतीय स्वर	
		आ	ऊ	ए
इ	आ		+	
अ	इ	+		
	उ	+		
आ	इ			+
ओ	इ			+

४ व्यंजन—

			द्व्योष्ठ्य	दन्तोष्ठ्य	दन्त्य	वर्त्स्य	मूर्द्धन्य	तालु-वर्त्स्य	तालव्य	कंठ्य	अलिजिह्वीय	काकल्य
स्पर्श	अल्पप्राण	अघोष	प्		त्		ट्			क्	(क़्)	
		सघोष	ब्		द्		ड्			ग्		
	महाप्राण	अघोष	फ्		थ्		ठ्			ख्		
		सघोष	भ्		ध्		ढ्			घ्		
स्पर्श-संघर्षी	अल्पप्राण	अघोष						च्				
		सघोष						ज्				
	महाप्राण	अघोष						छ्				
		सघोष						झ्				
संघर्षी	अघोष			(फ़्)		स्	[ष्]	श्		(ख़्)		
	सघोष					(ज़्)				(ग़्)		ह्
अनुनासिक	सघोष		म्			न्	ण्	[ञ]		[ङ]		
पार्श्विक	सघोष					ल्						
लुंठित	सघोष					र्						
उत्क्षिप्त	सघोष अल्पप्राण						[ड़्]					
	सघोष महाप्राण						[ढ़]					
सप्रवाह अर्द्धस्वर	सघोष		[व़]	व्					य्			
संकेत	( )		ध्वनियाँ अरबी-फ़ारसी तथा अँग्रेजी आदि विदेशी आगत शब्दों के माध्यम से गृहीत ।									
	[ ]		कोष्टक में दी गई ध्वनियों का ध्वनिग्रामीय (स्वनिमात्मक) स्तर नहीं है ।									

५. व्यंजन-ध्वनियों का विवरण

संख्या	ध्वनिग्राम	प्रधान सस्वन	ध्वनिग्राम का विवरण तथा वितरण	उदाहरण ध्वन्यात्मक	उदाहरण ध्वनिग्रामीय	अर्थ
१.	।क्।	[क्]	अघोष अल्पप्राण कण्ठ्य स्पर्श आदि मध्य अन्त कम् बक्ना नाक्	[कल्]	।कल।	आनेवाला दिन या बीता दिन
२.	।त्।	[त्]	अघोष अल्पप्राण दन्त्य स्पर्श आदि मध्य अन्त ताप् कतार् बात्	[तल्]	।तल।	किसी चीज का सबसे नीचे का भाग
३.	।ट्।	[ट्]	अघोष अल्पप्राण मूर्द्धन्य स्पर्श आदि मध्य अन्त टाप् पीट्ना काट्	[टल्]	।टल।	'टलना' क्रिया का धातुरूप
४.	।प्।	[प्]	अघोष अल्पप्राण द्वयोष्ठ्य स्पर्श आदि मध्य अन्त पान् कपट् चाप्	[पल्]	।पल।	समय का सबसे छोटा हिस्सा
५.	।ग्।	[ग्]	सघोष अल्पप्राण कंठ्य स्पर्श आदि मध्य अन्त गप्प् पगा काग्	[गल्]	।गल।	कंठ्य तथा 'गलना' क्रिया का धातुरूप
६.	।द्।	[द्]	सघोष अल्पप्राण दन्त्य स्पर्श आदि मध्य अन्त दम् गन्दा शरद्	[दल्]	।दल।	झुण्ड तथा 'दलना' क्रिया का धातुरूप
७.	।ड्।	[ड्]	सघोष अल्पप्राण मूर्द्धन्य स्पर्श आदि मध्य[1] अन्त सर्वत्र केवल द्वित्व तथा नासिक्य के साथ डाल अड्डा अण्डा खण्ड	[डाल्]	।डाल।	पेड़ की शाखा

1. अँग्रेजी 'सोडा', 'रेडियो' आदि शब्दों के गृहीत कर लेने से हिन्दी 'ध्वनि-प्रक्रिया' पर प्रभाव पड़ा है ।

संख्या	ध्वनिग्राम	प्रधान संस्वन	ध्वनिग्राम का विवरण तथा वितरण	उदाहरण ध्वन्यात्मक	उदाहरण ध्वनिग्रामीय	अर्थ
		[ड़]	सघोष अल्पप्राण मूर्द्धन्य उत्क्षिप्त आदि मध्य अन्त नहीं उपर्युक्त स्थितियों आता को छोड़कर आता है --- बड़ा अड़	[पड़ा]	।पडा।	किसी स्थान पर रखा हुआ
८.	।ब्।	[ब्]	सघोष अल्पप्राण द्वयोष्ठ्य स्पर्श आदि मध्य अन्त बात् चाबी सब्	[बल्]	।बल।	ताकत
९.	।ख्।	[ख्]	अघोष महाप्राण कंठ्य स्पर्श आदि मध्य अन्त खाल नट्खट् चख्	[खल्]	।खल।	दुष्ट
१०.	।थ्।	[थ्]	अघोष महाप्राण दन्त्य स्पर्श आदि मध्य अन्त थाप् कथन् पथ्	[थल्]	।थल।	ज़मीन
११.	।ठ्।	[ठ्]	अघोष महाप्राण मूर्द्धन्य स्पर्श आदि मध्य अन्त ठाप् गठ्री ढीठ	[ठलुआ]	।ठलुआ।	बिना काम का
१२.	।फ्।	[फ्]	अघोष महाप्राण द्वयोष्ठ्य स्पर्श आदि मध्य अन्त फट्ना उफान् कफ्	[फल्]	।फल।	फूल के बाद आने वाला पदार्थ, नतीजा
१३.	।घ्।	[घ्]	सघोष महाप्राण कंठ्य स्पर्श आदि मध्य अन्त घाट् लघु० अघ्	[घल्]	।घल।	'घलना' क्रिया का धातु रूप
१४.	।ध्।	[ध्]	सघोष महाप्राण दन्त्य स्पर्श आदि मध्य अन्त धम्म बाँध्	[धर्]	।धर।	'धरना' क्रिया का धातूरूप

संख्या	ध्वनिग्राम	प्रधान संस्वन	ध्वनिग्राम का विवरण तथा वितरण	उदाहरण ध्वन्यात्मक	उदाहरण ध्वनिग्रामीय	अर्थ
१५.	।ढ्।	[ढ्]	सघोष महाप्राण मूर्द्धन्य स्पर्श आदि मध्य अन्त सर्वत्र द्वित्व, नासिक्य तथा समस्थलीय ध्वनि के साथ ढाल गड्ढा ठण्ढ	[ढाल्]	।ढ-ल।	एक ओर को झुका हुआ स्थान
		[ढ़्]	सघोष महाप्राण मूर्द्धन्य उत्क्षिप्त आदि मध्य अन्त नहीं आता उपर्युक्त स्थितियों को छोड़कर —— गढ़ा बाढ़	[बाढ़्]	।बाढ।	नदी में पानी बढ़ना
१६.	।भ्।	[भ्]	सघोष महाप्राण द्वयोष्ठ्य स्पर्श आदि मध्य अन्त भाग् उभार् आरम्भ्	[भला]	।भला।	अच्छा
१७.	।च्।	[च्]	अघोष अल्पप्राण-तालु वर्त्स्य स्पर्श-संघर्षी आदि मध्य अन्त चना अचल् नाच्	[चल्]	।चल।	"चलना" क्रिया का धातुरूप
१८.	।ज्।	[ज्]	सघोष अल्पप्राण तालु-वर्त्स्य स्पर्श-संघर्षी आदि मध्य अन्त जन् काजल् नाज्	[जल्]	।जल।	पानी
१९.	।छ्।	[छ्]	अघोष महाप्राण तालु-वर्त्स्य, स्पर्श-संघर्षी आदि मध्य अन्त छाल् बछिया रीछ्	[छल्]	।छल।	धोखा

संख्या	ध्वनि ग्राम	प्रधान संस्वन	ध्वनिग्राम का विवरण तथा वितरण	उदाहरण ध्वन्यात्मक	ध्वनिग्रामीय	अर्थ
२०.	।झ्।	[झ्]	सघोष महाप्राण तालु-वर्त्स्य स्पर्श-संघर्षी आदि मध्य अन्त झाल् रीझ्ना सूझ्	[झल्]	।झल।	गर्मी, झुलस
२१.	।स्।	[स्]	अघोष वर्त्स्य संघर्षी आदि मध्य अन्त साल् बस्ना ओस्	[सर्]	।सर।	तालाब
२२.	।श्।	[श्]	अघोष तालव्य संघर्षी आदि — मध्य वा अन्त पृथक् से तथा — चवर्ग तथा न, म, य म, य, र, ल, व — के गुच्छ के साथ व्यंजनों के साथ श्याम — पश्च्	[शर्]	।शर।	तीर
		[ष्]	अघोष मूर्द्धन्य संघर्षी आदि — मध्य वा अन्त 'शठ' को छोड़कर — टवर्गीय ध्वनियों मूर्द्धन्य ध्वनि — के साथ युक्त शब्दों में — मूर्द्धन्यीकरण षड्, षट्, षष्ठ — कष्ट्	[कष्ट्]	।कश्ट।	दुःख
२३.	।ह्।	[ह्]	सघोष काकल्य संघर्षी आदि मध्य अन्त हाल् कहना बारह्	[हल्]	।हल।	खेत का यंत्र
२४.	।म्।	[म्]	द्वयोष्ठ्य सघोष नासिक्य आदि मध्य अन्त माल् चमार् काम्	[मल्]	।मल।	गन्दा

संख्या	ध्वनि-ग्राम	प्रधान संस्वन	ध्वनिग्राम का विवरण तथा वितरण	उदाहरण ध्वन्यात्मक	उदाहरण ध्वनि-ग्रामीय	अर्थ
२५.	।ण्।	[ण्]	नासिक्य सघोष मूर्द्धन्य आदि मध्य तथा अन्त में नहीं स्वतंत्र रूप से तथा टवर्गीय ध्वनियों के साथ	[कण्]	।कण्।	छोटे से छोटा हिस्सा
२६.	।न्।	[ञ]	तालव्य सघोष नासिक्य मध्य स्थिति में तालव्य स्पर्श-संघर्षी[1] से पूर्व रञ्च	[कञ्ज]	।कंज।	कमल
		[ङ्]	कंठ्य सघोष नासिक्य व्यंजन मध्य स्थिति में, कंठ्य स्पर्श ध्वनियाँ[2] तथा 'म' के पूर्व कङ्गन्, वाङ्मय ।	[कङ्गन्]	।कंगन।	हाथ की चूड़ी
		[न्]	वर्त्स्य सघोष नासिक्य व्यंजन उपयुक्त स्थितियों को छोड़कर आदि मध्य अन्त नाल् छक्ना मान्	[नल्]	।नल।	पानी प्राप्त होने का साधन
२७.	।ल्।	[ल्]	सघोष पार्श्विक वर्त्स्य व्यंजन आदि मध्य अन्त लपक् आली काल्	[लाल्]	।लाल।	एक प्रकार का रंग
२८.	।र्।	[र्]	सघोष लुंठित वर्त्स्य व्यंजन आदि मध्य अन्त राम् हरा पर्	[रात्]	।रात।	दिन का विलोम

१. शुद्ध वर्त्स्य नासिक्य ध्वनि का प्रयोग भी बढ़ता जा रहा है, मैंने स्पष्ट 'चन्चल' सुना है।

२. इसके स्थान पर शुद्ध वर्त्स्य नासिक्य ध्वनि का प्रयोग भी बढ़ता जा रहा है, मैंने स्पष्ट 'चिन्गारी' शब्द सुना है।

संख्या	ध्वनि-ग्राम	प्रधान संस्वन	ध्वनिग्राम का विवरण तथा वितरण	उदाहरण ध्वन्यात्मक	उदाहरण ध्वनिग्रामीय	अर्थ
२९.	।व्।	[.व्]	द्वयोष्ठ्य सघोष सप्रवाह मध्य तथा अन्त में अन्य व्यंजनों के साथ गुच्छ रूप में क्वार्, स्व्	[क्वारा]	।क़्वारा।	अविवाहित
		[व्]	दन्तोष्ठ्य सघोष सप्रवाह अर्द्धस्वर उपर्युक्त स्थिति के अतिरिक्त सर्वत्र आदि मध्य अन्त वन् नवल् हवा	[वर्]	।वर।	दूल्हा
३०.	।य्।	[य्]	तालव्य सघोष अर्द्धस्वर आदि मध्य अन्त यम् नियम् चाय्	[यह्]	।यह।	निकटवर्ती सर्वनाम
३१.	।क़।	[क़्]	अलिजिह्वीय अघोष स्पर्श कंठ्य-स्पर्श से व्यतिरेक ।कदम्ब। एक वृक्ष	[क़दम्]	।क़दम।	दो पैरों के मध्य की दूरी
३२.	।फ़्।	[फ़्]	दन्तोष्ठ्य अघोष संघर्षी द्वयोष्ठ्य स्पर्श से व्यतिरेक कफ– श्लेष्मा (बलग़म) फ़िज़ूल दफ़्तर साफ़्	[कफ़्]	।कफ़।	आस्तीन के बटन
३३.	।ज़्।	[ज़्]	वर्त्स्य सघोष संघर्षी स्पर्श-संघर्षी सघोष से व्यतिरेक जमाना—किसी बात या चीज़ को स्थिर करना आदि मध्य अन्त ज़मीन् अज़ीज़् तमीज़्	[ज़माना]	।ज़माना।	समय

संख्या	ध्वनिग्राम	प्रधान संस्वन	ध्वनिग्राम का विवरण तथा वितरण	उदाहरण ध्वन्यात्मक	ध्वनिग्रामीय	अर्थ
३४.	।ग़्।	[ग़्]	कंठ्य सघोष संघर्षी स्पर्श से व्यतिरेक 'गम्'—पहुँच गमक्-सुगन्ध आदि मध्य ग़रीब् मुर्ग़ी	[ग़म्]	।ग़म।	दुःख
३५.	।ख़्।	[ख़्]	कंठ्य अघोष संघर्षी स्पर्श से व्यतिरेक-खत (क्षत) घाव आदि मध्य अन्त ख़राब् दाख़िल् सुर्ख़	[ख़त्]	।ख़त।	चिट्ठी

नोट—'म्', 'न्', 'र्', 'ल्', ध्वनिग्रामों के क्रमशः 'म्ह', न्ह', 'र्ह', 'ल्ह' महाप्राण भी हिन्दी में विकसित हो गये हैं जिनका ध्वनिग्रामीय महत्त्व है।

६. व्यंजन-गुच्छ

६. ० हिन्दी में आदि मध्य तथा अन्त्य स्थिति में पर्याप्त व्यंजन-गुच्छ मिलते हैं। यह ठीक है कि व्यंजन-गुच्छों की क्लिष्टता के कारण गुच्छोंका उच्चारण लोक में समाप्त होता जा रहा है, फिर भी परिनिष्ठित हिन्दी में इनके शुद्ध उच्चारण की ओर पर्याप्त ध्यान दिया जाता है, अन्यथा फिर 'प्रवाह' का गुच्छ टूटकर 'परवाह' बन जावेगा जो एक भिन्न शब्द है।

६.१ आदि स्थिति

आदि स्थिति में प्राप्त समस्त व्यंजनगुच्छ इसप्रकार लिये जा सकते हैं—

प्+र् =प्रेम
प्+ल् =प्लावन
प्+य् =प्यास
त्+व् =त्वचा
त्+य् =त्यारी
त्+र् =त्रास, त्रिभुज
ट्+व् =ट्वीड् —अँग्रेजी आगत शब्दों के माध्यम से
ट्+य् =ट्यूशन् —अँग्रेजी आगत शब्दों के माध्यम से

ट्+र् =ट्रेन् —अँग्रेजी आगत शब्दों के माध्यम से
क्+व् =क्वार
क्+श्।ष्। =क्षय (इसका उच्चारण व्यंजन गुच्छ के स्थान पर शुद्ध 'छ' जैसा होने लगा है।)
क्+य् =क्यारी
क्+ल् =क्लिष्ट
क्+र =क्रम
ब्+य =ब्याज
ब्+ल् =ब्लाउज —अँग्रेजी आगत शब्दों के माध्यम से
ब्+र् =ब्रज
द्+व् =द्वार
द्+य् =द्युति
द्+र् =द्रुम
ड्+य् =ड्योढ़ा
ड्+र् =ड्रामा —अँग्रेजी आगत शब्दों के माध्यम से
ग्+व् =ग्वाला
ग्+य् =ग्यारह
ग्+ल् =ग्लानि
ग्+र् =ग्राहक
म्+य् =म्यान्
म्+ल् =म्लान
म्+र् =म्रग । मृग का ही विकृत रूपहै ।
न्+य् =न्यारा
न्+ह् =न्हान ('न्ह'-।न। ध्वनिग्राम का महाप्राण रूप भी)
थ्+र् =थ्रू, थ्रो ।खेल में। अँग्रेजी आगत शब्दों के माध्यम से
ख्+य् =ख्याति
भ्+र् =भ्रम
ध्+व् =ध्वनि
ध्+य् =ध्यान
ध्+र् =ध्रुव
घ्+र् =घ्राण

फ्+य् =फ़्यूचर (अँग्रेजी)
फ़्+ल् =फ़्लैट (अँग्रेजी)
फ़्+र =फ्रांस, फ्रेम
व्+य् =व्याकुल
व्+र् =व्रत
श्+य् =श्यामल
श्+र् =श्री
च्+य् =च्युत
ज्+व् =ज्वार
ज्+य् =ज्या
ह्+र् =ह्रास
ख्+य् =ख्याल

स के गुच्छ सबसे अधिक हैं,

स्प	स्त	स्ट	स्क	स्म	स्न	स्फ	स्थ	स्ख	स्व	स्य	स्र
स्पष्ट	स्तम्भ	स्टेशन	स्कंध	स्मारक	स्नान	स्फार	स्थान	स्खलित	स्वच्छ	स्याम	स्राव

६.२ तीन व्यंजनों का गुच्छ : आदि स्थिति

आदि स्थिति में दो व्यंजनों के गुच्छ के अतिरिक्त तीन व्यंजनों के भी गुच्छ मिलते हैं; यथा स्त्री में स्+त्+र् तीन व्यंजनोंका गुच्छ है। वैसे इस शब्द का शुद्ध उच्चारण करना आसान नहीं; अधिकांशतः आदि स्थितिमें 'इ' स्वरका आगम हो जाता है, इस्त्री जिसका आक्षरिक विन्यास होता है—इस-त्री।

६.३ अन्त्य व्यंजन गुच्छ

प्रारम्भ से अधिक, अन्त में, व्यंजनगुच्छों का उच्चारण सुरक्षित है। अन्त्य व्यंजन गुच्छों में अधिकतर य्, र्, ल्, व् अन्तःस्थों से ही मिलकर गुच्छ तैयार होते हैं।

य-से अन्त होने वाले कुछ गुच्छ

श्+य् =अवश्य
द्+य् =वैद्य
क्+य् =वाक्य
क्ष्+य् =लक्ष्य
म्+य् =साम्य
भ्+य् =सभ्य

ण्+य् =पुण्य
ष्+य् =पुष्य
च्+य् =वाच्य
थ्+य् =स्वास्थ्य
व्+य् =काव्य
त्+य् =कृत्य
स्+य् =मत्स्य
ख्+य् =असंख्य
ह्+य् =सह्य
र्+य् =कार्य
ध्+य् =मध्य

ल-से अन्त होनेवाले गुच्छ

क्+ल् =शुक्ल
म्+ल् =अम्ल

र-युक्त गुच्छ

र-से प्रारम्भ होने वाले गुच्छ

र्+म् =मर्म
र्+व् =गर्व
र्+ग् =वर्ग
र्+ष् =शीर्ष
र्+ण् =कर्ण
र्+ख् =मूर्ख
र्+श् =आदर्श
र्+थ् =तीर्थ
र्+भ् =गर्भ

र-से अन्त होने वाले गुच्छ (वस्तुतः इसमें 'र' पूर्ण था)

क्+र् =वक्र
म्+र् =नम्र
स्+र् =सहस्र
प्+र् =विप्र
त्+र् =गोत्र

१- हिन्दी-व्यंजन गुच्छ

	प्	त्	ट्	क्	ब्	द्	ड्	ग्	म्	न्	ण्	ङ्	फ्	थ्	ठ्	ख्	भ्	ध्	ट्	घ्	फ़्	व्	स्	ज़्	श्	च्	ज्	ढ्	झ्	य्	ह्	ल्	र्	क़्	ख़्	ग़्
प्																													X		X	X			
त्																					X								X			X			
ट्																					E								E			E			
क्																					X			⊗					X		X	X			
ब्																													X		E	X			
द्																					X								X			X			
ड्																													X			E			
ग्																					X								X		X	X			
म्																													X		X	X			
न्																													X	X					
ण्																																			
ङ्																																			
फ्																																			
थ्																																E			
ठ्																																			
ख्																													X						
भ्																																X			
ध्																					X								X			X			
ट्																																			
घ्																																X			
फ़्																													E		E	E			
व्																													X			X			
स्	X	X	E	X					X	X			X	X		X						X								X		E	X			
ज़्																																			
श्																													X			X			
च्																													X						
ज्																					X								X						
ढ्																																			
झ्																																			
य्																																			
ह्																													X			X			
ल्																																			
र्																													X						
क़्																																			
ख़्																					※								※						
ग़्																																			

संकेत

X	व्यंजन गुच्छ
※	अरबी- फ़ारसी के व्यंजन गुच्छ

⊗	[श] में मूर्धन्यता आजाती है
E	अंग्रेजी के व्यंजन गुच्छ

	प्	त्	ट्	क्	ब्	द्	ड्	ग्	म्	न्	ण्	ङ्	फ्	थ्	ठ्	ख्	भ्	ध्	ढ्	घ्	फ़्	व्	स्	ज़्	श्	च्	ज्	छ्	झ्	य्	ह्	ल्	र्	क़्	ख़्	ग़्
प्	×	×																					E							×			×			
त्		×							×	×				×							×	×	×							×			×			
ट्			×												×															×						
क्		×	E	×					×							×						×	E		⊗					×		×	×			
ब्		※				×												×						※			×						※			
द्						×			×									×												×			×			
ड्							×																							×						
ग्									×	×								×												×			×			
म्	×				×	※							×																	×		×	×			
न्		×				×			×	×				×				×					×		×	⊠	⊠	⊠	⊠	×	×					
ण्			×				×				×				×							×								×						
ङ				×				×								×				×																
फ्																																				
थ्																														×						
ठ्																														×						
ख्																														×						
भ्																														×						
ध्																						×								×			×			
ढ्																														×						
घ्										×																				×						
फ़		※	E																													※	※			
व																														×			×			
स				×					×	×												×								×		※	×			
ज़्																																	※			
श्	⊗	※	⊗	×					※	×	⊗				⊗							×				×				×						
च्																										×		×		×						
ज्																											×			×			×			
छ्																																				
झ्																																				
य्																																				
ह्									×	×												×								×						
ल्	×		E	×		×			×				×				×				※									×	×	×				
र्	×	×		×	×	×		×	×		×						×	×		×	※E	×	E	×	×	×				×		E				
क़		※																													※					
ख़		※																					×													
ग़																								×												

संकेत -

×	व्यंजन-गुच्छ
※	अरबी - फ़ारसी के व्यंजन-गुच्छ
⊗	[श] में मूर्धन्यता आजाती है
⊠	[न] का तालव्यीकृत रूप [ञ]
E	अँग्रेजी के व्यंजन-गुच्छ

स्+व् =ह्रस्व
क्+व् =परिपक्व
द्+व् =द्वन्द्व
त्+व् =घनत्व
श्+व् =अश्व

६.३.१.५ इसके अतिरिक्त ध–से अन्त होने वाले

ग्+ध् =दुग्ध
द्+ध् =शुद्ध

इसप्रकार अन्त्य व्यंजनगुच्छों की संख्या बहुत अधिक है जिसको हम पृथक् से चार्ट रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। इस चार्ट में अँग्रेजी, अरबी-फ़ारसी आदि शब्दों के माध्यम से आये हुए भी गुच्छ सम्मिलित कर लिये गये हैं जिनको पृथक् से निर्देशित किया गया है।

७. व्यंजनानुक्रम या व्यंजन-संयोग

७.० मध्य स्थिति में विशेष रूप से व्यंजनानुक्रम या दो व्यंजनों का संयोग रहता है। प्रायः व्यंजनगुच्छ की स्थिति नष्ट हो जाती है। व्यंजनगुच्छ में विशेषता यह होती है कि एक अक्षर के साथ उसका पूरा भाग रहता है, जब कि व्यंजनानुक्रम में दो व्यंजन लिखित रूप में साथ-साथ रहते हुए भी उसका एक व्यंजन प्रथम अक्षर के साथ चला जाता है और दूसरा व्यंजन दूसरे अक्षर के साथ आ जाता है। इसका स्पष्टीकरण 'हिन्दी के आक्षरिक विन्यास'[1] शीर्षक निबन्ध में विशेष रूप से किया गया है। कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे,

७.१ विशेषकर 'र्' के साथ :

र्+ग् =अर्गल=अर्+गल्
र्+च् =अर्चन=अर्+चन्
र्+ज् =अर्जन=अर्+जन्
र्+श् =दर्शन=दर्+शन्
र्+द् =हार्दिक=हार्+दिक्
र्+प् =दर्पण=दर्+पण्
र्+ष् =वर्षा=वर्+षा

७.२ कुछ अन्य संयोग भी लिये जा सकते हैं,

प्+ल् =विप्लव=विप्+लव्

---

१. देखिए लेखक का निबन्ध 'हिन्दी का आक्षरिक विन्यास' 'शिक्षा' वर्ष १९६१, अक्टूबर अंक।

६.३.१.४ व-से अन्त होने वाले गुच्छ

त्+प् =उत्पन्न=उत्+पन्न

म्+प् =सम्पन्न=सम्+पन्न

त्+क् =उत्कंठा=उत्+कं–ठा

त्+स् =उत्सव=उत्+सव्

प्+स् =अप्सरा=अप्+सरा

ल्+क् =वल्कल=वल्+कल्

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो गया होगा कि व्यंजनगुच्छ तथा व्यंजनानुक्रम एक नही है, बहुत से लोग इसमें भ्रमवश भेद नहीं करते और इन दोनों प्रवृत्तियों को एक ही शीर्षक के अन्तर्गत रख देते हैं।

८ द्वित्व :

८.० हिन्दी में, प्रायः द्वित्व का प्रयोग होता है, जैसे,

कुत्ता, गल्ला, अम्मा।

८.१ यदि दो स्वरों के मध्य एक से दो व्यंजन द्वित्वरूप मे प्रयुक्त हों तो उनमें से प्रथम व्यंजन प्रथम स्वर के साथ और दूसरा व्यंजन अन्तिम स्वर के साथ उच्चरित होता है; जैसे,

अम्मा–अ म् म् आ–अम्+मा=अम्... –मा

गल्ला–ग् अ ल् ल् आ–गल्+ला=गल्...–ला

इन उच्चारणों में ध्यान देने की बात यह है कि प्रथम 'म्' तथा 'ल्' का उच्चारण दीर्घ अर्थात् सामान्यतः उच्चारण अवधि से अधिक देर तक चलता रहता है। इस प्रवृत्ति का शुद्ध रूप अन्न में है। इसमें द्वित्व न मानकर 'न्' में दीर्घता मानना ही अधिक उचित होगा।

हिन्दी में व्यंजनों की दीर्घता तथा द्वित्व का भी ध्वनिग्रामीय (स्वनिमात्मक) महत्त्व है।

१. पता—रहने के स्थान का विवरण

पत्ता—पेड़ का पत्र

२. पका—कच्चा का विलोम

पक्का—मज़बूत

३. गला—गर्दन

गल्ला—अनाज को इकट्ठा करना

४. आसन—बैठने की विधि

आसन्न—समीपस्थ

५. पटा—लोहे की पट्टी, पीढ़ा, पटरा
पट्टा—कोई अधिकार पत्र, पाढ़ा

केवल दो ध्वनियों के समीप आ जाने मात्र से ही द्वित्व नहीं हो जाता है; उदाहरणार्थ,

'बनना' क्रिया विशेष—बनना = ब् अ न् न् आ = बन्—ना—बन् में शुद्ध 'न'
दूल्हा वाची शब्द—बन्ना = ब् अ न् न् आ = बन्—ना—बन् में दीर्घ 'न'
हिन्दी में द्वित्व की यह प्रवृत्ति अर्थभेद उत्पन्न करने के कारण ध्वनिग्रामीय है।

९. अक्षर-निर्माण

९.० हिन्दी के आक्षरिक स्वरूप के सम्बन्ध में संक्षेप में प्रकाश डाला जा रहा है। यहाँ पर हम केवल वे आक्षरिक नमूने प्रस्तुत कर रहे हैं जो सामान्यतः हिन्दी में विशेष प्रचलित हैं,

निर्देश— स्वर—स
व्यंजन—व
अनुनासिकता ँ
दीर्घता—ा

आक्षरिक साँचा		उदाहरण
सा	–	ओ, ए
साँ	–	एँ
स व	–	अड़्
साँ व	–	आँख्
स व व	–	अङ्ग
स व व व	–	इन्द्र
व स	–	न
व सा	–	खा
व साँ	–	हाँ
व स व	–	घर्
व स व व	–	सिक्ख्
व सँ व	–	हँस्
व सा व	–	साफ्
व स व व व	–	वस्त्र्
व सा वं व	–	शान्त्

व साँ स – साँप्
व व स व – स्वर्
व व स व व – प्रश्न्
व व सा व व व– स्वास्थ्य्
व व सा – क्या
व व सा व – प्यास्
व व सा व व – प्राप्त्
व व साँ – क्यों

१० संगम

हिन्दी में संगम का भी विशेष महत्त्व है।
'न+दी जाय' और
'नदी'

दोनों में एक समान ध्वनियों के होते हुए भी संगम की दृष्टि से भिन्न हैं। प्रथम उदाहरण में 'न' और 'दी' के मध्य संगम है जहाँ कुछ देर के लिए जिह्वा को विश्राम करना पड़ता है। यदि इन दोनों के मध्य न रुका जाय तो एक भिन्न शब्द 'नदी' बन जाता है।

१०.१ संगम के कुछ रोचक उदाहरण

१०.१ जब एक रूप में कोई क्रिया-पद हो :

१०.१.१ 'लो' या 'ली' के साथ :

हो+ली = क्रियारूप
'होली'+ = त्यौहार विशेष
रो+ली = क्रियारूप
रोली+ = एक लाल रंग का पदार्थ

१०.१.२ 'जा' क्रिया के साथ :

खा+जा = क्रिया
खाजा+ = खाने का एक नमकीन पदार्थ

१०.२ संबंधवाचक 'का', 'की', 'के', के साथ :

छल+की = छल से संबंधित
छलकी = छलकना क्रिया का भूतकालिक रूप
सिर+का = सिर से संबंधित
सिरका+ = एक पेय पदार्थ
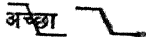
११. बलाघात, सुर एवं स्वर-लहर
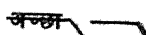
हिन्दी में शब्द-स्तर पर बलाघात तथा सुर और वाक्य-स्तर पर स्वर-लहर का उतना महत्त्व तो नहीं है जितना अँग्रेजी भाषा में बलाघात या चीनी भाषा में सुर का है। हिन्दी के शुद्ध उच्चारण में बलाघात तथा सुर का भी महत्त्व है वह चाहे स्वनिमात्मक न हो। इस संबंध में कभी विस्तृत विवेचन किया जायेगा। हिन्दी में सुर का विशेष महत्त्व है जिससे अनेक प्रकार के भाव व्यंजित होते हैं, उदाहरणार्थ यहाँ एक शब्द 'अच्छा' ले सकते हैं,

१. सामान्यत: किसी के वार्तालाप के मध्य कहते चलें यहाँ 'अच्छा' न स्वीकृतिवाचक है और न सुन्दरता का द्योतक है, केवल इसलिए है कि कहने वाला आगे बढ़े — अच्छा — अच्छा
२. स्वीकृतिवाचक — अच्छा — अच्छा
३. चुनौतीवाचक — अच्छा — अच्छा
४. बात के मध्य अच्छा कहकर चल दें जिसका अर्थ है, कि अभी-अभी आता हूँ — अच्छा — अच्छा
५. आश्चर्यमिश्रित — अच्छा — अच्छा
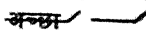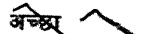
११.२ वाक्य में स्वर-लहर

वाक्य-स्तर पर स्वर-लहर का विशेष महत्त्व है, एक ही वाक्य को विभिन्न यह स्वर-लहर के साथ बोलने से विभिन्न अर्थ प्रकट होते हैं,

सामान्य	वह स्कूल जाता है।
स्कूल पर बल :	वह स्कूल जाता है।
प्रश्नवाचक :	वह स्कूल जाता है ?
आश्चर्यमिश्रित :	वह स्कूल जाता है !

१२. इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत निबन्ध में यह स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है कि ध्वनिग्रामीय-स्तर पर न केवल स्वर तथा व्यंजनों का ही महत्त्व है परन्तु इससे इतर अनुनासिकता, स्वर-संयोग, व्यंजन-गुच्छ, व्यंजनानुक्रम, दीर्घता, द्वित्व, सुर तथा स्वर-लहर का भी महत्त्व है। यह निबन्ध वर्णनात्मक भाषाशास्त्र के सिद्धान्तों पर आधारित है जिसको मैंने अमेरिकन भाषाविद् प्रो० ग्लीसन तथा डेनिश भाषाशास्त्रिणी कु० योरगेन्सन की सहायता से तैयार किया था। हिन्दी ध्वनिग्रामों पर आज देश तथा विदेश में मेरे कई मित्र अनुसन्धान कार्य कर रहे हैं। आवश्यकतानुसार अधुनातम यन्त्रों का भी उपयोग किया जा रहा है। जब तक वे समस्त कार्य विधिवत् हमारे सामने नहीं आते हैं तब तक प्रस्तुत

निबन्ध का अपना महत्त्व है, जिसके विवेचन में मैंने समय-समय पर भारतीय भाषाविद् डा० बाबूराम सक्सेना, डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० मसूदहसन, डा० विश्वनाथ प्रसाद तथा डा० उदय नारायण तिवारी, प्रो० घल से विशेष सहायता ली है। लेखक उपर्युक्त सभी भाषाविदों के प्रति आभारी है।

११

खड़ीबोली

"खड़ीबोली एवं ब्रजभाषा के संक्रान्ति क्षेत्र की बोलियों का ध्वनिग्रामिक अध्ययन"[1]

लेखक—महावीर सरन जैन, एम० ए० डी० फिल्०, साहित्यरत्न

०. प्रस्तुतनिबन्ध का उद्देश्य खड़ीबोली एवं ब्रजभाषा के संक्रान्ति क्षेत्र की बोलियों का ध्वनिग्रामिक अध्ययन प्रस्तुत करना है। यह अध्ययन जिला बुलन्दशहर के उच्चारण के आधार पर प्रस्तुत किया जा रहा है। लेखक स्वयं इस क्षेत्र का भाषा-भाषी है।

०.१ भाषाशास्त्रीय दृष्टि से यह क्षेत्र खड़ीबोली क्षेत्र (ज़िला मेरठ) तथा ब्रज भाषाभाषी क्षेत्र (ज़िला अलीगढ़) के मध्य स्थित है और इसी कारण यह पश्चिमीहिन्दी की दो प्रमुख बोलियों का संक्रान्तिक्षेत्र (Transition-Area) है। संक्रान्तिक्षेत्र होने के कारण ही इस क्षेत्र में सम्वाक् रेखाओं का समूह (Bundle of Isoglosses) घटित होता है। इस सम्बन्ध में कुछ विद्वानों के कथन उद्धृत किये जा सकते हैं—

(१) डॉ ग्रियर्सन—

बुलन्दशहर और बदायूं जिलों की बोलियाँ तो सामान्यरूप से परिनिष्ठित ब्रजभाषा है, किन्तु दोनों ही क्षेत्रों में ये ऊपरी दोआब और पश्चिमी रुहेलखण्ड की हिन्दुस्तानी से अत्यधिक मिश्रित हो जाती हैं...........बुलन्दशहर की भाषाओं की, मूल सामान्यतालिका के अनुसार, ९३९,००० व्यक्ति पछारी के एवं २,००० ब्रजभाषा के भाषा-भाषी हैं। वहाँ के अधिकारी इस बात का दावा करते हैं कि यहाँ ९३९,००० भाषाभाषी ऐसी भाषा का प्रयोग करते हैं जो ब्रजभाषा से पृथक है....."।

---

१. प्रस्तुत निबन्ध "बुलन्दशहर और खुरजा तहसीलों का संकालिक अध्ययन" नामक मेरे शोध प्रबन्ध (थीसिस) के प्रथम अध्याय का ही संवर्धित रूप है।

[Linguistic Survey of India. Vol. IX Part I]

(२) डॉ० धीरेन्द्र वर्मा

"....बुलन्दशहर के उत्तरी भाग की खडीबोली क्षेत्र के अधिक निकट होने के कारण पड़ौस की इस बोली के रूपो से मिश्रित है ....."।

—ब्रजभाषा —पृ० – ३५

(३) डॉ० उदयनारायण तिवारी

"मथुरा अलीगढ तथा पश्चिमी आगरे की ब्रजभाषा आदर्श है। अलीगढ के उत्तर मे बुलन्दशहर है, जहाँ की भाषा मे खडीबोली का अत्यधिक सम्मिश्रण हो जाता है।"

हिन्दी भाषा का उद्‌गम और विकास : (द्वितीय सस्करण) पृ० २३८।

०२. ब्रजभाषा एव खडीबोली के सक्रान्तिक्षेत्र में कई बोलियाँ (Dialects) हैं। बोलियो का आधार किसी भाषा की क्षेत्रगत एवं वर्गगत भिन्नतायें होती हैं। ब्रजभाषा एव खडीबोली के सक्रान्तिक्षेत्र, बुलन्द-शहर ज़िले के विभिन्न क्षेत्रो का, मैंने भाषा-शास्त्रीय अध्ययन किया है। इन विभिन्न क्षेत्रो की बोलियो की ध्वनिग्रामिक प्रणाली (phonemic system) में कोई अन्तर नही है। बोलीगत विभिन्नताओ का कारण ध्वनि-ग्रामक्रमगठनात्मक प्रणाली (phonotactic system) तथा पदग्रामिक प्रणाली (Morphological system) है। यहाँ हमारा उद्देश्य प्रस्तुत क्षेत्र की केवल ध्वनिग्रामिक प्रणाली प्रस्तुत करना ही है; ध्वनिग्रामक्रम-गठनात्मक प्रणाली अर्थात् ध्वनिग्रामो के समायोजन की प्रणाली एवं पदग्रामिक एव वाक्यविन्यासीय प्रणाली का फिर कभी विवेचन प्रस्तुत किया जायेगा तथा तभी बोलीगत विभिन्नताओ की भी विवेचना की जायेगी।

०३ प्रस्तुत निबन्ध के अध्ययन की सीमा

प्रस्तुत निबन्ध में ध्वनिग्रामिक प्रणाली का अध्ययन करते समय, पदग्रामिक संरचना (Morphological construction) की सीमा तक के ही ध्वनिग्रामो (phonemes) का विवेचन प्रस्तुत किया जायेगा; वाक्य-धरातल (Syntactic lavel) के खंडेतर ध्वनिग्रामों (supra segmental phonemes) का विवेचन फिर कभी विस्तार के साथ किया जायेगा।

१.० अपने अध्ययन की सीमाओं के अनुसार इस क्षेत्र की ध्वनिग्रामिक प्रणाली मे २९ व्यजन, १० स्वर, १ अनुनासिकता (Nasalisation)

एवं १ विवृति (juncture) है। इसप्रकार कुल ४१ ध्वनिग्रामों का समूह प्राप्त है, जिनमें ३९ (स्वर एवं व्यंजन) खंड ध्वनिग्राम (segmental phonemes) एवं २ (अनुनासिकता एवं विवृति) खंडेतर ध्वनिग्राम (supra segmental phonemes) हैं

१.१ सर्वप्रथम हम खंड ध्वनिग्रामों का विवरण प्रस्तुत करेंगे:—

१० स्वरों में

४ अग्रस्वर (Frunt vowles),

५ पश्चस्वर (Back Vowels), तथा

१ केन्द्रीय स्वर (Central Vowel) हैं।

इसीप्रकार २९ व्यंजनों में

१६ स्पर्श (stops), ४ स्पर्श संघर्षी (Affricates), २ संघर्षी (Fricatives), ३ नासिक्य (Nasals), १ पार्श्विक (Lateral), १ लुंठित (Rolled), तथा २ अर्द्धस्वर (semivowels) हैं।

१.११ स्वर (Vowels)

स्वर ध्वनिग्रामों (Vowel phonems) के प्रधान सहस्वनों को, मानस्वर (Cardinal Vowels) के सन्दर्भ में लक्षित करते हुए, हम उन्हें इसप्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं—

१.१११
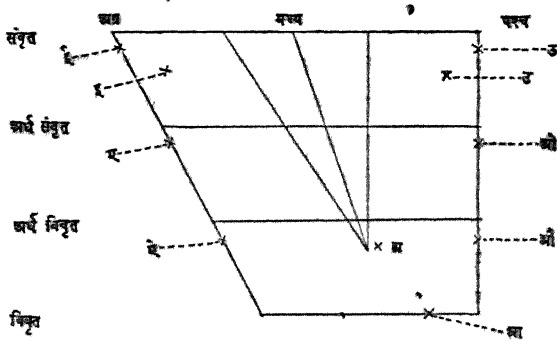
इन प्रधान सहस्वनों (primary Allophones) को रचना सम्बन्धी संगति (structural symmetry) की दृष्टि से इसप्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

	अग्र	मध्य	पश्च
उच्च स्थानीय	ई		ऊ
कम उच्च स्थानीय	इ		उ
मध्य स्थानीय	ए	अ	ओ
निम्न स्थानीय	ऐ	आ	औ

१.१२ व्यंजन ध्वनिग्रामिक गठन

२९ व्यंजन ध्वनियाँ परस्पर भिन्न एवं भाषा के अन्दर महत्वपूर्ण ध्वनियाँ (Distinguished sounds) हैं। इनका कारण कुछ सीमित उच्चारणगत भिन्नताएँ (Articulatory differences) हैं। ये उच्चारणगत भिन्नताएँ ही विशेष लणक्ष (distinctive features) हैं। ये लक्षण इसप्रकार संयोजित है कि प्रत्येक ध्वनि, प्रत्येक अन्य ध्वनि से कम से कम एक विशेष लक्षण की भिन्नता अवश्य रखती है। इन विशेष लक्षणों के आधार पर समस्त व्यंजन ध्वनियाँ कुछ वर्गों में श्रृंखलाबद्ध की जा सकती हैं—

१.१२१ महाप्राण बनाम अल्पप्राण (Aspiration versus Non aspiration)

भाषा के अन्दर कुछ वर्गों की ध्वनियों में अल्पप्राण और महाप्राण के आधार पर ही व्यतिरेक मिलता है। उदाहरणस्वरूप इसप्रकार का युग्म अल्पप्राण ।क्। और महाप्राण ।ख्। का है।

कुछ भाषा-शास्त्रियो ने ध्वनिग्रामिक विवेचन मे महाप्राण ध्वनिग्रामों को ।। अल्पप्राण ध्वनि + 'ह्' गुच्छ (cluster) प्रस्तावित किया है। 'ए मैनुअल ऑफ फोनोलौजी' मे चार्ल्स हाकेट ने इसीप्रकार का प्रस्ताव रखते हुए कहा है—

"संस्कृत तथा हिन्दुस्तानी जैसी कुछ अन्य आधुनिक भाषाओं को अघोष, सघोष, अल्पप्राण तथा महाप्राण चतुर्वर्गीय ध्वनियों वाला कहा जाता है, परन्तु उभय-नाम्नी-स्थितियों में महाप्राण (सघोष हो या अघोष) प्रकट ही ।ह। ध्वनिग्राम है जो अन्यत्र पुनर्घटित होता है। यह केवल द्विमार्गीय ढंग का वैसादृश्य उपस्थित करता है।"

किन्तु उच्चारणशास्त्र और भाषा के साँचे (Pattern) दोनों दृष्टिकोणों से अघोष महाप्राण एवं घोष महाप्राण—अघोष अल्पप्राण और घोष अल्पप्राण से पृथक् ध्वनिग्राम-ईकाई के रूप में हैं। चार्ल्स हाकेट के मत का निराकरण प्रो० विलियम ब्राइट ने अपने लेख "भारत की भाषाओं में महाप्राण व्यंजन"[1]

१. दे०, हिन्दी अनुशीलन—धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक, भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग।

में सबल तर्कों द्वारा कर दिया है, इसलिए इस बारे में यहाँ कुछ लिखना उन तर्कों की ही पुनरावृत्ति होगी।

भाषा के निम्न विपरीत-युग्मों के ध्वनिग्रामों की भिन्नता केवल 'प्राण' के आधार पर है; युग्म का प्रत्येक सदस्य एक दूसरे से केवल 'प्राण' के आधार पर भिन्न है। 'प्राण' के आधार पर व्यंजन-युग्म इसप्रकार हैं—

अल्पप्राण—प् ब् त् द् ट् ड् च् ज् क् ग्।

महाप्राण—फ् भ् थ् ध् ठ् ढ् छ् झ् ख् घ्।

भाषा की समस्त प्रणाली में इन व्यंजनों को छोड़कर महाप्राणत्व विशेष-लक्षण (distinctive-feature) नहीं रह गया है।

कुछ भाषाशास्त्री ।म्।, ।न्।, ।ल्। एवं ।र्। ध्वनिग्रामों के महाप्राण ध्वनि रूप ।म्ह , न्ह , ल्ह एवं र्ह । मानते हैं। किन्तु यहाँ । ह। ध्वनिग्राम की संहिति, गुच्छ (cluster) के रूप में मानना उचित होगा। यों इस क्षेत्र की बोलियों का विश्लेषण करते समय इसप्रकार की कोई समस्या ही उत्पन्न नहीं होती है, क्योंकि यहाँ ।म् + ह् , न् + ह् , ल् + ह एवं र् + ह। के गुच्छ ही उपलब्ध नहीं होते हैं। अर्थात् किन्हीं भी दो उच्चारणों (utterances) में ।म्-। ।न्। ।ल्। ।र्। के महाप्राणत्व से व्यतिरेक (contrast) नहीं मिलता है।[२]

१.१२२ घोष-अघोष (Voiced Versus Voiceless)

अल्पप्राण-महाप्राण की भाँति ही घोष-अघोष का भेद भी कुछ व्यंजनों को विरोधी-युग्मों (opposed pairs) में संगठित करता है। घोष के आधार पर व्यंजन-युग्म निम्नप्रकार हैं—

अघोष—प् फ् त् थ् ट् ठ् च् छ् क् ख्।

घोष—ब् भ् द् ध् ड् ढ् ज् झ् ग् घ्।

भाषा के अन्दर कुछ व्यंजन इसप्रकार की कोटि में आते हैं जो सामान्यतः घोष हैं, किन्तु जो अघोष-व्यंजनों के युग्म बनाने में असमर्थ है। ये ध्वनियाँ निम्नलिखित हैं—

नासिक्य—।म्। ।न्। ।ङ।

---

२. दे० 'बुलन्दशहर तहसील की बोलियों का ध्वनिग्रामिक अध्ययन" हिन्दु- स्तानी भाग २२ अंक ३-४ पृ० ७७

पार्श्विक—।ल्।

लुठित—।र्।

अर्द्धस्वर—।व्। एवं ।य्।

१.१२३ उच्चारण—प्रयत्न एवं स्थान की दृष्टि से

ध्वन्यात्मक (Phonetic) आधार पर व्यंजनों को उच्चारण, प्रयत्न एवं स्थान की दृष्टि से निम्नलिखित कोष्टक में प्रस्तुत किया जा सकता है—

		द्वयोष्ठ्य	दन्त्य	वर्त्स्य	मूर्द्धन्य	तालव्य	कंठ्य	काकल्य
अवरोधी	स्पर्श	प् ब् फ् भ्	त् द् थ् ध्		ट् ड् ठ् ढ्		क् ग् ख् घ्	
	स्पर्श-संघर्षी					च् ज् छ् झ्		
अनवरोधी	नासिक्य	म्		न्			ङ	
	पार्श्विक			ल्				
	लुठित			र्				
	संघर्षी			स्				ह्
	उत्क्षिप्त							
	अर्द्धस्वर	व्				य्		

१.१२४ रचना सम्बन्धी संगति की दृष्टि से—

यदि हम व्यंजन ध्वनिग्रामों की ध्वन्यात्मक स्थिति को छोड़कर, उनके वितरण और साँचे (minimal pairs) को लक्ष्य करके, उनका पुनर्वर्गीकरण करें तो ऊपर की तालिका का निम्न रूप होगा—

प् ब् त् द् ट् ड् च् ज् क् ग्

फ् भ् थ् ध् ठ् ढ् छ् झ् ख् घ्

म् न् ङ
ल्
र्
स् ह्
व् य्

इस तालिका में एक ओर दन्त्य और वर्त्स्य व्यंजनों को तथा दूसरी ओर स्पर्श एवं स्पर्श-संघर्षी व्यंजनों को एकत्र रूप में देखा गया है।

हिन्दी की बोलियों के स्पर्श संघर्षी व्यंजनों को, स्पर्श वर्ग में ही अन्तर्भुक्त करने का प्रस्ताव रखते हुए, श्री ग्लीसन महोदय ने लिखा है—

"अँग्रेजी भाषा के अन्तर्गत तो स्पर्श और स्पर्श संघर्षी व्यंजनों के वितरण (Distribution) में अनेक भिन्नतायें हैं, किन्तु हिन्दी की बोलियों में ऐसा नहीं है। दो ध्वन्यात्मक ध्वनिरूपों का साँचा बहुत सी दृष्टियों से एक है। इसलिए 'स्पर्श संघर्षी' व्यंजनों को एक अलग वर्ग में रखकर स्पर्श वर्ग की ही ध्वन्यात्मक शाखा के अन्तर्गत मान लेना संगत है"।[1]

१.१३ ध्वनिग्रामों का वितरण एवं सहस्वनों के सम्बन्ध में वक्तव्य (Disribution of phonemes and Allophonic statement)

इस प्रकरण के अन्तर्गत प्रत्येक स्वर एवं व्यंजन ध्वनिग्राम run on का वितरण बताते हुए परिपूरक वितरण (Complementary Distribution) के आधार पर प्रत्येक ध्वनिग्राम के सदस्य सहस्वनों (Allophones) का विवरण प्रस्तुत करेंगे। पुनः अगले प्रकरण में स्वल्पान्तर युग्म (Minimal pairs) एवं उपस्वल्पान्तर युग्म (Analogous pairs) के आधार पर ध्वनिग्रामों द्वारा उच्चारणों में व्यतिरेक प्रदर्शित करेंगे।

१.१३१ सर्वप्रथम हम स्वर ध्वनिग्रामों का वितरण एवं उनके सहस्वन प्रस्तुत कर रहे हैं—

(१)

।ई।— यह सम्वृत अग्रस्वर है। इस ध्वनिग्राम के दो सहस्वन हैं जिनका वितरण इसप्रकार है—

---

१. Gleason H. A.—(An Introduction to Descriptive Linguistics page 244)

(ई)– शब्द की आदि, मध्य तथा व्यंजन पश्चात, अन्तिम स्थिति में, आता है। यथा—

[ईख्, महीना, बोली]

[ई[1]] यह सहस्वन [ई] की अपेक्षा शिथिल, ह्रस्व, तथा ईषत्पश्च है। यह शब्द की अन्तिम स्थिति में, स्वर पश्चात आता है। यथा—

[गाई[1], गई[1]]

(२)

।इ।– यह ध्वनिग्राम, ।ई। ध्वनिग्राम की अपेक्षा, कम उच्चस्थानीय, संवृत अग्रस्वर है। वितरण के आधार पर इसके दो सहस्वन हैं—

[इ] यह अक्षरात्मक (Syllabic), कम उच्चस्थानीय, संवृत, अग्रस्वर है तथा शब्द की आदि स्थिति एवं मध्य स्थिति में, व्यंजन पश्चात् तथा स्वर संयोगों में तथा शब्द की अन्तिम स्थिति में आता है। यथा —

[इन्हौने, भूबलिया, काइ]

[इ॒]– यह अनक्षरात्मक (Nansyllabic), कम उच्चस्थानीय, संवृत, अग्रस्वर है। यह शब्द की मध्यस्थिति में, स्वर पश्चात् आकर, सन्ध्यक्षर (Dipthong) का रूप धारण करता है। यथा—

[गइ॒या, भइ॒या, मइ॒या]

(३)

।ए।– यह अर्द्ध संवृत अग्रस्वर है तथा शब्द की प्रत्येक स्थिति में आ सकता है। यथा—

[एक्, बहोतेरे]

(४)

।ऐ।– यह अर्द्ध विवृत अग्रस्वर है तथा शब्द की प्रत्येक स्थिति में आ सकता है। यथा—

[ऐसा, कैसा, सबै]

(५)

।अ।– यह अर्द्ध विवृत पश्चस्वर है। शब्दों की अन्तिम स्थिति में साधारणतः ।अ। का उच्चारण नहीं होता है, किन्तु शब्द की अन्तिम स्थिति में जब व्यंजन-गुच्छ (consonant cluster) आता है तब इस स्वर का निस्तार (Release) हो जाता है। यथाः—

[खर्च]

इस ध्वनिग्राम के दो सहस्वन [अ] तथा [अ̣] हैं, जिनका वितरण ।इ। ध्वनिग्राम के सहस्वनों की ही भाँति है । अर्थात्

(अ)– यह शब्द की आदि स्थिति में, मध्य स्थिति में व्यंजन पश्चात तथा स्वर संयोगों में तथा शब्द की अन्तिम स्थिति में आता है। यथा—

[अचम्भौ, कम्]

(अ̣) शब्द की मध्य स्थिति में स्वर के बाद आकर सन्ध्यक्षर का रूप धारण करता है । यथा—

[सुअ̣रिया]

(६)

।ऊ।– यह संवृत पश्चस्वर है। इस ध्वनिग्राम के भी ।ई। ध्वनिग्राम की भाँति दो सहस्वन हैं । यथा—

(ऊ) शब्द की आदि, मध्य तथा व्यंजन पश्चात् अन्तिम स्थिति में आता है । यथा—

[ऊन्, खूब्, सबक्]

(ऊ१) यह (ऊ) की अपेक्षा शिथिल, ह्रस्व, तथा ईषत्- अग्र है । यह शब्द की अन्तिम स्थिति में स्वर पश्चात् आता है । यथाः—

(नाऊ१, लांऊ१, खांऊ१)

(७)

।उ।–यह ।ऊ। की अपेक्षा कम उच्चस्थानीय संवृत पश्चस्वर है । इसके दो सहस्वन (उ) तथा (उ̣) हैं जिनका वितरण ।इ। तथा ।अ। ध्वनिग्राम के सहस्वनों की ही भाँति हैं । यथा—

[उ] [उप्पर्, बुरी, बिच्छु]

(उ) [कड़्वा ⌒कउ̣आ]

(८)

।ओ।–यह अर्द्धसंवृत, पश्चस्वर है तथा शब्द की प्रत्येक स्थिति में आ सकता है । यथा—

[ओटक्, खोपरी, लिख्खो]

(९)

।औ।–यह अर्द्धविवृत पश्चस्वर है तथा शब्द की प्रत्येक स्थिति में आ सकता है । यथा—

[औरत्, चौपार्, झाडौ ।]

(१०)

।आ। यह विवृत पश्चस्वर है। यह भी शब्द की प्रत्येक स्थिति में आ सकता है। यथा—

[आयबे, आबादी, रूपइया]

१. १३२ व्यंजन ध्वनिग्रामों का वितरण और उनके सहस्वन

(११)

।प्। ध्वनिग्राम ।प्। का एक ही सहस्वन (प्) है जो अल्पप्राण, अघोष, द्वयोठ्य स्पर्श व्यंजन है तथा शब्द की प्रत्येक स्थिति मे आ सकता है। यथा—

[पंचात्, पाप्, उप्पर्]

(१२)

।फ्। ध्वनिग्राम ।फ्। के दो सहस्वन है—

[फ्]—यह महाप्राण, अघोष, द्वयोठ्य स्पर्श व्यंजन है। यह शब्द की आदि स्थिति में केन्द्रीय (Central) तथा पश्च (Back) स्वरों के पूर्व तथा शब्द की मध्यस्थिति मे व्यंजन और स्वर के मध्य आता है। यथा—

[फल्, फोडा, कप्फन्]

(फ्[1]) यह महाप्राण, अघोष, दन्त्योष्ठ्य (Labio-Dental) स्पर्श व्यंजन है। यह [फ्] के वितरण को छोड़कर अन्यत्र आता है—

[फि[1]साद्, सफ[1]र्, अफ[1]सर्, आफि[1]स, साफ्[1]]।

(१३) ।ब्। ध्वनिग्राम ।ब्। का एक ही सहस्वन [ब्] है जो अल्पप्राण, घोष, द्वयोष्ठ्य स्पर्श व्यंजन है तथा शब्द की प्रत्येक स्थिति में आ सकता है। यथा—

[बद्माश्~बद्मास्, सबन्, आबादी, कब्]

(१४) ।भ्।—ध्वनिग्राम ।भ्। का भी एक ही सहस्वन [भ्] है। यह महाप्राण, घोष, द्वयोष्ठ्य, स्पर्श व्यंजन है तथा शब्द की प्रत्येक स्थिति में आ सकता है। यथा—

[भारी, अचम्भौ, लाभ्]

(१५) ।त्। ध्वनिग्राम ।त्। का एक ही सहस्वन [त्] है जो अघोष, अल्पप्राण, दन्त्य, स्पर्श व्यंजन है। यथा—

[ताला, लत्ता, लात्]

(१६) ।थ्।—ध्वनिग्राम ।थ्। का एक ही सहस्वन [थ्] है जो अघोष, महाप्राण, दन्त्य स्पर्श व्यंजन है। यथा—

।थाल्, माथा, साथ् ।

(१७) ।द्।—ध्वनिग्राम ।द्। का भी एक ही सहस्वन [द्] है जो घोष, अल्पप्राण, दन्त्य, स्पर्श व्यंजन है । यथा—

।दाल्, मद्दी, उर्द ⁀ उरद्, दर्द ⁀ दरद्, उम्मीद् ।

(१८) ।ध्। ध्वनिग्राम ।ध। का एक ही सहस्वन [ध्] है जो घोष, महाप्राण, दन्त्य, स्पर्श व्यंजन है । यथा—

।धाक्, कन्धा, लाध् ।

(१९) ।ट्। ध्वनिग्राम ।ट्। का एक ही सहस्वन [ट्] है जो अल्पप्राण, अघोष, मूर्द्धन्य, स्पर्श व्यंजन है । यथा—

।हाट्, कलट्टर, घन्टा, खाट् ।

(२०) ।ठ्। ध्वनिग्राम ।ट्। का एक ही सहस्वन [ठ्] है जो अल्पप्राण, घोष, मूर्द्धन्य, स्पर्श व्यंजन है । यथा—

।ठोक्, बैठो, लठ्ठ, साठ् ।

(२१) ।ड्।—इस ध्वनिग्राम के दो सहस्वन हैं—

[ड्]—यह अल्पप्राण, घोष, मूर्द्धन्य, स्पर्श व्यंजन है ।

[ड़्]—यह अल्पप्राण, घोष, मूर्द्धन्य, उत्क्षिप्त (Flapped) व्यंजन है ।

इन दोनों सहस्वनों के वितरण पर विशद् दृष्टिपात करने की आवश्यकता है, क्योंकि दोनों द्विस्वरान्तर्गत (Intervocally) आते हैं। कुछ भाषा-शास्त्रियों ने इसीलिए हिन्दी का विश्लेषण करते समय इन्हें एक ध्वनिग्राम के दो सहस्वन न मानकर पृथक् ध्वनिग्राम माना है ।[1]

किन्तु कुछ कारणवश हम इन्हें एक ही ध्वनिग्राम के दो सहस्वन मान रहे हैं—

(१) पृथक् ध्वनिग्राम मान लेने पर भाषा के साँचे (Pattern) को बहुत आघात पहुँचता है ।

(२) कोई भी दो ऐसे स्वल्पान्तर युग्म (Minimal pairs) उपलब्ध नहीं हुए हैं जिनमें केवल–ड्–ड़् के कारण व्यतिरेक (Contrast) पाया जाता हो ।

(३) तीसरा कारण "ध्वनिग्राम" सम्बन्धी यह सिद्धान्त है कि भिन्न ध्वनियाँ जो केवल भिन्न ध्वनिग्रामिक परिवेश (different phonemic enviro-

---

१. दे०, हिन्दुस्तानी में प्रकाशित 'हिन्दी के ध्वनिग्राम'—डा० उदयनारायण तिवारी ।

-nments) में आती हैं अर्थात् एक रूप ध्वनिग्रामिक परिवेश (Identical phonemic environment) में नहीं आती हैं, सदैव अव्यतिरेकी वितरण (non-contrastive distribution) में होती हैं।[२]

[ड्]—शब्द के आदि में, मध्य में व्यंजन और स्वर के मध्य में एवं संयुक्त व्यंजनों मे आता है एवं इस वातावरण में इसका [ड़] के साथ कोई व्यतिरेक नहीं मिलता है। [ड़] शब्द के अन्त्य में आता है एवं इस स्थिति में इसका [ड्] से कोई व्यतिरेक नहीं मिलता है।

समस्या यह है कि दोनों सहस्वन शब्द के मध्य में द्विस्वरान्तर्गत आते हैं। प्राप्त सामग्री के आधार पर हमें शब्दों के दो प्रकार के वर्ग मिले है जिनमें सहस्वन [ड्] द्विस्वरान्तर्गत आ रहा है—

(१) देशी शब्द

(२) अँग्रेजी से आगत शब्द।

खंडित (Segmental) ध्वनिग्रामों के क्रम में उपलब्ध देशीशब्द निम्नलिखित हैं—

(अ) आडम्बर्

(आ) निडर्

(इ) लौडा

(ई) गॉड्ड

इनमें अन्तिम दो शब्दों में स्पष्टतया खंडेतर ध्वनिग्राम [अनुनासिकता] का प्रवेश है। इसके अतिरिक्त चारों शब्दों में अल्पविवृत्ति का भी प्रवेश है। यथा—

(अ) आ+डम्बर्

(आ) नि+डर्

(इ) लौ+डा

(ई) गॉ+ड्ड

अँग्रेजी से आगत शब्द तीन हैं—

(१) रेडियो

(२) सोडा ⁀ सोड़ा

(३) रोड् ⁀ रोड़

---

२. दे०, Introduction to linguistic structures–A. Hill, Page 50.

अन्तिम दो शब्दों में [ड्] एवं [ड़] मुक्तपरिवर्तन (free-Variation) में है। समस्या केवल (रेडियो) शब्द की है। इसके दो निदान सम्भव हैं—

(१) या तो इसको अपवादस्वरूप अंग्रेजी से आगत शब्द की कोटि में अंकित कर लें।

(२) अथवा इसमें भी अल्पविवृत्ति का प्रवेश मान लें।

भाषा की पद्धति (System) एवं लाघव (economy) को लक्ष्य में रखकर हम दूसरे निदान को पसन्द करेंगे।

इस विवेचन के बाद अपने निष्कर्षों को हम सूत्ररूप में इसप्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं—

।ड्।

[ड्] शब्द के आदि में, मध्य में व्यंजन और स्वर के मध्य एवं संयुक्त व्यंजनों में, आता है।

यथा—[डलिया], [कुन्डल्], [लड्डु], [गड्ढौ], [नि+डर्]।

[ड़्]—अन्यत्र आता है।

यथा—[सड़क], [पड़ौस्], [थप्पड़्], [मैड़्]।

।ओ। ध्वनिग्राम तथा अनुनासिक स्वरों के बाद आने पर दोनों सहस्वन मुक्त परिवर्त्तन (free-Variation) में आते हैं—

यथा—

[सोडा ‿ सोड़ा]

[रोड् ‿ रोड़]

[कोडा ‿ कोड़ा]

[राँड् ‿ राँड़]

[साँड् ‿ साँड़]

(२२) ।ढ्। ध्वनिग्राम ।ढ्। के दो सहस्वन हैं —

[ढ्] यह महाप्राण, घोष, मूर्द्धन्य स्पर्श व्यंजन है। यह शब्द की आदि स्थिति में एवं व्यंजनगुच्छों में दूसरे सदस्य के रूप में आता है। यथा—

[ढक्कन्, बुड्ढा, गड्ढा, ठन्ढक्]।

[ढ़्] यह महाप्राण, घोष, मूर्द्धन्य उत्क्षिप्त व्यंजन है। [ढ्] के वितरण को छोड़कर, अन्यत्र आता है—

[मढ़इया, वाढ़्, बाँढ़्]

अनुनासिक स्वरों के बाद आने पर दोनों सहस्वन मुक्त-परिवर्तन में आते हैं। यथाः—

[माँढ़्⁀माँढ़]

(२३) ।च्।—ध्वनिग्राम ।च्। का एक ही सहस्वन [च्] है। यह अल्पप्राण, अघोष, वर्त्स्य-तालव्य (Alveolo Palatal), स्पर्श-संघर्षी (Affricate) व्यंजन है। यह शब्द की प्रत्येक स्थिति में आ सकता है। यथा —

।चाक्, चल्, कच्चा, सच्।

(२४) ।छ्।—ध्वनिग्राम ।छ्। का एक ही सहस्वन [छ्] है। यह महाप्राण, अघोष, वर्त्स्य-तालव्य, स्पर्शसंघर्षी व्यंजन है —

।छाक्, छल्, कछ्छा, रीछ्।

(२५) ।ज्। ध्वनिग्राम ।ज्। का एक ही सहस्वन [ज्] है जो घोष, अल्पप्राण, वर्त्स्य-तालव्य, स्पर्शसंघर्षी व्यंजन है —

।जाट्, जल्, बन्जर्, रोज् ।

(२६) ।झ्। ध्वनिग्राम ।झ्। का एक ही सहस्वन [झ्] है जो घोष, महाप्राण, वर्त्स्य-तालव्य, स्पर्श-संघर्षी व्यंजन है —

।झान्, झंझट्, बोझ् ।

(२७) ।क्। ध्वनिग्राम ।क्। का एक ही सहस्वन [क्] है जो अघोष, अल्पप्राण, कंठ्य, स्पर्श व्यंजन है —

।काउ, सिकरौ, सुरक्।

(२८) ।ख्। ध्वनिग्राम ।ख्। का एक ही सहस्वन [ख्] है जो अघोष, महाप्राण कंठ्य, स्पर्श व्यंजन है —

।खाउ, बिखरौ, रख्।

(२९) ।ग्। ध्वनिग्राम ।ग्। का एक ही सहस्वन [ग्] है जो घोष, अल्पप्राण, कंठ्य स्पर्श व्यंजन है —

।गाम्, बिगर्, लङ्ग ।

(३०) ।घ्। ध्वनिग्राम ।घ्। का एक ही सहस्वन [घ्] है जो घोष, महाप्राण, कंठ्य स्पर्श व्यंजन है —

।घाम्, बघर्रा, बाघ्।

(३१) ।म्। ध्वनिग्राम ।म्। का एक ही सहस्वन [म्] है जो द्योष्ठ्य (Bilabial) नासिक्य व्यंजन है —

।माली, रूमाल्, काम्।

(३२) ।न्। ध्वनिग्राम ।न्। के तीन सहस्वन हैं —

[ञ्] यह वर्त्स्य-तालव्य नासिक्य व्यंजन है। इसका वितरण बहुत सीमित है। यह केवल व्यंजन-गुच्छों में अपने वर्गीय (चवर्गीय) व्यंजनों के पूर्व आता है। यथा—

[चञ्चल्]

[ण्] यह मूर्द्धन्य नासिक्य व्यंजन है। यह शब्द की माध्यमिक स्थिति में आता है—

[प्रणाम्,,रणवीर्]।

[न्] यह वर्त्स्य नासिक्य व्यंजन है तथा [ञ्] के वितरण के अतिरिक्त [ण्] के साथ यह मुक्तपरिवर्तन में आताहै—

[नद्दी], [दिनन्], [सबन्]

[प्रणाम्‿प्रनाम्] [रणवीर्‿रनवीर्]

रूपतालिका में इन सहस्वनों के वितरण को इसप्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

	आदि में	मध्य में	द्विस्वरान्तर्गत	अन्त्य में
ञ्	×	॥ चवर्ग के पूर्व	×	×
ण्	×	×	॥	×
न्	॥	॥	॥	॥

(३३) ।ङ्। कंठ्य नासिक्य व्यंजन ध्वनिग्राम ।ङ्। का एक ही सहस्वन [ङ्] है जिसका वितरण सीमित है। यह शब्द के आदि में कभी नही आता, केवल शब्द के मध्य व्यंजन-संयोगों में अपने वर्गीय (कवर्ग) व्यंजनों के पूर्व में एवं शब्द के अन्त में आता है।

वितरण के सापेक्षिक दृष्टिकोण से देखने पर ।ङ्। ही ऐसा ध्वनिग्राम है जो अपूर्ण या दोषपूर्ण ध्वनिग्राम (Defective Phoneme) है।

(३४) ।ल्। वर्त्स्य पार्श्विक व्यंजन ध्वनिग्राम ।ल्। का केवल एक सहस्वन [ल्] है जो शब्द की प्रत्येक स्थिति में आ सकता है।

[चौपाल्] [चिल्लाहट] ।चाल्]

(३५) ।र्। वर्त्स्य लुंठित व्यंजन ध्वनिग्राम ।र्। का केवल एक ही सहस्वन [र्] है जो शब्द की प्रत्येक स्थिति में आ सकता है। यथा—

[रास्ता, रोक्, खर्च — खरच्, उप्पर्]

(३६) ।स्। ध्वनिग्राम ।स्। का एक ही सहस्वन [स्] है जो वर्त्स्य, अघोष, संघर्षी, ऊष्म (Sibilant) व्यंजन है—

[सास्, मस्त, नक्सा]

विभिन्न वक्ता इस ध्वनि को अन्य प्रकार से भी बोलते हैं और इस ध्वनि की जगह तालव्य [श्] का भी कभी-कभी उच्चारण कर देते हैं, किन्तु यह भेद व्यक्तिगत (Idiolect) भिन्नता में परिगणित होना चाहिए, सहस्वनिक भिन्नता में नहीं।

(३७) ।ह। ध्वनिग्राम ।ह्। के दो सहस्वन हैं

[ह्] यह काकल्य (Glottal) अघोष, संघर्षी व्यंजन है।

यह शब्द की आदि स्थिति तथा माध्यमिक स्थिति में व्यंजन तथा स्वर अथवा स्वर तथा व्यंजन के मध्य आता है। यथा —

[हर्, हैजा, माह्वार्]

[ह़] यह काकल्य, घोष, संघर्षी व्यंजन है। यह द्विस्वरान्तर्गत तथा शब्द की अन्तिम स्थिति में आता है। यथा—

[मह़ीना, माह़]

प्रायः शब्द के अन्त में [ह़] का लोप भी हो जाता है और स्वरध्वनि सुनायी पड़ती है। वस्तुतः ऐसी दशा में घोषत्व इसे स्वर ध्वनि में परिवर्तित कर देता है।

(३८) ।व्। ध्वनिग्राम ।व्। का एक ही सहस्वन [व्] है जो द्वयोष्ठ्य, सघोष, अर्द्धस्वर व्यंजन है—

[वैसा, क्वार्, जवान्, तान्]

(३९) ।य्। ध्वनिग्राम ।य्। का एक ही सहस्वन [य्] है जो तालव्य, सघोष, अर्द्ध-स्वर व्यंजन है:

[यार्, भुबलिया, स्यार्।]

स्वर पश्चात् (Post Vocalic) आने पर तथा उसके साथ सन्निहित

होने पर ।य्। तथा ।व्। सन्ध्यक्षर का निर्माण करते हैं। इसका विवेचन ध्वनिग्राम-क्रम गठनात्मक अध्ययन करते समय किया जायेगा।

१.१४ स्वल्पान्तर युग्म एवं उपस्वल्पान्तर युग्म (Minimal Pairs and Sub-minimal Pairs)

१.१४१ स्वर

।इ। ।ई।

।मिल्।

।मील्।

।ए। ।ऐ।

।मेल्।

।मैल्।

।उ। ।ऊ।

।बुरा।

।बूरा।

।ओ। ।औ।

।मोल्।

।मौल्।

।अ। ।आ।

।कम्।

।काम्।

।आ। ।ई।

।घोडा।

।घोडी।

।अ। ।आ। ।ओ। ।औ।

।बल्।

।बाल्।

।बोल्।

।बौल्।

।इ। ।ई। ।ओ। ।औ।

।खिल्।

।खील्।

।खोल्।

।खौल्।

।इ। ।ई। ।ए। ।ऐ।

।मिल्।

।मील्।

।मेल्।

।मैल्।

।उ। ।ऊ। ।ओ। ।औ।

।लुट्।

।लूट्।

।लोट्।

।लौट्।

।सुख्। ।सुना।

।सूख्। ।सूना।

।सोख्। ।सोना।

।सौख्। ।सौना।

।ए। ।ऐ। ।ओ। ।औ।

।मेल्।

।मैल्।

।मोल्।

।मौल्।

१.१४२ व्यंजन

१. स्पर्शव्यंजन

(अ) कंठ्य स्पर्श व्यंजन

।क्।	।करी।	।काय्।	।कर्।	।काम्।	।सिकरौ।	।रोक्।		।तक्।
।ख्।	।खरी।	।खाय्।			।बिखरौ।			।रख्।
।ग्।	।गरी।	।गाय्।		।गाम्।		।रोग्।	।बाग्।	
।घ्।	।घरी।		।घर्।	।घाम्।			।बाघ्।	

(आ) तालव्य स्पर्शव्यंजन

।च्।	।चल्।	।चाल्।	।कच्चा।	।मचली।	।कांच्।		।कीच्।
।छ्।	।छल्।	।छाल्।	।कछ्छा।	।मछली।			।रीछ्।
।ज्।	।जल्।	।जाल्।			।मॉज्।	।रोज्।	
।झ्।	।झल्।	।झाल्।		।मझली।		।बोझ्।	

(इ) मूर्द्धन्य स्पर्शव्यंजन

।ट्।	।टाट्।		।लट्टू।	।काट्।		।खाट्।
।ठ्।	।ठाट्।			।काठ्।		।साठ्।
।ड्।	।डाट्।	।डाल्।	।लड्डू।		।मोड्।	
।ढ्।		।ढाल्।			।कोढ्।	

(ई) दन्त्य स्पर्शव्यंजन

।त्।	।ताल्।	।तान्।	।काता।	।बात्।
।थ्।	।थाल्।	।थान्।	।माँथ्।	।साथ्।
।द।	।दाल्।	।दान्।	।जादा।	।पाद्।
।ध्।		।धान्।	।बाँधा।	।लाध्।

(उ) द्वयोष्ठ्य स्पर्शव्यंजन

।प्।	।पल्.	।पाप्।		।पाप्।
।फ्।	।फल्।			।साफ्।
।ब्।	।बल्।	।बाप्।	।बात्।	।चाब्।
।भ्।			।भात्।	।लाभ्।

(२) नासिक्य व्यंजन

।न्।	।नाँना।	।नथ्।	।नाली।	।पलन्।	।जलन्।	।सन्।
।म्।	।माँमा।	।मथ्।	।माली।		।कलम्।	
।ङ्।				।फलङ।	।पलङ।	।सङ्।

(३) लुंठित, पार्श्विक, संघर्षी

।र्। ।राल्। ।मार्।

।ल्। ।लाल्। ।माल्।

।ल्। ।लाला। ।बाल्।

।म्। ।साला। ।वास्।
।म्। ।सोई। ।मॉस्।
।र्। ।रोई। ।मार्।
।स्। । साथ्। ।मांस्।
।ह्। ।हाथ्। ।माह्।

(४) अर्द्धस्वर

।य्। ।याकै।
।द्। ।वाकै।
।य्। ।गाय्।
।इ। ।गाइ।
।व। ।वू। = वह
।ब्। ।बू। = दुर्गन्ध

केवल स्वर एवं स्वरसहित ।य्। में तथा ।इ। सहित एवं रहित उच्चारों में व्यतिरेक—

[पारा] ।पारा।
[प्यारा] ।प्यारा।
[गइ्या] ।गइया।
[गया] ।गया।
[भइ्या] ।भइया।
[भया] ।भया।

१.२खंडेतरध्वनिग्राम (Supra-Segmental Phonemes)

इन ध्वनिग्रामों को खंडेतर ध्वनिग्राम इसलिये कहा जाता है, क्योंकि ये मूल खंड ध्वनिग्रामो के ऊपर रचना की एक अतिरिक्त परत् (layer) के समान प्रतीत होते है।

हमारी भाषा के अन्दर अनुनासिकता (Nasalisation) एवं विवृत्ति (Juncture) खंडेतर ध्वनिग्रामिक है।

१.२१अनुनासिकता— । ̃ ।

अनेक निरनुनासिक स्वरों को अनुनासिक कर देने से व्यतिरेक (Contrast) हो जाता है, इसलिये अनुनासिकता इस भाषा में ध्वनिग्रामिक है।

यथा—

।बास्। तथा ।बाँस्।

।सास्। तथा ।साँस्।

अनुनासिकता ध्वनिग्राम ।.। के ६ सहस्वन हैं जिनका वितरण इसप्रकार है—

[ͦ ङ] यह सहस्वन ।ङ। मिश्रित अनुनासिकता है तथा ।ग्। एवं ।घ्। व्यंजनों के पूर्व आता है।

यथा—

[हुंङ्गा]

[ͦ ञ्] यह सहस्वन ।ञ्। मिश्रित अनुनासिकता है तथा ।ज्। एवं ।झ्। व्यंजनों के पूर्व आता है।

यथा—

[झांञ्झ्]

[ͦ ण्] यह सहस्वन ।ण्। मिश्रित अनुनासिकता है तथा ।ड्। एवं ।ढ्। व्यंजनों के पूर्व आता है।

यथा—

[खांण्ड]

[ͦ न्] यह सहस्वन ।न्। मिश्रित अनुनासिकता है तथा ।द्। एवं ।ध्। व्यंजनों के पूर्व आता है।

यथा—

[बांन्ध्]

[ͦ म्] यह सहस्वन ।म्। मिश्रित अनुनासिकता है तथा ।ब्। एवं ।भ्। व्यंजनों के पूर्व आता है।

यथा—

[संम्भल्]

[ͦ] यह अमिश्रित अनुनासिकता है तथा इसका वितरण मिश्रित—अनुनासिकता युक्त ५ सहस्वनों के वितरण को छोड़कर, अन्यत्र है। यथा—

[खौंचा, कांसा, मौंका]

१.२२ विवृति [Juncture]

विवृति के कई उपभेद हैं। प्रत्येक उच्चार विवृति के एक प्रकार को सँजोए रहता है। विवृति को दो मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है—

प्रथमवर्ग—

बाहरी विवृति (Terminal Junctures)—इस वर्ग के तीन उपवर्ग हैं—

/(१) //
/(२) ///
/(३) ////

कोई भी वाक्यांश इन तीनों ।। ।।, ।।।, । में से किसी एक के बिना समाप्त नहीं हो सकता है। किन्तु हम इनका वर्णन नहीं करेंगे, क्योंकि यहाँ हम पदग्रामिक संरचना तक के ही ध्वनिग्रामों का अध्ययन कर रहे हैं।

द्वितीय वर्ग

आन्तरिक विवृति (Internal Juncture) या अल्प विवृति (Plus Juncture) ।+।

यह विवृति प्रस्तुत क्षेत्र की बोलियों में ध्वनिग्रामिक है। एक उच्चार (Utterance) को पूरा एक साथ उच्चरित करें, एवं यदि उसके किन्हीं दो ध्वनिग्रामों के मध्य थोड़ा सा विराम देकर बोलें और यदि उन दोनों उच्चारणों में व्यतिरेक पाया जाता हो तो वहाँ यह अल्प विवृति । + । ध्वनिग्रामिक हो जाती है। यथा—

।खाली।: ।खा+ली।

।बता+साले।: ।बतासा+ले।

।वह जान लेगौ।: ।वह जान्+लेगौ।

।वह चलावै औ।: ।वह चल्+आवै औ।

१.३अविशेष लक्षण (Non-distnictive features)

इस प्रकरण के अन्तर्गत हम भाषा के उन लक्षणों पर विचार करेंगे जो राग-तत्त्व लक्षण (Prosodic features) हैं,किन्तु ध्वनिग्रामिक नहीं हैं।

१.३१दीर्घता (Length)

पहले भाषा शास्त्री ।आ, ई, ऊ। को क्रमशः ।अ, इ, उ। का दीर्घरूप मानते थे, इसलिए इस मत से दीर्घता ध्वनिग्रामिक मानी जाएगी; किन्तु इस मत का निराकरण डॉ० उदयनारायण तिवारी ने अपने लेख "हिन्दी के ध्वनिग्राम"[१] में कर दिया है। वस्तुतः उपर्युक्त स्वरों में केवल उच्चारण-काल की मात्रा का ही भेद नहीं उनके उच्चारण-स्थान में भी भेद है। यह तलिका में दिखाया जा चुका है।

देo, हिन्दुस्तानी—"हिन्दी के ध्वनिग्राम", पृष्ठ १०-१५

स्वरों में मात्राकाल वातावरण के अनुसार, बोलने वाले की गति के अनुसार बदलता रहता है; इस सम्बन्ध में कुछ साधारण नियम बताये जा सकते हैं—

(१) शब्द में, आदि के स्वरों का मात्राकाल शब्दान्त के स्वर से अधिक होता है।

(२) एकाक्षर शब्दों के स्वरों का मात्राकाल अनेकाक्षर शब्दों के स्वरों से अधिक होता है।

(३) एकाक्षर स्वर-शब्द, एकाक्षर व्यंजनान्त-शब्द से मात्राकाल में अधिक होता है।

(४) अनुनासिक स्वर निरनुनासिक स्वर से दीर्घ होते हैं।

(५) व्यंजनगुच्छ से पूर्व आए हुए स्वर की दीर्घता अन्य स्थान के स्वरों के मात्राकाल की अपेक्षा कम होती है।

१.३२ बलाघात (Stress)

विश्व की किसी भी भाषा का कोई अक्षर आघात शून्य नहीं होता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक भाषा में उच्चारों की शृंखला में आघातों की भिन्नता मिलती है। सभी अक्षरों पर आघात समान रूप से नहीं पड़ता है। किन्तु प्रत्येक भाषा में आघातों की ये भिन्नतायें इसप्रकार संयोजित नहीं होती हैं कि उच्चारों में व्यतिरेक उत्पन्न कर सकें।

प्रस्तुत क्षेत्र की बोलियों में बलाघात के कारण दो उच्चारों में व्यतिरेक नहीं आया है; इस कारण यहाँ बलाघात ध्वनिग्रामिक नहीं है।

शब्दों में अक्षर क्रम से प्राप्त बलाघात सम्बन्धी कुछ सामान्य नियम नीचे दिये जा रहे हैं—

(१) एकाक्षर

ˈगाम्

(२) द्व्यक्षर

(अ) प्रथम अक्षर का स्वर यदि दीर्घ हो एवं अन्तिमाक्षर का स्वर यदि लघु हो तो बलाघात प्रथम अक्षर पर पड़ता है। यथा—

ˈबाइस्

(आ) अन्तिमाक्षर का स्वर यदि दीर्घ हो और प्रथम अक्षर का स्वर यदि ह्रस्व हो तो बलाघात अन्तिमाक्षर पर पड़ता है। यथा—

किˈसान्

इस नियम का अपवाद यह है कि यदि शब्द व्यंजनगुच्छ युक्त हो तो बलाघात प्रथम अक्षर पर ही पड़ता है, भले ही प्रथम अक्षर का स्वर ह्रस्व और अन्ति-माक्षर का स्वर दीर्घ हो। यथा—

प'त्ता

(इ) यदि दोनों अक्षरों के स्वर दीर्घ हों तो बलाघात प्रथम अक्षर पर पड़ता है। यथा—

लो'टा

(३) त्रयक्षर एवं चतुर्क्षर

इनमें बलाघात अन्तिम दो अक्षरों में से किसी एक पर होता है। सामान्य नियम द्वयक्षर की भाँति ही होते हैं।

१.४ सुर (Pitch)

सुर, स्वरतंत्रियों (Vocal Cards) के खिंचाव और उनमें उत्पन्न घोष या कम्पन के आरोह अवरोह के क्रम पर निर्भर करता है। 'सुर' की भिन्नतायें आकस्मिक नही होती, वे बोली के गठन के अंग के रूप में होती हैं'।[१]

सुर के विभिन्न धरातलों को विभिन्न प्रकार से अंकित किया जाता है। यथा—रेखाओं द्वारा, बिन्दुओं द्वारा, अंकों द्वारा।

आधुनिक भाषाशास्त्री प्रायः।१। से।४। अंकों द्वारा सुर के चार स्तरों को प्रदर्शित करते हैं। ।१। अंक निम्नतम धरातल के लिये एवं।४। अंक उच्चतम धरातल के लिये। यथा—

२ ४ ३ १
मोहन्+आज्+घर्+गयौ ।।।

सुर के विभिन्न धरातलों द्वारा वाक्य-उच्चारों में व्यतिरेक आ जाता है। बाहरी विवृतियाँ भी सुर धरातलों को द्योतित करती हैं। सुर का विशेष अध्ययन, वाक्य-संरचना का अध्ययन करते समय प्रस्तुत किया जायेगा। यहाँ सुर धरातलों को नहीं दिया जा रहा है। इसका कारण यह है कि हमारे अध्ययन की सीमा पदग्रामिक संरचना तक ही है।

---

१. W. Nelson Francis The Structure of American English पृ० 113–114

१२

अवधी के ध्वनिग्राम*

लेखक—श्री दिनेशप्रसाद शुक्ल, एम० ए०, रिसर्च स्कालर प्रयाग विश्वविद्यालय

१.१ अवधी पूर्वीहिन्दी की एक प्रमुख बोली है। यह एक विस्तृत क्षेत्र में बोली जाती है। यह मुख्यत :इलाहाबाद, प्रतापगढ़, सुल्तानपुर, फैजाबाद, गोंडा, बहराइच, लखीमपुरखीरी, सीतापुर, बाराबंकी, लखनऊ, रायबरेली, उन्नाव, तथा फतेहपुर में बोली जाती है। इसकेअतिरिक्त मिर्जापुर, जौनपुर तथा बाँदा आदि के भी कुछ हिस्सों में इस बोली का विस्तार है। इस समस्त क्षेत्र को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है; १—उत्तरी, २—दक्षिणी। ऊपर के क्रम में इलाहाबाद से लेकर बहराइच तक दक्षिणी तथा उसके बाद के जिले उत्तरी अवधी क्षेत्र में आते हैं। यह वर्गीकरण भाषा-सम्बन्धी समानता को दृष्टि में रखकर किया गया है।

१.२ प्रस्तुत निबंध में अवधी के ध्वनिग्रामों को प्रस्तुत किया गया है। अवधी क्षेत्र की अनेक उपबोलियों की घवनिग्रामीय प्रणाली (फोनेटिक सिस्टम) में यत्किंचित ही अन्तर है। यहाँ मुख्यरूप से इलाहाबाद में उपलब्ध सामग्री के आधार पर ही ध्वनिग्रामों को दिया जा रहा है। यह सामग्री मेजा तहसील में स्थित, इलाहाबाद से मिर्ज़ापुर जानेवाली रेलवे लाइन के उत्तर, इलाहाबाद से लगभग तीस मील दूर 'परानीपुर' गाँव से एकत्र की गई है। इस सामग्री के लिए लेखक स्वयं सूचक है, किंतु जहाँ भी किसीप्रकार की कठिनाई का अनुभव हुआ है वहाँ इस क्षेत्र के अन्य लोगों के सहयोग से ठीक कर लिया गया है।

---

*यह निबन्ध प्रयाग विश्वविद्यालय के डा० उदयनारायण तिवारी, एम० ए०, डी० लिट० के तत्वावधान में लिखा गया है। इसके लिए लेखक डा० तिवारी का आभारी है। प्रस्तुत निबन्ध नागरी प्रचारिणी पत्रिका के वर्ष ६५ अंक ३, कार्तिक, सम्वत् २०१७ में प्रकाशित हुआ है। —लेखक

१ ३ प्राप्तसामग्री के आधार पर अवधी की निम्नलिखित ध्वनि-ग्रामीय प्रणाली मिलती है—

व्यंजन—					
	प्	त्	ट्	च्	क्
	फ्	थ्	ठ्	छ्	ख्
	ब्	द्	ड्	ज्	ग्
	भ्	ध्	ढ्	झ्	घ्
		स्			ह्
	म्	न्			ङ
		र्			
			ड़		
		ल्			
	व्			य्	

स्वर—अ (ə), आ (a), इ (I), ई (i), उ (U), ऊ (u), ए (e), **औ** (æ)

अनुनासिकता—[नेज़लाइज़ेशन] ̣

विवृति—(जंक्चर)—१. आंतरिक—+

काकु—(पिच)—१, २, ३, (निम्न, मध्य, उच्च)।

१.४. १ **व्यंजन**— अ० = अघोष

स० = सघोष

व्यञ्जन

			ओष्ठ्य	वर्त्स्य	मूर्धन्य	तालव्य	कण्ठ्य	काकल्य
अवरोधी स्पर्श		अ० अल्पप्राण	प्	त्	ट्	च्	क्	
		अ० महाप्राण	फ्	थ्	ठ्	छ्	ख्	
		स० अल्पप्राण	ब्	द्	ड्	ज्	ग्	
		स० महाप्राण	भ्	ध्	ढ्	झ्	घ्	
अवरोधी	संघर्षी			स्				ह
	नासिक्य		म्	न्				ङ
	लुंठित			र्				
	पार्श्विक			ल्				
	उत्क्षिप्त				ड़्			
	अर्धस्वर		व्			य्		

१.५. १ प्रथम पंक्ति के व्यंजन अघोष अल्पप्राण स्पर्श व्यंजन हैं।

।प्। द्वयोष्ठ्य स्पर्श है; यथा पार्—कपार—पाप्

।त्। वर्त्स्य स्पर्श है; यथा तार्— पातर् – तात्

।ट्। मूर्धन्य स्पर्श है; यथा टेरी (आम की पत्तों सहित टहनी)—मट्र-बाट

।च्। तालव्य स्पर्श संघर्षी है; यथा चाल्—अँचार—नाँच्

।क्। कंठ्य स्पर्श है : कार् (काम)—सिर्का—नाक्

१.५. २ द्वितीय पंक्ति के व्यंजन अघोष महाप्राण स्पर्श व्यंजन हैं। उच्चारणस्थान की दृष्टि से ये व्यंजन भी ऊपर के व्यंजनों के ही समान हैं।

।फ्। फर्—सफ्र्—साफ्—इसका एक सहस्वन [फ़] हैं जो कि शब्द के अंत में आता है।

|थ्| धन्–पथरी–माथ्

|ठ्| ठाट्–ठठेरी–काठ्

|छ्| छाल्–कछार्–कोंछ्

|ख्| खार्–बोखार–पाख्

१.५. ३ तृतीय पक्ति के व्यंजन सघोष अल्पप्राण स्पर्श व्यंजन हैं। उच्चारण-स्थान की घृष्टि से ये व्यजन भी ऊपर के व्यजनों के ही समान है।

|ब्| बार्–कबार्–राब्

|द्| दान्–खदान्–कद्, हद्

|ड्| डार्–रेडियो–(अन्य स्पर्शो से इसका वितरण कम है)

|ज्| जर् (ज्वर)–काजर्–लाज् (लज्जा)

|ग्| गाल्–लगाम–नाग

१.५. ४ चौथी पंक्ति के व्यंजन सघोष महाप्राण स्पर्श व्यंजन हैं। उच्चारण-स्थान की दृष्टि से पहले के स्पर्शो के ही समान है।

|भ्| भार्–भभूत्–लाभ्

|ध्| धार्–उधार्–साध् (इच्छा)

|ढ्| ढेर् (अधिक) –बेढनी–(देढ़नी)–ठन्ढ्–इसका एक सहस्वन है [ढ़]। (ढ) आदि अथवा व्यंजन संयोगों में आता है तथा (ढ़) अन्यत्र।

|झ्| झाग्–गीझन्–सोझ्

|घ्| घर्–उघार् (खुला)–सङ्घ्

१.५. ५ पाचवीं पंक्ति के व्यंजन संघर्षी व्यंजन हैं।

|स| वर्त्स्य, अघोष व्यंजन है। सार्–ओसार्–नास् (नाश)

|ह| काकल्य, अघोष व्यंजन है। हार्–ओहार्–साह; इसका एक सहस्वन [ह़] शब्द के अंत में आता है। कभी कभी यह लुप्त भी हो जाता हैं।

१.५. ६ छठीं पक्ति के व्यंजन अनुनासिक व्यंजन है।

|म्| द्वयोष्ठ्य, सघोष, अल्पप्राण व्यंजन है। मार्–हमार्–हम्

|न्| वर्त्स्य, सघोष, अल्पप्राण व्यंजन है। नार्–किनारा–कान्। इसके तीन सहस्वन है जिनका वितरण निम्नप्रकार से है—

|न्| [ञ्] स्पर्श संघर्षी (चवर्ग) व्यंजनों के पूर्व। यथा, चञ्चल

[न्] मूर्धन्य स्पर्श व्यंजनों के पूर्व। यथा; पन्डा, किंतु इन्हें चन्चल तथा पन्डा करके ध्वनिग्रामीय रूप में ही लिखा गया है।

।न्। अन्यत्र यथा, कन्द—सन्की

।ङ। कंठ्य, सघोष, अल्पप्राण व्यंजन है। इसका वितरण अन्य अनुनासिक व्यंजनों की अपेक्षा सीमित है। यह सर्वदा कंठ्य ध्वनियों के पूर्व, शब्द के मध्य अथवा अन्त में आता है। इसको पृथक ध्वनिग्राम इसलिये माना गया है कि कंठ्य ध्वनियों के पूर्व (न्) ध्वनिग्राम भी व्यजन सयोगों में आता है। उदाहरण के लिये निम्नलिखित युग्मों मे व्यतिरेक देखा जा सकता है—

कन्खी—पङ्खी

तिन्का—सङ्का

फुन्गी—चुङ्गी

१.५. ७ सातवीं पंक्ति का व्यंजन लुंठित व्यंजन है।

।र्। वर्त्स्य, सघोष, अल्पप्राण व्यंजन है।

रार्—करम्—मार्

१.५.८ आठवीं पंक्ति का व्यंजन पार्श्विक व्यंजन है।

।ल्। वर्त्स्य, सघोष, अल्पप्राण व्यजन है।

लार्—कलाई—ताल्

१. ५. ९ नवीं पंक्ति का व्यंजन उत्क्षिप्त व्यंजन है।

।ड़्। मूर्धन्य, सघोष, अल्पप्राण व्यंजन है। इसका वितरण ।ङ्। की भाँति सीमित है। वस्तुतः 'रेडियो' शब्द के प्रचलन के पूर्व (ड़) तथा (ड्) एक ही ध्वनिग्राम के दो पृथक-पृथक संहस्वन थे जिनका वितरण निम्नप्रकार से था—

।ड्। (ड्) आदि अथवा व्यजन संयोगों में।

(ड़्) अन्यत्र

किंतु 'रेडियो' शब्द के प्रचलन से अब ।ड्। तथा ।ड़। पृथक पृथक ध्वनिग्राम हैं। ।ड्। तथा ।ड़्। का, शब्द के मध्य में, दो स्वरों के बीच में व्यतिरेक मिलता है। यथा—।पेड़ा—रेडिओ।—आजकल भी कुछ व्यक्तियों के लिये जो रेडियो शब्द से परिचित नहीं है। (ड्) तथा (ड़्) एक ध्वनिग्राम के दो सहस्वन ही हैं।

१. ५. १० दसवीं पंक्ति के व्यंजन अर्धस्वर हैं।

।य्। तालव्य, सघोष अर्द्धस्वर व्यंजन हैं। इसका वितरण बहुत ही सीमित है। यथा, । यार्। शब्द के मध्य मे जहाँ संवृत । ई अथवा इ। के बाद उससे कुछ विवृत स्वर आता है तो य् की श्रुति होती है। यथा—

। नरिअर अथवा नरियर।, । किआरी अथवा कियारी।, । खअर् अथवा खयर्।

।व्। द्वयोष्ठ्य, सघोष अर्धस्वर व्यंजन हैं। इसका भी वितरण ।य्।

की भाँति सीमित है। शब्द के मध्य में जहाँ संवृत स्वर । ऊ अथवा उ । के बाद उससे कुछ विवृत स्वर आता है तो व् की श्रुति होती है। यथा—

। सुअर् अथवा सुवर् । , । पाउदान् अथवा पावदान् ।

अर्धस्वरों का व्यंजन के ही समान प्रयोग किया गया है क्योकि ।य्। तथा ।व्। के उच्चारण में स्वरों की अपेक्षा व्यंजन के ही लक्षण अधिक हैं।

१.६ स्वरों में अ, आ को छोटा तथा बड़ा अथवा ह्रस्व–दीर्घ कहकर अभिहित किया जाता है। इसप्रकार से इन्हें एक ही ध्वनिग्राम के दो पृथक-पृथक सहस्वन होना चाहिए किंतु यह धारणा अवैज्ञानिक एवं भ्रमपूर्ण है। ।अ। तथा ।आ। दो पृथक-पृथक ध्वनिग्राम है, क्योंकि इनमें केवल मात्रा भेद ही मात्र नही है अपितु इनके उच्चारणस्थान मे भी अतर है। अतः इन्हें पृथक-पृथक ध्वनिग्राम ही मानना वैज्ञानिक एवं उचित है। इसीप्रकार ह्रस्व-दीर्घ स्वरों–यथा–इ-ई; उ-ऊ; ए-ऐ; ओ-औ के विषय में भी समझना चाहिए।

१. ६. १

।अ। यह अर्ध-विवृत मध्यस्वर है।

यथा–अज्गर्, अमर्, मार्......(आज्ञा, मारो) जब अन्त में व्यंजनों के बाद ।अ। आता है तो, प्रायः उसका उच्चारण नही किया जाता; यथा—

।अ+म्+अ+र् को अमर्। किंतु कभी कभी आज्ञा अथवा कुछ अन्य स्थलों पर शब्द के अत में ।अ। का उच्चारण होता भी है।

।आ। यह विवृत पश्चस्वर है। यथा;

आम्–मसाला–नाला। व्यंजनों के बाद जब यह आता है तो इसे व्यंजन के बाद (ा) चिह्न से लिपिबद्ध करते हैं। यथा–।न्+आ+ल्+आ=नाला।

।इ। यह संवृत अग्रस्वर है। यथा;

इम्ली–गइआ–भाइ (भाई)–इसे व्यंजन के पूर्व (ि) चिह्न द्वारा लिपिबद्ध करते हैं, यद्यपि यह व्यजन के बाद आत है। यथा—। क्+इ+स्+आ+न =किसान्।

।ई। यह संवृत, । इ। की अपेक्षा उच्चस्थानीय अग्रस्वर है। यथा;

ईंटा–सीना–माली–यह जब व्यंजन के बाद आता है तो इसे (ी) चिह्न द्वारा लिपिबद्ध करते हैं। यथा–। स्+ई+न्+आ=सीना।

।उ। यह संवृत पश्चस्वर है। यथा;

उठब्–गुर्–माँसु–गाउँ; जब यह व्यंजन के बाद आता है तो, इसे (ु) चिह्न द्वारा लिपिबद्ध करते हैं। यथा–।ग्+उ+र्=गुर।

।ऊ। यह संवृत, ।उ। की अपेक्षा उच्चस्थानीय पश्चस्वर है। यथा ऊखि-मसूर्—नाऊ। जब यह व्यंजन के बाद आता है तो इसे (ू) चिह्न द्वारा लिपि-बद्ध करते हैं। यथा—। म्+अ+स्+ऊ+र् = मसूर्।

।ए। यह अर्धसंवृत अग्रस्वर है। यथा; एक—अधेला—आगे। जब यह व्यंजन के बाद आता है तो इसे (े) द्वारा लिपिबद्ध करते हैं। यथा—। अ+ध्+ए+ल्+आ = अधेला।

।ऐ। यह अर्धविवृत अग्रस्वर है। यथा; ऐना—मैंना। जब यह व्यंजन के बाद आताहै तो इसे (ै) द्वारा लिपिबद्ध करते हैं। यथा—। म्+ऐ+न्+आ = मैंना।

।ओ। यह अर्धसंवृत पश्चस्वर है। यथा; ओला—कोस्; जब यह व्यंजन के बाद आता है तो इसे (ो) द्वारा लिपिबद्ध करते हैं। यथा —।क्+ओ+स् = कोस्।

।औ। यह अर्धविवृत पश्चस्वर है। यथा—औरत्—नौकर—इसे। जब यह व्यंजन के बाद आता है तो (ौ) द्वारा लिपिबद्ध करते हैं। यथा—।न्+औ+क्+र् = नौकर्।

१.६.२ ऐ तथा औ का उच्चारण अधिकतर 'अ ए' तथा 'अ ओ' करके किया जाता है। किंतु यहाँ की अवधी में 'बेल, तथा बैल' और 'खोल तथा खौल' आदि युग्मों में व्यतिरेक मिलता है, इसीलिए 'ऐ' 'तथा' 'औ' को भी पृथक ध्वनिग्राम माना गया है।

१.६. ३ स्वरों का मात्राकाल, उनके स्थान तथा प्रयोग पर आधारित होता है। प्राय: आदि का स्वर, शब्द के अंत में आनेवाले उसी स्वर से दीर्घ होता है। इसके अतिरिक्त एकाक्षर शब्दों में प्रयुक्त स्वर, अनेकाक्षर शब्दों के उसी स्वर से, दीर्घ होता है। यथा—इनारा—गाइ, काम्—मोकाम्।

१.६. ४ व्यंजनों के भिन्न-भिन्न प्रकारों (स्पर्श, स्पर्श-संघर्षी, अघोष, सघोष) के उच्चारण में मात्राकाल पृथक होता है। प्राय: सघोष स्पर्श व्यंजनों की अपेक्षा अघोष स्पर्श व्यंजन मात्राकाल में दीर्घ होते हैं। सघोष स्पर्श-व्यंजन जब दो स्वरों के मध्य में आता है तो उसका घोषत्व अधिक बली होता है।

१.६. ५ निरनुनासिक स्वरों की अपेक्षा अनुनासिक स्वरों का मात्राकाल अधिक होता है। यथा—

।पउसला—प्रउँसला।

१.७ महाप्राण व्यंजन जो कि अल्पप्राण+ह के बराबर हैं, ध्वनिग्राम की पृथक इकाई माने गए हैं, किंतु 'ल्ह, न्ह' आदि जोकि ल्+ह, न्+ह हैं, व्यंजन संयोग अथवा व्यंजन गुच्छ के रूपमें माने गए हैं। बात यह है कि महाप्राण व्यंजनों

'ख, घ' आदि में जो स्फोट होता है, वह अल्पप्राण व्यंजनों से पृथक नहीं किया जा सकता, अर्थात् यहाँ ध्वनि अल्पप्राण ध्वनि के साथ अत्यधिक मिली हुई रहती है, किंतु ल्ह्, न्ह् में यह प्रवृत्ति नहीं है। ल्+ह–एवं न्+ह में ल् और न् के बाद एक अल्प विराम आ जाता है। इसके अतिरिक्त महाप्राण ध्वनि के उच्चारण में जिह्वा एक ही स्थान पर टिकी रहती है किंतु 'ल्ह्, न्ह्' आदि ध्वनियों में वह एक स्थान पर नहीं रह पाती। अतः 'ख, घ' आदि व्यंजनों को ध्वनिग्राम की इकाई तथा 'ल्ह्, न्ह' को व्यंजन संयोग अथवा व्यंजनगुच्छ मानना ही अधिक संगत है।

१.८ अनुनासिकता को ध्वनिग्रामिक माना गया है, क्योंकि इसके कारण अर्थ में व्यतिरेक हो जाता है। यथा—गोद्–गोंद्; साप्-साँप्।

१.९.१ अनुनासिक व्यंजन अपने पूर्व के स्वर को अनुनासिक कर देते हैं, कभी कभी बाद के स्वर भी अनुनासिक हो जाते हैं। यथा—गाना → गाँना। सरमा → सरमाँ।

१. १० व्यंजनसंयोग–एक से अधिक व्यंजनध्वनियों के संयुक्तरूप को संयुक्त व्यंजन अथवा व्यंजनसंयोग कहा जाता है। इसके दो प्रकार के उदाहरण मिलते हैं—(१) एकरूप व्यंजनों का संयोग (२) भिन्नरूप व्यंजनों का संयोग। पक्का, खट्टा, चुप्पा आदि प्रथम प्रकार के उदाहरण हैं तथा मट्ठा, गड्डा, बर्धा आदि द्वितीय प्रकार के। आगे व्यंजन-संयोगों को विस्तार के साथ स्पष्ट किया जायगा।

१.१०.१ अवधी में आदि-व्यंजन-संयोग अधिकतर उत्तरी अवधी की बोलियों में ही मिलते हैं।

प्+र् = प्रेम् या प्राग् (प्रयाग), प्रात् (प्रातः) रूप में; स्+व = स्वामी (इसे कुछ लोग सुआमी के रूप में बोलते हैं)।

१.१०.२ प्राप्त सामग्री के आधार पर निम्नलिखित मध्य-व्यंजन—संयोग मिले हैं जिन्हें एक कोष्टक के द्वारा भी स्पष्ट किया गया है। द्रष्टव्य : कोष्ठक, स्पर्श+स्पर्श अथवा अन्य व्यंजन

प्+प्—छप्पर
प्+फ्—कप्फन्
प्+त्—हप्ता
प्+न्—सप्ना
प्+ट्—चप्टा
प्+क्—चप्का

प्+च्—उप्चार
प्+स्—लप्सी
ब्+ब्—डब्बा
ब्+भ्—जिब्भा (जिह्वा)
ब्+क्—दुब्का (छिपा हुआ)
त्+त्—पत्ता
त्+थ्—पत्थर्
त्+क्—दुत्कार्
द्+द्—गद्दा
द्+ध्—अद्धा
ट्+ट्—खट्टा
ट्+ठ्—मट्ठा
ट्+क्—खट्किरवा (आ)
ड्+ड्—कबडी
ड्+ढ्—गड्ढा
च्+च्—कच्चा
च्+छ—मच्छर्
च्+क्—हिच्की
ज्+ज्—लज्जा
ज्+झ्—खुज्झा
क्+क्—एक्का
क्+त्—चुक्ता
न्+ट्—नक्टी
क्+ठ्—लक्ठा
क्+च्—सिक्चा
क्+ख—भुक्खड़्
ग्+ग्—लग्गी
ग्+घ्—बग्घी
क्+स्—बक्सा (जानवरों के खिलाने का पौदा)

अनुनासिक+अनुनासिक तथा अन्य व्यंजन

म्—म्+लम्मा—(दूर)

म्—फ्+जम्फर्
म्—ब्+लम्बा (विस्तृत)
म्—भ्+अचम्भा, खम्भा (खम्हा)
म्—प्+घुम्पा
म्—द्+उम्दा
म्+क्—झुम्का
म्+ट्—चिम्टा
म्+छ्—गम्छा
म्+ह्—बरम्हा
म्+ल्—इम्ला
न्+न्—झन्ना
न्+प्—कन्पटी
न्+ट्—कन्टोप
न्+ठ्—कन्ठी
न्+ढ्—ठन्ढी
न्+ड्—पन्डा
न्+च्—पन्चाइत् (पञ्चाइत)
न्+ज्—पन्जा (पञ्जा)
न्+छ्—पन्छी (पञ्छी)
न्+क्—किन्की
न्+ख्—कन्खी
न्+ग्—फुन्गी
न्+घ्—घन्घोर
न्+त्—सन्ती
न्+थ्—खुन्था (खोन्था)
न्+द्—रन्दा
न्+ध्—कन्धा (या गन्धाव)
न्+स्—फुन्सी
न्+ह्—आन्हर्
ङ्+क्—सङ्का (शंका)
ङ+ख्—पङ्खा

ङ्+ग्—गङ्गा

ङ्+घ्—सङ्घी

लुंठित+अन्य व्यंजन

र्+क्—खिर्की

र्+ख्—पर्खी (एक लोहे का बना अस्त्र जिसे दीवाल आदि खोदनें मे प्रयोग किया जाता है)

र्+ग्—मुर्गा

र्+घ्—कर्घा

र्+च्—मिर्चा

र्+छ्—बर्छी

र्+ज्—दर्जी

र्+झ्—खर्झट्

र्+त्—सर्त्

र्+थ्—अर्थी

र्+द्—जर्दा

र्+ध्—बर्धा

र्+न्—चर्नामिर्त

र्+प्—खुर्पी

र्+फ्—बर्फी

र्+ब्—चर्बी या (सर्बत)

र्+म्—कुर्मी (एक जाति)

र्+र्—बेर्रा (जौ और चना मिला हुआ खाद्य पदार्थ)

र्+स्—गोर्सी

पार्श्विक+अन्य व्यंजन तथा ऊष्म (स)+अन्य व्यंजन

ल्+क् सल्कले (अच्छी तरह)

ल्+ग्—अल्गाब् (अलग होना)

ल्+च्—उल्चब

ल्+छ्—कल्छुल्

ल्+ज्—इल्जाम्

ल्+झ्—उल्झब्

ल्+त् चल्ता

ल्+थ्—पल्थी
ल्+द्—जल्दी (शीघ्र)
ल्+न्—चल्नी
ल्+ट्—उल्टा
ल्+ड्—डल्डा
ल्+फ्—गल्फर्
ल्+ब्—मतल्बी
ल्+म्—गुल्मा (ताश का एक पत्ता)
ल्+ह्—चूल्हा
स्+क्—चस्का, कस्कुट, (पीतल, ताँबा)
स्+ख्—मस्खरा
स्+च्—निस्चर्
स्+छ्—निस्छल्
स्+त्—पिस्ता, वस्ता
स्+थ्—अस्थान
स्+द्—तस्दीक
स्+ट्—मुस्टी
स्+प्—चस्पा
स्+म्—चस्मा
स्+ब्—कस्बिन्

१. १०.३ प्राप्त सामग्री के आधार पर निम्नलिखित अंत-व्यंजन-संयोग मिले हैं जिन्हें एक कोष्टक द्वारा भी दिखलाया गया है (द्रष्टव्य : कोष्टक, चित्र-३)।

न्+द्—कन्द्
न्+ध्—गन्ध्
न्+ज्—रन्ज्
न्+च्—पन्च
न्+ट्—घन्ट्
न्+स्—कन्स
न्+त्—सन्त्
न्+ठ्—लन्ठ्
न्+ड्—डन्ड्

न्+ढ्—ठन्ढ

त्+थ्—पत्थ्

ङ्+क्—रङ्क्

ङ्+ख्—संङ्ख्

ङ्+ग्—सङ्ग्

ङ्+घ्—सङ्घ्

स्+म्—भस्म

स्+त्—जुस्त

१.१०.४ प्राप्त सामग्री के आधार पर निम्नलिखित स्वरसंयोग मिले हैं जिन्हें आगे एक कोष्टक के द्वारा स्पष्ट किया गया है

इ+ई—पिई (पिऊँ)

इ+ए—सिए (सिलेगा)

इ+आ—दिआ (दीपक)

इ+उ—घिउ (घी)

ए+इ—देइ (दे)

ए+ई—देई (दूँ)

ए+ए—खेए—(खेएगा)

ए+उ—खेउ (खेओ)

अ+ई—नई (नवीन)

अ+इ—गइ (गई)

अ+ए—गएन् (गए)

अ+उ—जउ (यदि)

अ+ऊ—गऊ (गाय)

आ+ई—आई (आऊँ)

आ+इ—गाइ (गाय)

आ+ए—आए (आएगा)

आ+उ—आउ (आओ)

आ+ऊ—नाऊ (नाई)

ओ+इ—ओइ (वे ही)

ओ+ई—बोई (बोऊँ)

ओ+ए—धोएस् (धोया)

ओ+अ—बोआ (व्) न् (बोने का सामान) धोअ (व्)न्
ओ+आ—कोआ (वा)
उ+ई—घुई (सर्पत, ईख आदि में एक प्रकार का अँखुवा
जो सफेद रंग का होता है)
उइ+—दुइ (दो)
उ+ए—उए (उगेगा)
उ+अ—उअब (उगना)
उ+आ—दुआ (वा) र् (द्वार)
ऊ+ई—रूई

स्वर संयोग का चित्र

	अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ
अ			X	X	X		X			
आ			X	X	X	X	X			
इ		X		X	X		X			
ई										
उ	X	X	X	X			X			
ऊ				X						
ए			X	X	X		X			
ऐ										
ओ	X	X	X	X			X			
औ										

इस कोष्टक में स्वर-संयोग प्रदर्शित है। इनके उदाहरण ऊपर दिए गए हैं।

१.१०.५ प्रायः सभी स्वरों के अनुनासिक रूप भी स्वर-संयोग में आते हैं किंतु एक साथ एक से अधिक अनुनासिक स्वर नहीं आते।

१. १०.६ अवधी में प्रायः दो स्वरों का संयोग मिलता है किंतु कतिपय तीन स्वरों के भी संयोग मिलते हैं। प्राप्त सामग्री के आधार पर निम्नलिखित तीन स्वरों के संयोग मुख्य हैं—

अ+इ+आ—गइया (गाय)
अ+उ+आ—कउआ (कौवा)
अ+इ+उ—खाइउ (खाया?)
इ+अ+उ—बसिअउटा (वासी)
इ+आ+ऊ—सिआऊ (सिलाया?)
इ+आ+उ—सिआउ (सिलाओ)
उ+इ+आ—रुइआ (रूई)
ओ+इ+आ—डोइआ (महुवे के फल के अंदर एक ठोस पदार्थ जिसका तेल निकाला जाता है।)

१.११ अक्षर (सिलेबल)—अवधी में निम्नलिखित आक्षरिक प्रणाली मिलती है। नीचे स्वर के लिए अ तथा व्यंजन के लिए क प्रतीक का प्रयोग किया गया है।

१. अ—ए ई (यह)
२. अ क—आम्
३. अ अ क—अइँठ (गर्व)
४. क अ—घीऊ, जी (जिउ)
५. क अ क क—सम्म (पूरा)
६. क अ अ—सिउ (शिव)
७. अ क क—अस्त, मेस्त
८. अ क क अ क—इस्कूल
९. अ क अ—बार्
१०. क अ क क—मर्द्
११. अ क क क अ—इस्त्री

यहाँ ऊपर के उदाहरणों में अक्षर से तात्पर्य है— 'शब्द' के अंतर्गत उन ध्वनि-समूहों की छोटी इकाइयों से जिनका उच्चारण एक साथ हो तथा उनका कोई अर्थ हो ?"

१.१२ विवृत्ति 'अवधी' में विव्वृति ध्वनिग्राम्कि हैं क्योंकि इसके कारण शब्दों में अर्थ का अंतर हो जाता है। यथा—सिर्का और सिर्—का। इन दो युग्मों में, प्रथम में, बिना किसी विराम के उच्चारण किया जाता है जिसका अर्थ ईख के शर्बत से बना हुआ वह पदार्थ, जिसमें आम, कटहल आदि के फलों को टुकड़े के रूप में डालकर अँचार के समान खाया जाता है, होता है, किंतु द्वितीय में

सिर् के बाद क्षण भर के लिये रुककर उच्चारण होता है, और इसका अर्थ सिर का होता है ।

१.१३ अवधी मे यद्यपि सुर का कोई विशेष महत्व नही है, किंतु फिर भी यदाकदा इसके प्रयोग से अर्थ में भिन्नता आ जाती है। अतः यह भी ध्वनिग्रामिक है। सुर की भिन्नता को अवधी मे पूर्ण दक्ष व्यक्ति ही समझ सकता है, अन्य भाषा-भाषियो को सुर के कारण अर्थ में अतर नही प्रतीत होता। सुर के कारण उत्पन्न अतर को एक वाक्य तथा शब्द के द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है ।

(१) २ तूँ + २घरे + २जाथय१— (सामान्य कथन)
(२) ३ तूँ + २घरे + २जाथय१– (तुम घर जा रहे हो अन्य कोई नहीं)
(३) २ तूँ + ३घरे + २जाथय१– (तुम क्या घरे जा रहे हो?)
(४) २ तूँ + २घरे + ३जा + थय१– (तुम घर जा रहे हो क्या ? नहीं)

इसी को हम निम्न ढंग से भी प्रदर्शित करते है—

(१) २तूँ + २ घरे + २जाथय१

(२) ३तूँ+घरे+ जा थ य१
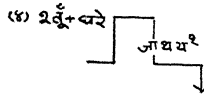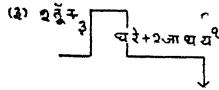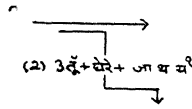
सुर के आरोह तथा अवरोह का व्यतिरेक प्रश्न एवं आज्ञा वाले वाक्यों में देखा जा सकता है । आरोह अवरोह को निम्नरूप से स्पष्ट करना अधिक सुविधा जनक होता है—
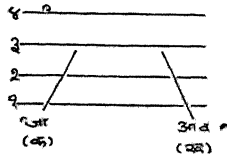
(क) में सुर १ (निम्न) से तीन (उच्च) स्तर तक गया है। यह आज्ञा का रूप है।

(ख) में सुर३ (उच्च) से १ (निम्न) स्तर तक आया है। यह एक प्रकार से विनम्र आज्ञा है।

इसी प्रकार के अन्य उदाहरण भी भाषा में देखे जा सकते हैं। यथा—
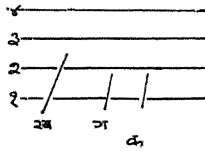
इस उपर्युक्त उदाहरण में क के द्वारा प्रश्न ज्ञात होता है किंतु ख तथा ग के द्वारा आज्ञा। ख में सुर का स्तर १ से ३ को जाता है किंतु इसी को ग के समान भी दिखा सकते हैं जिसमें कि सुर का स्तर १ से २ तक जाता है।

१३

भोजपुरी के ध्वनिग्राम*

डा० उदयनारायण तिवारी

'भोजपुरी भाषा और साहित्य' में मैंने भोजपुरी ध्वनियों (Phones) का अध्ययन प्रस्तुत किया है। इस लेख में उसके ध्वनि-ग्रामों का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। इस अध्ययन के लिए लेखक स्वयं सूचक (Informant) है। इन ध्वनि-ग्रामों का क्षेत्र मोटे तौर पर पश्चिमी बिहार तथा पूर्वी उत्तरप्रदेश है।

१. भोजपुरी के ध्वनिग्राम निम्नलिखित है—

क. व्यञ्जनीय (३१)

		ओष्ठ्य	वर्त्स्य	मूर्धन्य	तालव्य	कण्ठ्य	काकल्य
अवरोधी	स्पर्श	प् फ् ब् भ्	त् थ् द् ध्	ट् ठ् ड् ढ्	च् छ् ज् झ्	क् ख् ग् घ्	
	संघर्षी		स्				ह्
अनवरोधी	नासिक्य	म्	न्	×	ञ्	ङ	
	कम्पन-जात		र्				
	ताडन-जात			ड़्			
	पार्श्विक		ल्				
	अर्धस्वर	व्			य्		

ख. स्वरीय (१०)

***यह निबन्ध "हिन्दी अनुशीलन" के डा० धीरेन्द्रवर्मा विशेषांक में प्रकाशित हुआ है।**

—लेखक

	अग्र अवृत्ताकार	मध्य अवृत्ताकार	पश्च वृत्ताकार
संवृत	इ		उ
अध संवृत	ए ।	ऽ	ओ´
विवृत	ए	अ	औ´

(ग) अतिखण्डीय ध्वनिग्राम (Supra-segmental Phonemes)
(i) दीर्घता (Length) अनुनासिकता (Nasalisation) यथा—।बासा।,।बाँस।

१. उच्चारण-प्रयत्न के अनुसार भोजपुरी—व्यञ्जन इसप्रकार हैं—स्पर्श (२०), संघर्षी (२), नासिक्य (४) ,कम्पन-जात (१) ताडन-जात (१), पार्श्विक (१) अर्धस्वर (२) । उच्चारण-स्थान के अनुसार ये व्यञ्जन इस प्रकार हैं—द्वयोष्ठच (६) वत्सर्य (८) मूर्धन्य (५), तालव्य (७), कण्ठच (६), काकल्य (१) । उच्चारण के सम्बन्ध में यह बात उल्लेखनीय है कि भोजपुरी में वर्त्स्यस्पर्शों का उच्चारण ज़रा आगे से होता है। इनका उच्चारण-स्थान वस्तुतः वर्त्स्य तथा दन्त्य के बीच में है । इसीप्रकार भोजपुरी के मूर्धन्यों में मूर्धन्य भाव कम मात्रा में मिलता है।

स्पर्श

।प्। : [प्] द्वयोष्ठच अघोष अल्पप्राण ।पाग्।
।फ्। : [फ्] " " महाप्राण ।फाग्।
।ब। : [ब्] " सघोष अल्पप्राण ।बाग्।
।भ्। : [भ्] " " महाप्राण ।भाग्।
।त्। : [त्] वर्त्स्य अघोष अल्पप्राण ।तान्।
।थ्। : [थ्] " " महाप्राण ।थान्।
।द्। : [द्] " सघोष अल्पप्राण ।दान्।
घ्। : [ध्[" " महाप्राण ।धान्।
।ट्। : [ट्] मूर्धन्य अघोष अल्पप्राण ।टाट्।
।ठ्। : [ठ्] " " महाप्राण ।ठाट्।
।ड्। : [ड्] " सघोष अल्पप्राण ।डाट्। (सीमेंट से ईंटे जोड़ना)
।ढ्। : [ढ्] " " महाप्राण ।ढाठी। (दो डंडों के बीच गर्दन दबाकर प्राण ले लेना।)
।च्। : [च्] तालव्य अघोष अल्पप्राण ।चाक्।
।छ्। : [छ्] " " महाप्राण ।छाक्। (देवी के लिए एक प्रकार का शर्बत)

|ज्| : [ज्] " सघोष अल्पप्राण जट्|| (जटा)

|झ्| : [झ्] " " महाप्राण |झट्| (जल्दी)

क्| : [क्] कण्ठ्य अघोष अल्पप्राण |कोरा|

|ख्| : [ख्] " " महाप्राण |खोरा| (पात्र विशेष)

|ग्| : [ग्] " सघोष अल्पप्राण |गोरा|

|घ्| : [घ्] " " महाप्राण |घोड़ा|

संघर्षी

|स्| : [स्] वर्त्स्य अघोष महाप्राण |साथ्|

|ह्| : [ह] काकल्य सघोष " 'हाथ्|

नासिक्य

|म्| : [म्] द्वयोष्ठ्य सघोष अल्पप्राण |मान्|

|न्| : [न्] वर्त्स्य सघोष अल्पप्राण |नाम्|

ञ्| : [ञ्] तालव्य " "|सञा| (पति)

|ङ्| : [ङ्] कण्ठ्य " " |भाङ्|

कम्पन-जात

|र्| : [र्] वर्त्स्य सघोष अल्पप्राण |फेर्|

ताडन-जात

|ड़्| : [ड़्] मूर्धन्य सघोष अल्पप्राण |फेड़| (पेड़्)

पार्श्विक

|ल्| : [ल्] वर्त्स्य सघोष अल्पप्राण |माल्| (पशु)

अर्धस्वर

|व्| : द्वयोष्ठ्य सघोष |परवाह्|

|य्| : तालव्य " |करिया| (काला)

स्वर

१.२. जिह्वा की ऊँचाई, उसके स्थान एवं होठों की स्थिति (वृत्ताकार, स्वल्प वृत्ताकार तथा पूर्ण उन्मुक्तता) के कारण, स्वरों के उच्चारण में वैषम्य आ जाता है। इस सम्बन्ध में भोजपुरी में उपलब्ध तथ्य नीचे दिये जाते हैं—

अग्र-अवृत्ताकार

|इ| संवृत (उच्च) |बिना|

|ई| " |बीना|

|ए| अर्धसंवृत (मध्य) |बेंनाम्|

।ऐं।	विवृत	(निम्न)	।वैनामा।	
।ऐ।		"	।वैना।	

मध्य-अवृत्ताकार

।ऽ।	अर्धसंवृत	(मध्य)	।फ्ऽन्।	(जैसे 'फ्ऽन्' से जल जाना)
।ऽः।	"	"	।फ्ऽःन्।	(फल्दा)
।अ।	विवृत	(निम्न)	।हलचल्।	
।अः।	"	"	।ह् अः ल् :	(नमी)

पश्च-वृत्ताकार

।उ।	संवृत	(उच्च)	।खुन्।	('खुन् खुन्' में)
।ऊ।	"	"	।खून्।	
।ओं।	अर्ध	(मध्य)	।दोस्।	(दोस्त)
।ओ।	"	"	।दोस्।	(दोष)
।औ।	विवृट	(निम्न)	।कौन।	(चावल का कण)
।औ।	"	"	।कौन्।	(कन्द)

सर्वाधिक प्रचलित आक्षरिक आकृति

२. भोजपुरी में अक्षर का आरम्भ या व्यञ्जन से होता है। आरम्भ में व्यञ्जन संयोग सम्भव नहीं है। भोजपुरी में सर्वाधिक प्रचलित आक्षरिक-आकृति (Sylliabic pattern) निम्नलिखित है—

(स) व स व (व) —अनन्त; (स) व स व स (स) —अतना
(स) स व व स (स) —आत्मा; (स) व स व व स (स) —अवस्था

सम्भावित असम स्वर-संयोग

२.१ भोजपुरी में 'सम्भावित असम स्वर संयोग' के निम्नलिखित रूप उपलब्ध हैं—

अइ	—पइसा	(पैसा);	अउ	—कउआ	(कौआ)
इअ	—दिअरी	(छोटा दीपक);	उअ	—पुअरा	(पुआल)
ओंअ	—धोंअल्	(धोया हुआ);	एआ	—सेंआन्	(सयाना)

सम्भावित व्यञ्जन-संयोग

२.२ भोजपुरी के व्यञ्जन-संयोग के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

प्प्—खप्पर्, थप्पड़् ; प्फ्—हप्फर् ; प्त्—कप्तान्, जप्त; प्न्—सप्ना; प्ट्—खप्टा ; प्च्—खप्चा ; पक्—चप्कन् ; प्ल्—घप्ला ; प्स्—झप्सी;

ब्ब्—रब्बी, कब्बों ; ब्भ्—चब्भा ; म्ब्—लम्बर ; मम्—अम्मा—म्त्—अम्ता ; म्द्—उम्दा ; म्ट्—गुम्टी ; म्छ्—गम्छा ; म्ह—पम्हा; म्ल्—गम्ला; तत्—पत्ता ; तथ्—पत्थल; त्क्—कोत्का ; द्द्—चद्दरि ; द्ध्—बद्धी; न्प्—पन्पल्; न्न्—पन्नी, न्ट्—घन्टा; न्ड्—पन्डा; न्छ्—पन्छी; न्ह्—आन्हर ; ट्ट्—पट्टा, ट्ठ्—पट्ठा; ट्क्—फट्का; ड्ड्—गड्डी; च्च्—बच्चा; च्छ्—बच्छा; ज्ज्—लज्जा ; ज्झ्—खुज्झा; क्प्—कप्टी ; क्त्—चक्ता; क्न्—चक्ना ('चकनाचूर' में); क्ट्—कक्टा ; क्ठ्—पक्ठा; क्च्—फोक्चा ; क्क्—मुक्का ; क्ख्—अक्खड़ ; क्स—बक्सा, भक्सा ; ग्त्—मंग्ता ; ग्ट्—लंग्टा ; ग्ठ्—भग्ठा ; ग्ग्—डुग्गी ; ग्ल्—बग्ली ; र्प—खर्पा ; र्फ—बर्फी ; र्म्—गर्मी; र्द्—गर्दा; र्छ—बर्छी ; र्ज्—दर्जी ; र्ग्—गर्ग ; र्ह—मार्ह; ड़ह्—सॉड़्ह्; ल्ब्—गल्बा; ल्त्—गल्ता ; लद्—जल्दी ; ल्न्—जल्नी ; ल्ट्—पल्टा ; ल्क्—गल्का ; ल्ह—माल्ह ; स्प्—इस्पात ; स्म्—चस्मा ; स्त्—जस्ता; सक्—इस्कूल; स्ख्—मस्खरा ; स्स्—मिस्सी ।

अन्त्य व्यञ्जन

२,३. 'ढ्' एवं 'ञ्' के अतिरिक्त भोजपुरी के अन्य सभी व्यञ्जन संवृत अक्षर (Closed syllable) के अन्त में सम्भव हैं। इसके उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(१) नाप्, (२) बाफ्, (३) राब्, (४) नाभ्, (५) नाम्, (६) नात्, (७) नाथ् (८) नाद्, (९) बाध्, (१०) बान्, (११) टाट्, (१२) काठ्, (१३) खंड्, (१४) खाँच्, (१५) गाँछ्, (१६) गाज् (१७) बाझ्, (१८) चाक् (१९) राख्, (२०) राग्, (२१) बाघ्, (२२) भाङ्, (२३) चाह् (२४) नार्, (२५) फेङ्, (२६) जाल् (२७) पाव्, (२८) राय्, (२९) पास् ।

१४

हिंदी के आकारांत संज्ञा शब्द[1]

डॉ० महावीरसरन जैन एम. ए. डी. फिल्० साहित्यरत्न

१. प्रत्येक भाषा के अन्तर्गत वाक्य या उच्चार होते हैं। ये उच्चार, उस भाषा की कुछ विशिष्ट ध्वनियों, जिन्हें ध्वनिग्राम के नाम से पुकारा जाता है, से निर्मित होते हैं। इन विशिष्ट ध्वनियों अथवा ध्वनिग्रामों का अपना कोई अर्थ नहीं होता।[2] ये केवल अर्थभेदक क्षमता रखते हैं। किन्तु इन ध्वनिग्रामों के विशेष समायोजन से एक अर्थ की प्राप्ति होती है।

२. भाषा की 'अर्थ' अथवा व्याकरणिक प्रणाली की न्यूनतम इकाई पद है। किसी भाषा के अर्थवान् उच्चारों के अन्तर्गत न्यूनतम अर्थवान् तत्व पद ही होते हैं। ध्वनिग्रामों के प्रत्येक प्रकार का अर्थवान् आवर्तन पद नहीं है, इसके लिये न्यूनतम या अल्पतम प्रकार का अर्थवान् आवर्तन होना अनिवार्य है। इसी कारण किसी पद को दो अन्य अर्थवान् तत्वों में विखंडित नहीं किया जा सकता।

३. पद ध्वनिग्राम से बड़ा होता है। प्रत्येक पद कम से कम एक ध्वनिग्राम का अवश्य होता है[3]; एक से अधिक ध्वनिग्रामों को भी यह सँजो सकता है।

४. भाषा की अर्थहीन इकाई ध्वनि अथवा ध्वनिग्राम है और अर्थयुक्त इकाई पद अथवा पदग्राम है। जिसप्रकार ध्वनिग्रामशास्त्र में जो ध्वनियाँ ध्वन्यात्मक समानता रखती हैं तथा परिपूरक वितरण अथवा मुक्त परिवर्तन में होती हैं, उन्हें एक ध्वनिग्रामरूप में संबद्ध किया जाता है तथा ध्वनिग्राम के अंग 'सहस्वन' कहलाते हैं उसीप्रकार पदग्राम-शास्त्र में जो पद एक दूसरे को स्थानापन्न करते हैं अर्थात्

---

१. (हिन्दी के आकारान्त संज्ञा शब्दों का पदग्रामिक विश्लेषण एवं वर्गबन्धन)। प्रस्तुत निबन्ध नागरी प्रचारिणी पत्रिका के वर्ष ६६, अंक २-४ मालवीय शती विशेषांक में प्रकाशित हुआ है।

२. दि स्ट्रक्चर आव् अमेरिकन इंग्लिश, डब्लू० नेल्सन फ्रांसिस पृ० १६३।

३. इंट्रोडक्शन टु लिंग्विस्टिक स्ट्रक्चर्स, आर्चिबाल्ड ए० हिल, पृ० ८९।

अर्थगत समान होते हैं तथा परिपूरक वितरण या मुक्त परिवर्तन में आते हैं, उन्हें 'पदग्राम' रूप में संबद्ध किया जाता है तथा पदग्राम के अंग 'सहपद' कहलाते हैं।

५. पदग्रामशास्त्र खंडित पदग्रामों के समूह की विधि का अध्ययन है। दूसरे शब्दों में पदग्रामशास्त्र भाषाशास्त्र की वह कला है जिसके अन्तर्गत उच्चारों को अर्थवान् तत्वों में खंडित किया जाता है तथा उस विधि का प्रतिपादन किया जाता है जिससे शब्दों का निर्माण होता है।

६. हिन्दी भाषा के अन्तर्गत लड़का, घोड़ा, राजा इत्यादि पुंलिग आकारांत संज्ञा शब्द कहे जाते हैं। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि क्या ये शब्द ही पदग्राम हैं? अथवा इन शब्दों में एक से अधिक पद या पदग्राम हैं। इसी के साथ यह भी समस्या उठती है कि शब्दों का पदग्रामिक विश्लेषण किस विधि से संपन्न करना चाहिए? उक्त प्रश्नों पर विचार करने के लिए सर्वप्रथम हमें 'पद' एवं 'शब्द' के अन्तर को स्पष्ट करना होगा। इस अन्तर को ठीक प्रकार समझे बिना कुछ विद्वानों ने भ्रान्त विचार प्रकट किए है। 'पाणिनि' के मत से 'शब्द' एवं 'पद' में जो अन्तर है, वह भाषाशास्त्र (जो मूलतः अधुनातम अमेरिकन भाषाशास्त्रियों के अध्ययन पर आधारित है) की दृष्टि से सर्वथा भिन्न है। शायद पाणिनीय परम्परा के कारण ही एक विद्वान् ने अपने विचार यों दिए हैं—

२. मूल रूपग्राम ही प्रत्यय और परसर्गों के योग से 'पद' का रूप ग्रहण करता है।[४]

वस्तुतः मूल रूपग्राम (बेस् मार्फीम्) भी एक पद है एवं प्रत्येक प्रत्यय तथा परसर्ग अलग अलग पद हैं। मूल रूपग्राम में प्रत्यय और परसर्गों के योग से शब्द या उच्चार का निर्माण हो सकता है, 'पद' का नहीं। 'सामान्यतः शब्द पदग्राम से अधिक बड़े होते हैं'।[५] शब्द में एक या एक से अधिक भी पद हो सकते हैं, किन्तु पद शब्द से बड़ा नहीं हो सकता क्योंकि पद स्वतः न्यूनतम अर्थवान् तत्व होता है। भाषाशास्त्रीय दृष्टिकोण से 'शब्द' किसी भी ऐसे 'भाषीय रूप' के लिये प्रयुक्त किया जा सकता है जो 'वितरण' तथा 'अर्थ' में अपने आप में पूर्णतया 'स्वतन्त्र' हो। 'पद' के लिये न्यूनतम अर्थवान् तत्व तो होना आवश्यक है ही, इसके साथ ही प्रत्येक 'पद' का 'वितरण' भी 'स्वतंत्र' नहीं होता। केवल 'मुक्त

४. व्रजभाषा के लिंग वचनीय रूपग्राम, डा० अंबाप्रसाद 'सुमन', हिंदुस्तानी, भाग २२, अंक २।

५. ए कोर्स इन माडर्न लिंग्विस्टिक्स, चार्ल्स एफ० हाकेट, पृ० १६७।

रूप' पद ही स्वतंत्ररूप में वितरित हो सकते हैं किन्तु 'आबद्धरूप' पद कभी भी एक 'स्वतंत्र' इकाई के रूप में नहीं आते, अपितु एक या अधिक पदों के साथ जुड़ कर ही सदैव वितरित होते हैं ।

७. पदग्रामशास्त्र के अन्तर्गत सर्वप्रथम उच्चारों का पदग्रामिक विश्लेषण किया जाता है । 'पदग्रामिक विश्लेषण वह विधि है जिसके द्वारा प्रत्येक उच्चार में प्राप्त पदग्रामों को विभाजित किया जाता है ।[६]

इस प्रकार के विभाजन करते समय दो प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठते हैं—

१. प्राप्त उच्चार के कुछ खंडों का अन्य उच्चारों में लगभग उसी समान अर्थ में प्रयोग होता है अथवा नहीं ?

यदि उच्चार के खंडों का अन्य उच्चारों में लगभग उसी समान अर्थ में प्रयोग नहीं होता है तो हम पदग्रामिक विश्लेषण नहीं कर सकते । इसका कारण यह है कि ऐसी दशा में उस उच्चार को किसी भी रीति से विभाजित किया जा सकता है। पदग्रामिक विश्लेषण के लिये यह आवश्यक है कि उसके कुछ खंड अन्य उच्चारों में लगभग समान अर्थ में अवश्य प्रयुक्त हों ।

२. दूसरा प्रश्न यह उठता है कि खंडित रूप अन्य अल्पतम अर्थवान् रूपों में विभक्त किया जा सकता है या नहीं ? यदि प्राप्त रूप अन्य अल्पतम अर्थवान् रूपों में विभक्त किया जा सकता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि वह रूप पद से अधिक बड़ा है क्योंकि ध्वनिग्रामों के न्यूनतम अर्थयुक्त आवर्तन को ही पद कहते हैं ।

इन प्रश्नों के यथोचित समाधान होने पर किसी उच्चार में प्राप्त पदों को ठीक प्रकार से छाँटा जा सकता है ।

१.१ १. हिन्दी भाषा के अन्तर्गत लड़का, घोड़ा, राजा, चाचा, मामा, दादा, जाड़ा, बच्चा आदि आकारांत संज्ञा शब्द पाए जाते हैं ।

उपर्युक्त समस्त शब्द संज्ञाविभक्तिमय हैं। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि संज्ञा प्रतिपादिक रूप शब्दों के कौन से खंड हैं एवं उनमें कौन सी विभक्तियाँ संयुक्त हैं तथा उनसे किन अर्थों की अभिव्यक्ति हो रही है । इसके साथ ही ये भी प्रश्न उठते हैं कि क्या समस्त आकारांत शब्दों का पदग्रामिक विश्लेषण एक ही विधि से होगा ? क्या सभी एक ही रूप वर्ग के हैं ? क्या सभी रूपों के अन्य कारक, वचन एवं लिंग के रूप एक ही समान निष्पन्न होते हैं ?

---

६. मेथड्स इन स्ट्रक्चरल लिंग्विस्टिक्स, जेलिग एस० हैरिस, पृ० १५६ ।

२. हिंदी भाषा में संबोधन को छोड़कर दो कारक—अविकारी तथा विकारी, दो वचन—एक वचन तथा बहुवचन तथा दो लिंग—पुंलिंग तथा स्त्रीलिंग हैं। प्रत्येक संज्ञा प्रातिपदिक के पुलिंग एवं स्त्रीलिंग रूप नहीं बनते हैं। इस दृष्टि से संज्ञा प्रादिपदिक को दो भागों में बाँटा जा सकता है—

१. ऐसे संज्ञा प्रातिपदिक जिनके पुंलिंग एवं स्त्रीलिंग दोनों रूप बनते हैं।

२. ऐसे संज्ञा प्रातिपदिक जिनमें या तो केवल पुंलिंग विभक्तियाँ अथवा केवल स्त्रीलिंग विभक्तियाँ ही संयुक्त होती हैं।

३. जब कोई संज्ञा प्रातिपदिक संज्ञा विभक्तिमय पद बनता है अर्थात् संज्ञा प्रादिपदिक में संज्ञा के किसी रूप का कोई विभक्तिप्रत्यय संयुक्त होता है तो वह विभक्तिप्रत्यय, लिग, वचन तथा कारक की एक साथ अभिव्यक्ति कराता है। इस दृष्टि से लड़का, घोड़ा, राजा, दादा, बच्चा, मामा इत्यादि संज्ञा शब्दों (जो संज्ञा विभक्तिमय पद भी हैं) के प्रातिपदिक अंश के पश्चात् जिन विभक्तियों का योग हुआ है, वे पुंलिंग, एकवचन, अविकारी कारक की अभिव्यक्ति करती हैं।

४. किसी रूपवर्ग संज्ञा के आकारांत शब्दों के प्रातिपदिक अंशों के पश्चात् समान (ध्वनिग्रामशास्त्र की दृष्टि से) विभक्तियों का योग नहीं होता है। पुंलिग, एकवचन, अविकारी कारक के अतिरिक्त अन्य लिंग, वचन एवं कारक के रूपों में विभक्तियों में इतना वैषम्य पाया जाता है कि हम संज्ञावर्ग के उपवर्ग बनाए बिना अध्ययन नहीं कर सकते हैं। अतः कौन कौन से संज्ञा शब्द संज्ञावर्ग के किस उपवर्ग में आते हैं, इसके लिये समस्त शब्दों या उच्चारों का रूपतालिकानुसार विवेचन करना आवश्यक हो जाता है।

१.२ आकारांत संज्ञा शब्दों के समस्त कारक, वचन एवं लिंग के अनुसार, वर्ग एवं उपवर्ग कुछ उदाहरणों सहित इसप्रकार बनाए जा सकते हैं—

सर्वप्रथम हम लिंग की दृष्टि से समस्त रूपों को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—

१. २. १. पुंलिग तथा १. २.२. स्त्रीलिंग।

जिन प्रातिपदिकों से पुंलिग तथा स्त्रीलिंग दोनों रूप बनते हैं, उनमें दोनों लिंगों का एक ही मूल अथवा प्रातिपदिक माना जायगा। जिन प्रातिपदिकों में केवल एक ही लिंग की विभक्तियाँ संयुक्त होती हैं, उनमें वह प्रातिपदिक केवल उस विशेष लिंग के लिए प्रयुक्त होगा। यह विवेचन इसलिये किया गया है कि इस असमानता के कारण शब्दों के पदग्रामिक विश्लेषण में भी अन्तर पड़ सकता है।

इन दो भागों के समस्त वचन एवं कारकों के अनुसार इसप्रकार रूप निष्पन्न होते हैं—

१.२.१. पुंलिग

१. एक वचन अविकारी कारक

लड़का
घोड़ा
बच्चा — आ रहा है।
जाड़ा
छोरा
मामा
दादा
राजा

२. एकवचन विकारी कारक

२. १.
मामा
छोरा
इस चाचा — को यह वस्तु दे दो।
दादा
राजा

२. २.
लड़के
इस घोड़े — को यह वस्तु दे दो।
बच्चे

३. बहुवचन अविकारी कारक

३.१.
मामा
छोरा
चाचा — आ रहे हैं।
दादा
राजा

३. २.
लड़के
घोड़े — आ रहे हैं।
बच्चे

४. बहुवचन विकारी कारक

४. १.

	मामाओं	
	छोराओं	
इन	चाचाओं	को यह वस्तु दे दो।
	दादाओं	
	राजाओं	

४. २.

	लड़कों	
इन	घोड़ों	को यह वस्तु दे दो।
	बच्चों	

१ २. २. स्त्रीलिंग

१. एकवचन अविकारी कारक

	लड़की	
	घोड़ी	
	बच्ची	
वह	छोरी	आ रही है।
	मामी	
	दादी	
	चाची	

२. एकवचन विकारी कारक

	लड़की	
	घोड़ी	
	बच्ची	
उस	छोरी	को दो।
	मामी	
	दादी	
	चाची	

३. बहुवचन अविकारी कारक

	लड़कियाँ	
	घोड़ियाँ	
वे	बच्चियाँ	आ रही हैं।
	छोरियाँ	

मामियाँ
दादियाँ
चाचियाँ

४. बहुवचन विकारी कारक

लड़कियों
घोड़ियों
बच्चियों
उन छोरियों को दो।
मामियों
दादियों
चाचियों

१.३.

पुंलिंग एकवचन अविकारी तथा पुंलिंग बहुवचन विकारी कारक में प्रातिपदिकों के पश्चात् विभक्तियों की असमानता को लक्ष्य में रखते हुए ही समस्त उच्चारों का पदग्रामिक विश्लेषण करना चाहिए, क्योंकि इस असमानता के कारण पदग्रामिक विश्लेषण में भी अन्तर पड़ सकता है।

	१	२	३	४	५	६	७	८
पुं. ए. अवि.	छोरा	मामा	चाचा	दादा	राजा	लड़का	घोड़ा	बच्चा
पुं. ए. वि.	छोरा	मामा	चाचा	दादा	राजा	लड़के	घोड़े	बच्चे
पुं. बहु. अवि.	छोरा	मामा	चाचा	दादा	राजा	लड़के	घोड़े	बच्चे
पुं. बहु. वि.	छोराओं	मामाओं	चाचाओं	दादाओं	राजाओं	लड़कों	घोड़ों	बच्चों
स्त्री. ए. अवि.	छोरी	मामी	चाची	दादी	×	लड़की	घोड़ी	बच्ची
स्त्री. ए. वि.	छोरी	मामी	चाची	दादी	×	लड़की	घोड़ी	बच्ची
स्त्री. बहु. अवि.	छोरियाँ	मामियाँ	चाचियाँ	दादियाँ	×	लड़कियाँ	घोड़ियाँ	बच्चियाँ
स्त्री. बहु. वि०	छोरियों	मामियों	चाचियों	दादियों	×	लड़कियों	घोड़ियों	बच्चियों

इन समस्त उच्चारों के निम्नलिखित न्यूनतम अर्थवान् खंड होंगे—

।छोर्–। ।माम्–। ।चाच्–। ।दाद्–। ।लड़क्–। ।बच्च्–। ।घोड़–।
।आ। ।ए। ।ओं। ।ई। ।इयाँ। ।इयों।

सं० ५ के उच्चारों 'राजा, राजा, राजा, राजाओं' का पदग्रामिक विश्लेषण दो प्रकार से संभव है—

१. ।राज–। ।आ। ।ओं। राजा। ।(।)। ।ओं।

वर्गबंधन

१. परंपरागत हिंदी व्याकरणों अथवा प्रकाशित हिन्दी भाषा का अध्ययन करनेवाली पुस्तकों में सं० १ से ५ छोरा, मामा, चाचा, राजा आदि प्रकार के शब्दरूपों का विवेचन प्रायः नहीं मिलता। अन्य शब्दरूपों में उपलब्ध विभक्तियों को इसप्रकार प्रदर्शित किया गया है––

पुंलिंग आकारांत प्रातिपादिक	एकव०	बहुव०
अविकारी कारक	०	––ए
विकारी कारक	––ए	––ओं
स्त्रीलिंग ईकारांत प्रातिपदिक	एकव०	बहुव०
अविकारी कारक	०	––(इ)––याँ
विकारी कारक	०	––(इ)––यों

भाषाशास्त्रीय दृष्टि से इस विधि में निम्नलिखित त्रुटियाँ हैं––

१. पुंलिग आकारांत प्रातिपदिक नहीं है। यदि लड़का पुं० आकारांत प्रातिपदिक है तो छोरा भी पुं० आकारांत प्रातिपदिक हुआ, किन्तु दोनों संज्ञा प्राति-पदिकों के, दो भिन्न उपवर्गों के सदस्य हैं।

२. वस्तुतः प्रातिपदिक 'आकारांत' न होकर व्यंजनांत है। व्यंजनांत प्रातिपदिक में 'आ' विभक्ति संयुक्त होती है।

३. यदि 'लड़का' प्रातिपदिक मानते हैं एवं 'ए' तथा 'ओं' विभक्तियाँ प्रातिपदिक में जुड़ती हैं तो इस दृष्टि से संज्ञा-विभक्तिमय पदरूप लड़काए एवं लड़काओं होना चाहिए, लड़के अथवा लड़कों नहीं।

२. अधुनातम भाषाशास्त्रीय दृष्टिकोण के आधार पर संज्ञा प्रातिपदिकों के उपवर्ग बनाकर अध्ययन कर सकते हैं। उपवर्गों में ध्वनिग्राम की दृष्टि से भिन्न किन्तु एक ही व्याकरणीय अर्थ की अभिव्यक्ति करानेवाली विभक्तियाँ वितरण में परिपूरक कहलायेंगी, इस कारण एक पदग्रामरूप में संबद्ध की जा सकेंगी।

संज्ञा प्रातिपदिकों के उपवर्ग तथा विभक्तियाँ

[क] ।राजा।

[ख] ।छोर्। ।माम्। ।चाच्। ।दाद्।

[ग] ।लड़क्। ।बच्च्। ।घोड़।

क. पुंलिंग	एकवचन	बहुवचन
अवि०	(।)	(।)
विकारी	(।)	ओं
संबोधन	(।)	ओ

इस वर्ग के अन्तर्गत राजा इत्यादि जैसे प्रातिपदिक आते हैं।[७]

ख.

	पुंलिग			स्त्रीलिंग
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
अविकारी	—आ	—आ	—ई	—इयाँ
विकारी	—आ	—आ-ओं	—ई	—इयों
संबोधन	—आ	—आ-ओं	—ई	—इयो

इस वर्ग के अन्तर्गत। छोर्—।माम्—।चाच्—। दाद्—। इत्यादि जैसे संज्ञा प्रातिपदिक आते हैं। इन सभी प्रातिपदिकों में ऊपर प्रदर्शित विभक्तियाँ जुड़ती हैं।

इसका दूसरा निदान भी संभव है। 'आ' एवं 'ई' को क्रमशः पुंलिग व्युत्पादक प्रत्यय एवं स्त्रीलिंग व्युत्पादक प्रत्यय के रूप में भी स्वीकृत किया जा सकता है। यह रूप इसप्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है—

छोर्—मूल+आ व्युत्पादक प्रत्यय = छोरा = पुं० प्रातिपदिक छोर्—मूल+ई व्युत्पादक प्रत्यय = छोरी = स्त्री० प्रातिपदिक—

ग.	पुंलिग			स्त्रीलिंग
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
अविकारी	—आ	—ए	—ई	—इयाँ
विकारी	—ए	—ओं	—ई	—इयों
संबोधन	—आ	—ओ	—ई	—इयों

इस वर्ग के अन्तर्गत। लड़क्—। घोड़्—। एवं।बच्च्—। जैसे संज्ञा प्रातिपदिक आते हैं।

इस वर्ग के दूसरे निदान में केवल 'ई' को ही व्युत्पादक प्रत्यय के रूप में स्वीकृत किया जा सकता है। यथा—

लड़क्—प्रातिपदिक+ई० व्युत्पादक प्रत्यय = लड़की—प्रातिपदिक—व्युत्पन्न।

---

७. हिंदी के समस्त व्यंजनांत शब्द जैसे। घर्। इत्यादि भी इसी वर्ग के अंतर्गत आयेंगे।

ब्रजभाषा के सर्वनाम-पद*

डा० महावीर सरन जैन एम० ए०, साहित्यरत्न

१. सर्वनामों का रूप तालिकावर्ग (Paradigmatic class) संज्ञा की भाँति ही है किन्तु इसमें तथा संज्ञा में यह अन्तर है कि इसमें लिंग के कारण परिवर्तन नहीं होता। संज्ञा तथा विशेषण के रूपतालिका-वर्गों में प्रातिपादकों (Stems) के पश्चात् लिंग, वचन एवं कारक के अनुसार विभक्तियाँ (Inffectional Suflisxes) संयुक्त होती हैं किन्तु सर्वनाम रूपतालिकवर्ग में प्रतिपादकों के पश्चात् वचन और कारक के अनुसार ही विभक्तियाँ लगती हैं। लिंग का निर्णय या तो सन्दर्भ द्वारा अथवा वाक्यस्तर पर क्रिया अथवा विशेषण द्वारा होता है। इस कारण एक ही सर्वनाम रूप दोनों लिंगों में व्यवहृत होता है।

०.२. लिंग निर्णय

०.२.१. लिंग निर्णय प्रकरण द्वारा

१. मैं ना पीऊँ (मैं नहीं पीता हूँ अथवा मैं नहीं पीती हूँ)

२. मैं ऐसौ-वैसो कछु ना जानूँ (मैं ऐसा-वैसा कुछ नहीं जानता हूँ अथवा मैं ऐसा-वैसा कुछ नहीं जानती हूँ)

३. तू बोलै मैं गाऊँ (तू बोलता है मैं गाता हूँ अथवा तू बोलती है मैं गाती हूँ)

४. तू का कर सकै (तू क्या कर सकता है अथवा तू क्या कर सकती है)

०. २. २. विशेषण द्वारा

***प्रस्तुत निबन्ध में सर्वनाम सम्बन्धित सामग्री खुरजा एवं बुलन्दशहर तहसील की बोलियों से प्राप्त की गयी है। बुलन्दशहर केन्द्र की सामग्री के लिए लेखक स्वयं सूचक है। समस्त सामग्री का विश्लेषण डॉ० उदयनारायण तिवारी, एम० ए० डी० लिट् के निर्देशन में किया गया है। इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ।**

—लेखक

मैं अभागी तो अपनौ मुँह ना दिखानौ चाऊँ
[मैं अभागी अपना मुँह नहीं दिखाना चाहता हूँ]
मैं अभागन तो अपनौ मुँह ना दिखानौ चाऊँ
[मैं अभागन तो अपना मुँह नहीं दिखाना चाहती हूँ]

०.२.३. क्रिया द्वारा

१. वो या बखत् आधु रास्ता तक पौंचौ होगौ
(वह इस समय आधे रास्ते तक पहुँचा होगा)
वो या बखत् आधे रास्ता तक पौंची होगी
[वह इस समय आधे रास्ते तक पहुँची होगी)

२. मैं बाजार जा रा ऊँ ।
[मैं बाजार जा रहा हूँ]
मैं बाजार जा रई यूँ ।
[मैं बाजार जा रही हूँ]

३. मैं अपने खेत पर जा रिया हूँ ।
[मैं अपने खेत पर जा रहा हूँ]
मैं अपने खेत पै जा रई यूँ ।
[मैं अपने खेत पर जा रही हूँ]

४. मैं वाकी पीठ खुजा रौ ऊँ
[मैं उसकी पीठ खुजा रहा हूँ]
मैं वाकी पीठ खुजा रई यूँ
[मैं उसकी पीठ खुजा रही हूँ]

०.३. 'सर्वनामों में लिंग के अनुसार विभक्तियाँ नहीं जुड़ती' किन्तु सर्वनामीय—परसर्गों [सम्बन्धकारक] में लिंग के कारण अन्तर पड़ जाता है। इसके अतिरिक्त 'निजवाचक सर्वनामों' के रूपों में भी लिंग के कारण अन्तर पड़ जाता है ।

१—बुलन्दशहर तहसील के शिकारपुर केन्द्र में व्यवहृत

२—बुलन्दशहर एवं खुरजा में व्यवहृत

३—बुलन्दशहर तहसील के सैदपुर केन्द्र में व्यवहृत

४—बुलन्दशहर एवं खुरजा तहसील के उपर्युक्त क्षेत्र-केन्द्रों को छोड़कर अन्य समस्त क्षेत्र-में व्यवहृत

१.०. समस्त सर्वनामों को उनके अर्थ एवं प्रयोग के आधार पर निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है ।

१.१. पुरुषवाचक सर्वनाम
१.३. निजवाचक सर्वनाम
१.४. प्रश्नवाचक सर्वनाम
१.५. अनिश्चयवाचक सर्वनाम
१.६. सम्बन्ध एवं सहसम्बन्ध सूचक सर्वनाम

२. १. पुरुषवाचक सर्वनाम

पुरुषवाचक सर्वनामों को तीन उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है:—
२.१.१. उत्तम पुरुष
२.१.२. मध्यम पुरुष
२.१.३. अन्य पुरुष

२. १. १. उत्तम पुरुषवाचक सर्वनाम

	मूलपदग्राम	अविकारी	विकारी
एकवचन	म्—	— ऐं	* — ओ~ए — उ~अ
बहुवचन	हम्	—ɸ१.	—ɸ२.

*उत्तम पुरुष एक वचन विकारी विभक्ति पदग्राम के सहपदों का वितरण इस प्रकार है : —

।—ओ~—ए~—उ~—अ । सैदपुर केन्द्र में व्यवहृत
।—ओ~ए । —अन्यत्र व्यवहृत

२. १. २. मध्यमपुरुष

	मूलपदग्राम	अविकारी	विकारी
एकवचन	त्—	—ऊ	— ोँ ~ —ए
बहुवचन	त्—	—उम् * —अम्	—उम्* —अम्

सभी केन्द्रों में आदरसूचक अर्थ के लिए । आप । पदग्राम का प्रयोग होता है । इसके रूपों में कारक तथा वचन के अनुसार कोई भेद नहीं होता ।

२. १. ३. अन्य पुरुष

२. १. ३. १.

	मूलपदग्राम	एकवचन	बहुवचन
अविकारी	व्—,	—ओ ~ उ	—ए
विकारी	उ—	—आ	—इन्

---

* मध्यमपुरुष बहुवचन अविकारी विभक्ति पदग्राम के दो सहपद हैं:—

।—अम्—।—सैदपुर केन्द्र में

।—उम् । —अन्यत्र

मध्यमपुरुष बहुवचन विकारी विभक्ति पदग्राम के भी दो सहपद । —अम् । ।—उम् हैं जिनका वितरण अविकारी बहुवचन विभक्ति पदग्राम के सहपदों की ही भाँति है ।

२. १. ३. २.

	मूलपदग्राम	एकवचन	बहुवचन
अविकारी	ऊ ~ ओ—	ϕ	ϕ
विकारी	उ—	—स्	—न्

२. १. ३. ३.

	मूलपदग्राम	एकवचन	बहुवचन
अविकारी	ग्—	—ओ	—ओ
विकारी	उ—	—स्	—न्

२. २. संकेतवाचक सर्वनाम

इसको दो उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है:—

२.२.१. निकटवर्ती संकेतवाचक

२.२.२ दूरवर्ती संकेतवाचक

२. २. १. निकटवर्ती संकेतवाचक सर्वनाम

२. २. १. १.

	मूलपदग्राम	एकवचन	बहुवचन
अविकारी	ϕ	—य्—औ ~ —य्—उ ~ —य्—ऐ ~ —ई	य्—ए ~ ई
विकारी	ϕ	य्—आ ~ इत्	इन्

२.२.१.२.

	मूलपदग्राम	एकवचन	बहुवचन
अविकारी	ग्—ज—	—ए—ऐ	—ए—ऐ
विकारी	इ—	—स्	न्

२. २. २. दूरवर्ती संकेतवाचक सर्वनाम

दूरवर्ती संकेतवाचक सर्वनामों के रूप अन्य पुरुषवाचक सर्वनामों [२.१.३] के रूपों की भाँति ही निष्पन्न होते हैं।

२. ३. निजवाचक सर्वनाम

	मूलपदग्राम	एकवचन	बहुवचन
पुल्लिंग	अप्—	—नौ	—ने
स्त्रीलिंग	अप्—	—नी	—नी

२. ४. प्रश्नवाचक सर्वनाम

प्रश्नवाचक सर्वनामों को चेतन एवं अचेतन पदार्थों को सूचित करने के आधार पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :

२.४.१. चेतन प्रश्नवाचक सर्वनाम
२.४.२. अचेतन प्रश्नवाचक सर्वनाम

२. ४. १. चेतन प्रश्नवाचक सर्वनाम

२. ४. १. १.

	मूलपदग्राम	एकवचन	बहुवचन
अविकारी	कौन्	ϕ	ϕ
विकारी	कौन्	ϕ	ϕ
	⁀क्	⁀आय⁀इस्	आय्⁀इन्

इन चेतन सर्वनाम रूपों का पदग्रामिक विश्लेषण इस भाति भी किया जा सकता है —

२. ४. १. २.

	मूलपदग्राम	एकवचन	बहुवचन
अविकारी	क्	—औन्	—औन्
विकारी	क्	औन्⁀आय्⁀इस्	औन्⁀आय्⁀इन्

२. ४. २. अचेतन प्रश्नवाचक सर्वनाम

	मूलपदग्राम	एकवचन	बहुवचन
अविकारी	क्	—आ	—आ
विकारी	क्	—आय्	—इन्हो

२. ५. अनिश्चयवाचक सर्वनाम

इस सर्वनाम को 'प्राणी' एवं 'परिमाण' सम्बन्ध अर्थ-बोध करानें के आधार पर दो उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है:—

२.५.१. प्राणिवाचक

२.५.२.परिमाणवाचक

२. ५. १. प्राणिवाचक अनिश्चय द्योतक सर्वनाम

	मूलपदग्राम	एकवचन	बहुवचन
अविकारी	क्—	—ओई	—ओई
विकारी	क्—	—आइ ~ —इन्हीं	—आइ—यों ~ —इन्हि—यों

२. ५. २. परिमाणवाचक द्योतक अनिश्चय

२. ५. २. १.

	मूलपदग्राम	एकवचन	बहुवचन
अविकारी	कछु	ϕ	ϕ
विकारी	कछु	ϕ	—ओं

२. ५. २. २.

	मूलपदग्राम	एकवचन	बहुवचन
अविकारी	सब्—	—ϕ	—[illegible] ~ —अइ
विकारी	सब्—	[illegible]	—[illegible] ~ इयों

२. ६. सम्बन्ध एवं सहसम्बन्ध सूचक

२. ६. १. सम्बन्धसूचक सर्वनाम

	मूलपदग्राम	एकवचन	बहुवचन
अविकारी	ज्	—ओ	—आ ~ इस्
विकारी	ज्	—ओ ~ ए	—इन्

२. ६. २. सहसम्बन्धसूचक सर्वनाम

	मूलपदग्राम	एकवचन	बहुवचन
अविकारी	व्	—ओ	—आ ~ इस्
विकारी	व्	—ए ~ ओ	—इन्

अविकारी एकवचन सहसम्बन्धसूचक सर्वनाम के लिए । सो । शब्द भी व्यवहृत होता है जिसमें । ओ।—अविकारी एकवचन सहसम्बन्ध सूचक सर्वनाम विभक्ति है ।

शब्दानुक्रमणिका

नामानुक्रमणिका

पुस्तकानुक्रमणिका

पारिभाषिक शब्दावली

(१) हिन्दी-अंग्रेजी

अल्प प्राण	Nonaspirated
अल्प विवृति	Pausal juncture
अल्पतम	Minimum
न्यूनतम	Minimal
अल्पतम / न्यूनतम } युग्म	Minimal pair
अर्थ	Meaning
अर्थ विज्ञान	Semantics
अर्थवान तत्व	Meaningful element
अर्थ उद्बोधन शास्त्र	Semantics
अक्षर	Syllable
अक्षर का चित्रांकन	Impression of Syllable
अक्षरात्मक	Syllabic
अनुक्रम	Sequence
अनुरूप	Analogous
अनुकरणमूलक शब्द	Imitative words
अन्तः केन्द्रमुखी संरचना	Endocentric Construction
अन्यापवर्गी	Exclusive
अनुसंधानकर्ता	Researcher
अंतर्राष्ट्रीय ध्वनि-परिषद	International Phonetics Association

अनुनासिकता	Nasalisation
अनुनासिक स्वर	Nasal vowel
अन्यपुरुष	Third person
अघोष	Breathed Voiceless Surd
अवरोध	Obstruction
अर्धविवृत	Half open
अर्ध संवृत	Half close
अग्रअर्ध सम्वृत	Front half close
अग्र अर्ध विवृत	Front half open
अग्र संवृत	Front close
अर्धस्वर	Semi vowel
अर्द्ध द्वैभाषिकता	Semi-bilingualism
अधिकृत रूप	Possessed form
अधिकारवाचक सर्वनाम	Possessive Pronoun
अलिजिह्वा	Uvula
अलिजिह्वीय	Uvular
अवरोही विवृति	Falling juncture
अवृत्ताकार	Unrounded
अमनोवैज्ञानिक	Non-psychological
अकर्मक	Intransitive
अतीत	Past
अन्तिम	End
आगत शब्द	Loan word
आवर्त्तक	Recurrent
आबद्ध रूप	Bound form
आकुंचन	Flexion
आकुंचन बोली	Flexion Dialect
आन्तरिक परिवर्तन	Internal change

आरोही विवृति	Rising juncture
आंशिक अवरोही	Partial continuants
आक्षरिक प्रणाली	Syllabic pattern
इंगित भाषा	Gesture Language
उच्चार	Utterance
उच्चरित ध्वनि	Articulated sound
उच्च सुर	High pitch
उच्चारण	Articulation, pronounciation
उच्चारण प्रकृति	The nature of articulation The nature of pronunciation
उच्चारणोपयोगी अवयव	Vocal apparatus
उच्चारण-स्थान	The place of articulation
उपसर्ग	Preposition
उपबोली	Idiolet
उपालिजिह्वा गलबिल	Pharynx
उपालिजिह्वीय	Pharyngal
उत्क्षिप्त	Flapped
उत्तम पुरुष	First person
उभयनिष्ठ साँचा	Common Core
एक भाषिक	Monolingual
एक वचन	Singular
एकरूपता	Homogeneity
ऐतिहासिक	Diachronic Historical
ऐतिहासिक भाषाशास्त्र	Historical linguistics
ओंठ	Lips
ओष्ठ्य	Labial
औच्चारणिक	Articulatory
क्रमबद्ध	Systematic
कर्म	Object
कर्ता	Nominative
कथ्यभाषा	Spoken language

कथ्यरूप	Spoken form
कठोर तालु	Hard palate
कहावतें	Proverb
क्लीव लिंग	Neuter gender
काकल्य	Glottal
काकल्य स्पर्श	Glottal stop
काकु या सुर	Pitch
काल	Tense
कालावधि	Duration
क्रिया	Verb
क्रियाविशेषण	Adverb
कृत्रिम तालु	False palate
केन्द्रीय स्वर	Central vowel
कोमल तालु	Soft palate
कोमल तालव्य	Soft palatal
कोशरचना शास्त्र	Lexicography
खण्डीय ध्वनियाँ	Segmental Sounds
खण्डीय-ध्वनिग्राम	Segmental phonemes
खण्ड ध्वनिग्राम, खण्ड स्वनग्राम	Segmental phoneme
खण्डेतर ध्वनिग्राम	Non-segmental phoneme
गठन	Structure
गठनात्मक	Structural
गठन सम्बन्धी वर्ग	Merphological classes
गौणमान स्वर	Secondary Cardinal vowels
घटमान वर्तमान	Present progressive
घोष, सघोष	Voice, voiced
चाक्षुष प्रभाव	Visual impression
चाक्षुष चित्र	Visual image
चिह्न	Sign

जातिविज्ञान	Ethnography
जिह्वानोक	Tip of the tongue
जिह्वाग्र	Front of the tongue
जिह्वा मध्य	Middle of the tongue
जिह्वा पश्च	Back of the tongue, Dorsum
जीवन्त भाषा	Living language
जीवित बोली	Living dialect
ढाँचा	Structure
तालव्य	Palatal
तुलनात्मक	Comparative
तुलनात्मक भाषाशास्त्र तुलनात्मक भाषाविज्ञान	Comparative Philology
तुलनात्मक पुराण विद्या	Comparative Mythology
दन्त्य	Dental
दन्त्योष्ठ्य	Labio Dental
द्वयोष्ठ्य	Bi-labial
द्रव्यवाचक संज्ञा	Material noun
दाँत	Teeth
द्वित्व	Reduplication
द्विभाषीय सामग्री	Bi-lingual material
द्विस्वरान्तरगत	Between two vowels
दीर्घता	Length
देहाती भाषा	Vernacular language
द्वैभाषिक	Bi-ligual
ध्वन्यात्मक	Phonetic
ध्वन्यात्मक-शब्द	Phonetic word
ध्वन्यात्मक रूप	Phonetic form
ध्वन्यात्मक समानता	Phonetic equality
ध्वन्यात्मक सन्दर्भ	Phonetic context
ध्वनि	Sound
ध्वनि-चित्र	Sound image

ध्वनि लहर	Intonation, sound wave
ध्वनि प्रतीक	Sound symbol
ध्वनि ग्राम / स्वन ग्राम	Phoneme
ध्वनिग्राम शास्त्र	Phonemics
ध्वनिग्रामीय	Phonemic
ध्वनिशास्त्र	Phonetics
ध्वनि समह	A set of sound
ध्वनि आकर्षन	Audition
ध्वनि निःसारण	Phonation
ध्वनिग्रामीय विश्लेषण	Phonemic Analysis
ध्वनिग्रामिक प्रणाली	Phonemic system
ध्वनिप्रक्रियात्मक पद्धति	Phonological system
धातु पद	Roots
धातुरूप	Verb form
न्यूनतम	Minimum, Minimal
नकारात्मक भाव	Negative
नव्य वैयाकरण (जुंग ग्रामाटिकर)	Junggrammatikar
नासिक्य	Nasal
नासिक्य व्यंजन	Nasalised consonant
नासारंध्र / नासिका विवर	Nasal cavity
निम्न सुर	Low pitch
निलम्बित विवृति	Sustained juncture
नेत्र ग्राह्य	Visual
नेत्र ग्राह्य प्रतीक	Visual symbol
नृ-विज्ञान	Anthropology
न्यूनतम विशेषता	Minimum feature
पद	Morph
पदग्राम	Morpheme
पद विज्ञान	Morphology, Morphemics

पद रचनाशास्त्र	Morphemics
पद रचना पद्धति	Syntax
पदग्रामिक विश्लेषण	Morphemic Analysis
परम्परागत कथायें	Traditional stories
पश्च विवृत	Back open
पश्च अर्ध संवृत	Back half close
परिवेश	Environment
परिपूरक वितरण	Complementary distribution
प्राथमिक / आदि	Beginning
प्रागभारोपीय	Proto-Indo-European
पार्श्विक	Lateral
प्राहा विचार शैली	Prague School
प्रतीक	Symbol
प्रत्यय	Concept, suffix
प्रतिमान	Norm
प्रतीक विज्ञान	Semiology
प्रभाव संचार	Communication.
प्रश्नसूचक	Interrogative
पूर्णतः अवरोधी	Complete continuants
पुनः निर्माण / पुनर्निर्माण	Reconstruction
पुंल्लिग	Masculine
पुस्तकी भाषा	Book language
पुरुष	Person
पुराघटित वर्तमान	Present perfect
फ़िलॉलोजी (भाषाविज्ञान)	Philology
फुसफुसाहट वाली ध्वनि	Whispered sound
बलाघात	Stress
बहुवचन	Plural
बहिः केन्द्रमुखी संरचना	Exocentric construction

बोली	Dialect
बोलीशास्त्र	Dialectology
बोली सम्बन्धी विखण्डन	Dialectal splitting
बोलचाल की भाषा	Spoken language
बोधगम्यता	Intelligibility
बोधगम्यतापूर्ण	Intelligibility perfect
बोधगम्यता शून्य	Intelligibility zero
भविष्यत्	Future
भाषा	Language
भाषा-विज्ञान	Philology
भाषाशास्त्र	Linguistics
भाषाशास्त्री	Linguist
भाषाविद्	Linguistician Linguist Linguisticians Philologist
भाषाचक्र	Language circuit
भाषण	Speaking
भाषक	Speaker
भाषण चक्र	Speaking circuit
भाषण का भाषाशास्त्र	Linguistics of speaking
भाषाणावयव	Speech organ
भाषा का भाषाशास्त्र	Linguistics of language
भाषाशास्त्रीय विश्लेषण	Linguistic Analysis
भाषा सर्वेक्षण	Linguistic survey
भाषीय प्रतीक	Linguistic sign
भावचित्रात्मक	Ideographic
भा-सुबोध	L-Simplex
भा-दुर्बोध	L-Complex
भाषा सामग्री	Language materials
भेदक गुण	Contrast

भौतिक	Acoustic
भौगोलिक प्रसार	Geographical spreading
मध्य सुर	Mid pitch
मध्यम पुरुष	Second person
मनोविज्ञान	Psychology
मनोवैज्ञानिक इकाई	Psychological unit
मनोदैहिक	Psycho-physical
मस्तिष्क	Mind
महाप्राण	Aspirated
महाप्राणता	Aspiration
माध्यमिक	Middle
मानस्वर	Cardinal vowels
मानव वाक्	Human speech
मानव जातिविज्ञान	Ethnology
मानव कार्य अध्येता	Humanist
मात्रा	Quantity
मृतक भाषा	Dead language
मुख विवर, मुख रंध्र	Mouth cavity, Buccal cavity, Oral cavity
मुक्त रूप	Free form
मुक्त परिवर्तन	Free variation
मुहावरे	Idioms
मूर्धन्य	Retroflex
मूक संकेत	Mute signs
रूप	Form
रूपरचना शास्त्र	Morphology
रूप तालिकात्मक पद्धति	Paradigmatic appreach
लहर	Wave
लघुतम इकाई	Minimum unit
लिपि	Script

लिखित भाषा	Written language
लिखित प्रतीक	Written symbols
लिंग्विस्तिक / लग्विस्टिक्स	Linguistics
लुंठित	Rolled, Trilled
लेख्य / लेखन / लिखावट / लेखन कला	Writing
लोककथायें	Folk tales
लोकगाथायें	Ballads
लोक-गीत	Folk song
वर्ग बन्धन	Grouping
वर्गीकरण	Classification
वर्ण	Alphabet
वर्णात्मक	Alphabetic
वर्णनात्मक टेक्स्ट	Descriptive text
वर्णनात्मक	Descriptive
वर्णनात्मक भाषाशास्त्र या व्याख्यात्मक भाषाशास्त्र	Descriptive Linguistics
वृत्ताकरा	Rounded
वर्तमान	Present
वर्त्स्य	Alveolar
व्यंजन	Consonant
व्यंजन गुच्छ	Consonant cluster
व्यक्ति सहित (सर्वनाम)	Inclusive
व्यक्ति रहित (सर्वनाम)	Exclusive
व्यतिरेक	Contrast
व्यतिरेकी	Contrastive
व्युत्पादक	Derivational

व्युत्पत्ति शास्त्र	Ethymology
व्यवच्छेदक ध्वनि	Distinctive sound
वाक्	Speech
वाक्-प्रवृत्ति	Sentence
वाक्य	Phase
वाक्यांश	Syntax
वाक्य-विन्यास	Speech habit
वाक्य-विन्यास के ढाँचे	Syntactic structure
व्याकरण शास्त्री	Grammarian
व्याकरणीय रूप	Grammatical form
वागेन्द्रिय	Speech organ / Vocal organ
वाग्ध्वनि	Speech sound
वाणी कार्य	Speeking
व्यापक साँचा	Overall pattern
वाह्य भाषाशास्त्र	External Linguistics
वितरण	Destribution
वितरणीय	Distributional
विनियोग	Application
विभक्ति युक्त	Inflectional
विवृत	Open
विवृति	Juncture
विवरणात्मक व्याकरण	Descriptive Grammar
विशेषण	Adjective
विस्मयादि सूचक	Interjection
विषय	Subject
विज्ञान	Science
शब्द	Word
शब्द स्थान	Place of words
शब्दक्रम	Sequence of words
शब्दचित्र	Word image

शब्द रूपावली	Paradigm
शरीर विज्ञान	Physiology
श्वास नलिका	Trachea, wind pipe
शास्त्र	Science
शारीरिक क्रिया	Physiological process
शून्य रूप	Zero form
शून्य सहपद	Zero Allomorph
स्वन	Phone
स्वन शास्त्री	Phonetician
स्वर	Vowel
स्वर-तंत्री	Vocal cord
स्वर यंत्र	Larynx
स्वर यंत्रावरण	Epiglottis
स्वर लहर	Intonation
स्वर क्रम	Vowel sequence
स्वर मध्यग	Between vowels
सर्वनाम	Pronoun
सकर्मक	Transitive
स्वच्छन्द	Arbitrary
स्तर	Level
स्त्रीलिंग	Feminine
समास	Compound
समान	Identical
समान साँचा	Common Core
समस्वरता	Symphony
समकालिक	Synchronic
सघनता	Intensity
स्पर्श	Plosive, Stop, occlusive
स्पर्श संघर्षी	Affricate
सरणि रव	Channel noise
सहपद	Allomorph

सहस्वन } सस्वन }	Allophone
स्वन प्रकार	Kinds of phones. Phone type
संकेत रव	Code noise
संघर्षी	Fricative
सन्धि	Morpho-phonemics
सन्धि } विवृति }	Juncture
सन्धि विचार शास्त्र	Morpho-phonemics
संयवक केन्द्र	Associative centre
संयुक्तीकरण	Affixation
संयोजक	Conjunction
संस्थान	Institution
संज्ञा	Noun
सम्वृत	Close
स्थानान्तरण	Substitution
स्थानान्तरीकरण	Substitution
सार्थ इकाई	Meaningful unit
साधु, (परिनिष्ठित)	Standard
सामासिक रूप	Compound form
साहित्यिक भाषा	Literary language
सुर	Pitch, Intonation
सुराघात	Pitch accent
सूचक	Infermant
श्रोत्रिक	Auditory
श्रौत ग्राह्य	Acoustical
श्रोत्र ग्राह्य	Auditory
श्रोत-कार्य	Hearing
श्रोत्र-ग्राह्य-चित्र	Acoustical image
श्रोत्र ग्राह्य प्रतीक	Acoutical symbol
क्षिप्रता	Frequency

(२) अंग्रेज़ी हिन्दी

Articulated sound	उच्चरित ध्वनि
Articulation	उच्चारण
Articulatory	औच्चारणिक
Adverb	क्रियाविशेषण
Audition	ध्वनि आकंरणन
A set of Sound	ध्वनि समूह
Anthropology	नृ-विज्ञान
Acoustic	भौतिक
Aspirated	महाप्राण
Aspiration	महाप्राणता
Alphabet	वर्ण
Alphabetic	वर्णात्मक
Alveolar	वर्त्स्य
Application	विनियोग
Adjective	विशेषण
Arbitrary	स्वच्छंद
Affricate	स्पर्श संघर्षी
Allomorph	सहपद
Allophone	सहस्वन, सस्वन
Associative centre	संयुवक केन्द्र
Affixation	संयुक्तीकरण
Auditory	श्रोत्रिक
Acoustical	श्रौत ग्राह्य
Auditory	श्रौत्र ग्राह्य

Acoustical image	श्रौत्र ग्राह्य चित्र
Acoustical symbol	श्रौत्रग्राह्य प्रतीक
Breathed	अघोष
Bound form	आबद्ध रूप
Back of the tongue	जिह्वापश्च
Bi-labial	द्वयोष्ठ्य
Bi-lingual material	द्विभाषीय सामग्री
Between two vowels	द्विस्वरान्तर्गत
Bilingual	द्वैभाषिक
Back open	पश्च विवृत
Back half close	पश्च अर्द्ध संवृत
Beginning	प्राथमिक, आदि
Book language	पुस्तक की भाषा
Buccal cavity	मुख विवर, मुखरंध्र
Ballads	लोकगाथाएँ
Between vowels	स्वर मध्यग
Common Core	उभयनिष्ठ साँचा, समान साँचा
Comparative philology	तुलनात्मक भाषाशास्त्र, तुलनात्मक भाषाविज्ञान
Central Vowel	केन्द्रीय स्वर
Comparative	तुलनात्मक
Comparative mythology	तुलनात्मक पुराण विद्या
Complementary distribution	परिपूरक वितरण
Concept	प्रत्यय
Communication	प्रभाव संचार
Complete continuans	पूर्णतः अवरोध
Contrast	भेदक गुण, व्यतिरेक
Cardinal vowels	मान स्वर
Classification	वर्गीकरण
Consonant	व्यञ्जन
Consonant cluster	व्यञ्जनगुच्छ

Contrastive	व्यतिरेकी
Compound	समास
Channel noise	सरणि रव
Code noise	संकेत रव
Conjunction	संयोजक
Close	संवृत
Compound form	सामासिक रूप
Diachronic	ऐतिहासिक
Duration	कालावधि
Dental	दन्त्य
Distribution	वितरण
Dialect	बोली
Dialectology	बोलीशास्त्र
Dialectal-plitting	बोली सम्बन्धी विखण्डन
Dead language	मृतक भाषा
Descriptive	वर्णनात्मक
Descriptive Text	वर्णनात्मक टेक्स्ट
Descriptive linguistics	वर्णनात्मक भाषाशास्त्र व्याख्यात्मक भाषाशास्त्र
Derivational	व्युत्पादक
Distinctive Sound	व्यच्छेदक ध्वनि
Destributional	वितरणीय
Descriptive grammar	विवरणात्मक व्याकरण
Endocentric construction	अंतःकेन्द्रमुखी संरचना
Exclusive	अन्यापवर्गी, व्यक्तिरहित
End	अन्तिम
Ethnolography	जाति विज्ञान
Environment	परिवेश
Exocentric construction	वहिः केन्द्रमुखी संरचना
Ethbnology	मानवजाति विज्ञान
Ethymology	व्युत्पत्तिशास्त्र

External linguistics	बाह्य भाषाशास्त्र
Epiglottis	स्वर यंत्रावरण
Front half close	अग्र अर्द्ध संवृत
Front half open	अग्र अर्द्ध विवृत
Front close	अग्र संवृत
Falling juncture	अवरोही विवृति
Flexion	आकुञ्चन
Flexion dialect	आकुञ्चन बोली
Flapped	उत्क्षिप्त
First person	उत्तम पुरुष
False plate	कृत्रिम तालु
Front of the tongue	जिह्वाग्र
Future	भविष्यत्
Free form	मुक्त रूप
Free variation	मुक्त परिवर्तन
Form	रूप
Folktates	लोककथाएँ
Folk song	लोकगीत
Faminine	स्त्रीलिंग
Fricative	संघर्षी
Frequency	क्षिप्रता
Gesture language	इंगित भाषा
Glottal	काकल्य
Glottal stop	काकल्य स्पर्श
Geographical spreading	भौगोलिक प्रसार
Grouping	वर्ग बन्धन
Grammarian	व्याकरण शास्त्री
Grammatical form	व्याकरणीय रूप
Half open	अर्द्ध विवृत
Half close	अर्द्ध संवृत
High pitch	उच्च सुर

Homogenity	एकरूपता
Historical linguistics	ऐतिहासिक भाषाशास्त्र
Hard palate	कठोर तालु
Human Speech	मानव वाक्
Humanist	मानव कार्य-अध्येता
Hearing	श्रौत कार्य
Impression of syllable	अक्षर का चित्रांकन
Imitative words	अनुकरणमूलक शब्द
International phonetics association	अन्तर्राष्ट्रीय ध्वनि परिषद
Intransitive	अकर्मक
Internal change	आंतरिक परिवर्तन
Idiolet	उपबोली
Intonation	ध्वनिलहर, स्वरलहर
Interrogative	प्रश्न सूचक
Intelligibility	बोधगम्यता
Intelligibility perfect	बोधगम्यता पूर्ण
Intelligibility Zero	बोधगम्यता शून्य
Idographic	भाव चित्रात्मक
Idioms	मुहावरे
Inclusive	व्यक्ति सहित (सर्वनाम)
Inflectional	विभक्तियुक्त
Interjection	विस्मयादिसूचक
Identical	समान
Intensity	सघनता
Institution	संस्थान
Infermant	सूचक
Jung-grammatrikar	नव्य वैयाकरण
Juncture	सन्धि, विवृति
Kinds of phones	स्वन प्रकार
Key Word	सूचक शब्द

Kymogram	काइमोग्राम
Kymograph	काइमोग्राफ
Loan words	आगत शब्द
Language	भाषा
Linguistics	भाषाशास्त्र
Lips	ओठ
Labial	ओष्ठ्य
Labial click	ओष्ठ्य अन्तस्फोट
Lexicography	कोषरचना शास्त्र
Living language	जीवन्त भाषा
Living dialect	जीवित बोली
Labiodental	दन्त्योष्ठ्य
Length	दीर्घता
Low pitch	निम्न सुर
Lateral	पार्श्विक
Linguist } Linguistian }	भाषाशास्त्री या भाषाविद्
Language circuit	भाषाचक्र
Linguistics of speaking	भाषण का भाषाशास्त्र
Linguistic analysis	भाषाशास्त्रीय विश्लेषण
Linguistic Survey	भाषा सर्वेक्षण
Linguistic sign	भाषीय प्रतीक
L-Simplex	भा-सुबोध
L-Cimplex	भा-दुर्बोध
Language material	भाषा सामग्री
Larynx	स्वर यंत्र
Level	स्तर
Literary language	साहित्यिक भाषा
Minimum Minimal	अल्पतम, न्यूनतम
Minmal pair	अल्पतम } युग्म न्यूनतम }

Meaning	अर्थ
Meaningful element	अर्थवान तत्व
Monolingual	एकभाषिक
Merphological classes	गठन सम्बन्धी वर्ग
Middle of the tongue	जिह्वामध्य
Material flown	द्रव्यवाचक संज्ञा
Minimum feature	न्यूनतम विशेषता
Morf	पद
Morpheme	पदग्राम
Morphology	रूपरचना शास्त्र पदविज्ञान
Morphemics	पद रचनाशास्त्र
Morphemic analysis	पदग्रामिक विश्लेषण
Masculine	पुल्लिग
Mid pitch	मध्य सुर
Mind	मस्तिष्क
Middle	माध्यमिक
Mouth cavity	मुखविवर, मुखरंध्र
Mute signs	मूक संकेत
Minimum unit	लघुतम इकाई
Meaningful unit	सार्थ इकाई
Non aspirated	अल्पप्राण
Nasalisation	अनुनासिकता
Nasal vowel	अनुनासिक स्वर
Non-psychological	अ-मनोवैज्ञानिक
Nominative	कर्त्ता
Neuter gender	क्लीवलिंग
Non-segmentalphoneme	खण्डेतर ध्वनिग्राम
Negative	नकारात्मक भाव
Nasal	नासिक्य
Nasalised consonant	नासिक्य व्यञ्जन
Nasal cavity	नासारंध्र, नासिकाविवर

Norm	प्रतिमान
Object	कर्म
Oral cavity	मुखविवर, मुखरंध्र
Overall pattern	व्यापक साँचा
Open	विवृत
Occlusive	स्पर्श
Pausal juncture	अल्प विवृति
Possessed form	अधिकृत रूप
Possessive pronoun	अधिकारवाचक सर्वनाम
Past	अतीत
Partial continuants	आंशिक अवरोही
Pronunciation	उच्चारण
Preposition	उपसर्ग
Pharynx	उपालिजिह्वा, गलविल
Pharyngal	उपालिजिह्वीय
Proverb	कहावत
Pitch	काकु या सुर
Present progressive	घटमान वर्तमान
Palalal	तालव्य
Phonetic	ध्वन्यात्मक
Phonetic word	ध्वन्यात्मक शब्द
Phonetic form	ध्वन्यात्मक रूप
Phonetic equality	ध्वन्यात्मक समानता
Phonetic context	ध्वन्यात्मक संदर्भ
Phoneme	ध्वनिग्राम, स्वनग्राम
Phonemics	ध्वनिग्राम शास्त्र
Phonemic	ध्वनिग्रामीय
Phonetics	ध्वनिशास्त्र
Phonation	ध्वनिनिःसारण
Phonemic analysis	ध्वनिग्रामीय विश्लेषण
Phonemic system	ध्वनिग्रामिक प्रणाली

Phonological system	ध्वनि प्रक्रियात्मक पद्धति
Proto-Indo-European	प्राग्भारोपीय
Prague school	प्राहा विचार शैली
Person	पुरुष
Present perfect	पुराघटित वर्तमान
Philology	भाषा विज्ञान
Plural	बहुवचन
Philogist	भाषाविद्
Psychology	मनोविज्ञान
Psychological unit	मनोवैज्ञानिक इकाई
Psychophysical	मनोदैहिक
Paradigmatic approach	रूप तालिकात्मक पद्धति
Present	वर्तमान
Phase	वाक्यांश
Place of words	शब्दस्थान
Paradigm	शब्द रूपावली
Physiology	शरीरविज्ञान
Physiological process	शारीरिक क्रिया
Phone	स्वन
Phonetician	स्वनशास्त्री
Pronoun	सर्वनाम
Plosive	स्पर्श
Phone type	स्वनप्रकार
Pitch	सुर
Pitch accent	सुराघात
Researcher	अनुसन्धानकर्ता
Recurrent	आवर्त्तक
Rising juncture	आरोही विवृति
Reduplication	द्वित्व
Reconstruction	पुनः निर्माण, पुर्ननिर्माण
Retroflex	मूर्धन्य

Rolled	लुंठित
Rounded	वृत्ताकार
Semantics	अर्थ विज्ञान, अर्थ उद्बोधन शास्त्र
Syllable	अक्षर
Syllabic	अक्षरात्मक
Sequence	अनुक्रम
Surd	अघोष
Semi Vowel	अर्द्धस्वर
Semi-bi-lingualism	अर्द्ध द्वैभाषिकता
Syllabic pattern	आक्षरिक प्रणाली
Singular number	एकवचन
Systematic	क्रमबद्ध
Spoken language	कथ्यभाषा
Spoken form	कथ्यरूप
Soft palate	कोमल तालु
Soft patlatal	कोमल तालव्य
Sound	ध्वनि
Segmental sounds	खण्डीय ध्वनियाँ
Segmental phonemes	खण्डीय ध्वनिग्राम
Segmental phoneme	खण्ड ध्वनिग्राम, खण्ड स्वनग्राम
Structure	गठन, ढाँचा
Structural	गठनात्मक
Secondary Cardinal Vowels	गौण मानस्वर
Sign	चिह्न
Sound	ध्वनि
Sound wave	ध्वनि लहर
Sound image	ध्वनि चित्र
Sound Symbol	ध्वनि प्रतीक
Sustained juncture	निलम्बित विवृति
Syntax	पदरचना पद्धति
Symbol	प्रतीक

Suffix	प्रत्यय
Semiology	प्रतीक विज्ञान
Stress	बलाघात
Speaking	भाषण, वाणीकार्य
Speaker	भाषक
Speaking circuit	भाषणचक्र
Speech organ	भाषणावयव वागेन्द्रिय
Second person	मध्यम पुरुष
Script	लिपि
Speech	वाक्य
Speech habit	वाक् प्रवृत्ति
Sentence	वाक्य
Syntax	वाक्य विन्यास
Syntactic structure	वाक्य विन्यास के ढाँचे
Speech sound	वाक् ध्वनि
Subject	विषय
Science	विज्ञान, शास्त्र
Sequence of words	शब्दक्रम
Symphony	समस्वरता
Synchronic	समकालिक
Substitution	स्थानान्तरण, स्थानान्तरीकरण
Standard	साधु, परिनिष्ठित
Science of language	भाषाविज्ञान, भाषाशास्त्र
Third person	अन्य पुरुष
The nature of articulation The nature of pronunciation	उच्चारण प्रकृति
The place of articulation	उच्चारण स्थान
Tense	काल
Tip of the tongue	जिह्वानोक
Teeth	दाँत
Traditional Stories	परम्परागत कथायें

Trachea	श्वास नलिका
The place of Vocalcard	स्वरतंत्रियों का स्थान
Transitive	सकर्मक
Uvula	अलिजिह्वा
Uvular	अलिजिह्वीय
Unrounded	अवृत्ताकार
Utterence	उच्चार
Voiceless	अघोष
Vocal apparatus	उच्चारणोपयोगी अवयव
Verb	क्रिया
Voice voiced	घोष, सघोष
Visual impression	चाक्षुष प्रभाव
Visual image	चाक्षुष चित्र
Vernacular language	देहातीभाषा
Verb form	धातुरूप
Visual	नेत्रग्राह्य
Visual Symbol	नेत्र ग्राह्य प्रतीक
Vocal organ	वागेन्द्रिय
Vocal card	स्वरतंत्री
Vowel	स्वर
Vowel sequence	स्वरक्रम
Whispered Sound	फुसफुसाहट वाली ध्वनि
Wave	लहर
Written language	लिखित भाषा
Written symbols	लिखित प्रतीक
Writing	लेख्य, लेखन, लिखावट, लेखन कला
Word	शब्द
Word image	शब्द चित्र
Wind pipe	श्वास नलिका
Zero form	शून्य रूप
Zero Allomerph	शून्य सहपद